Chap-3

तृतीय अध्याय

हिन्दी के प्रमुख एकांकीकार और उनकी प्रमुख एकांकी रचनाएँ

हिन्दी एकांकी के आरंभ और विकास से सम्बन्धित पूर्ववर्ती पृष्ठों से स्पष्ट है हिन्दी एकांकी आधुनिक युग की देन है। इसके विकास में अनेक एकांकीकारों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक काल अपने आरंभ से ही समकालीन परिस्थितियों से अत्यंत प्रभावित रहा है। वैज्ञानिक प्रगति, वैज्ञानिक साधनो का आविष्कार, शिक्षा का प्रचार, विदेशी शासन आदि ने भारतीय जन-जीवन के धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्यों को तहस-नहस कर दिया। परिणामस्वरुप भारतीय जनता राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संकट का सामना करती हुई प्रतीत होती है। आधुनिक काल के एकांकीकारों ने अपने सर्जन द्वारा इस संकट की परिस्थिति में जो मार्गदर्शन किया है वह अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण सिद्ध होता है जिसकी चर्चा परवर्ती पृष्ठों में की जायेगी। यहाँ प्रमुख एकांकीकारो की प्रमुख एकांकियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। ऐसे एकांकीकारों में सर्वप्रथम नाम डॉ. वर्मा का है।

डॉ. रामकुमार वर्मा :

डॉ. वर्मा ने विशेष रुप से पाश्चात्य प्रभाव ग्रहण कर हिन्दी एकांकियों की रचना की है। यद्यपि वर्माजी का रचना-शिल्प तो पाश्चात्य से प्रभावित है, तथापि जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भारतीय ही है। आपने अपनी एकांकियों में पूर्णतः भारतीय समाज और संस्कृति के यथार्थ रुप का चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्हें आदर्शोन्मुख बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। वस्तुतः डॉ. वर्मा हिन्दी के प्रथम ऐसे एकांकीकार हैं जिन्होंने एकांकी को संस्कृत की परम्परागत रुढ़ियों से मुक्त करके उसे पाश्चात्य शिल्प के आधार पर नवीन दिशा प्रदान की है और उसे रंगमंच के अनुकूल ढालने का उल्लेखनीय प्रयास किया है। इस प्रकार आपने हिन्दी एकांकी के सैद्धान्तिक विवेचन एवं व्यावहारिक सृजन द्वारा इसके शिल्पगत एवं मंचगत विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। आपने सामाजिक एकांकी, ऐतिहासिक एकांकी, पौराणिक एवं दार्शनिक एकांकी, हास्य-मूलक एकांकी, भावात्मक एकांकी, मनोवैज्ञानिक एकांकी आदि विविध प्रकार के एकांकियो का पाश्चात्य रीति-नीति से सर्जन किया है। हिन्दी की ऐतिहासिक एकांकियों की सुस्पष्ट स्वरुप एवं परंपरा भी डॉ. वर्मा के एकांकियों से ही प्रारंभ होती है।

वर्माजी ने अनेक एकांकियों का सर्जन किया है जिन्हें विभिन्न संग्रहों में संग्रहित किया गया है। 'पृथ्वीराज की आँखें' (1935), 'रेशमी टाई' (1941), 'चारुमित्रा' (1942), 'रुपरंग' (1942), 'विभूति' (1945), 'सप्तकिरण' (1947), 'रजतरश्मि' (1950), 'ऋतुराज' (1951), 'दीपदान' (1953), 'रिमझिम' (1955), 'इन्द्रधनुष' (1956) आदि आपके उल्लेखनीय एकांकी संग्रह हैं।

(i) **'पृथ्वीराज की ऑखें'** एकांकी संग्रह में 'चंपक', 'एक्ट्रेस', 'नहीं का रहस्य', 'बादल की मृत्यु', 'दस मिनट' तथा 'पृथ्वीराज की आँखें' आदि एकांकी संकलित हैं।

'बादल की मृत्यु' सन् 1930 में प्रकाशित वर्माजी की प्रथम पाश्चात्य-शिल्प के आधार पर रचित एकांकी रचना है, जो यथार्थवादी जीवन दृष्टि पर आधारित है। यह पाश्चात्य नाट्यकार मैटरलिक की नाट्य-शैली पर लिखा गया है। 'बादल की मृत्यु' में बादल की मनःस्थिति का अंकन है। संध्या, बादल और हवा आदि इसके पात्र हैं, जो प्रकृति के निर्जीव रुप हैं, किन्तु मानवों की तरह ही बोलते हैं। समय संध्या का है। संध्या जाना चाहती है क्योंकि रात होनेवाली है जबकि बादल संध्या को रोकना चाहता है, किन्तु संध्या रुकने में असमर्थ है। संध्या कहती है..... "दो स्वतंत्रता चाहनेवाली नारी एक स्थान पर नही रह सकती" और संध्या धीरे-धीरे चली जाती है। अंधकार छा जाता है। बादल की मृत्यु हो जाती है। संलापों के माध्यम से बादल की मृत्यु का संकेत कर देना ही वर्माजी का उद्देश्य रहा है। प्रस्तुत एकांकी में भाव, कल्पना तथा काव्य का अंश अधिक है साथ में अन्तः संघर्ष का निरुपण है। संवादों पर भी भावुकता और संवेदना की छाया परिलक्षित होती है। प्रशंसनीय तथ्य यह है कि लेखक ने जिस टेकनीक को अपनाकर अपनी एकांकियों की सृष्टि की है वे सर्वथा अभूतपूर्व, मौलिक एवं महत्वपूर्ण हैं। इसके एक लम्बे दृश्य में ही लेखक ने संपूर्ण घटनाओं को एकत्र कर मनोविज्ञान के आधार पर यथातथ्य चित्रित किया है। स्वयं वर्माजीकहते हैं... "यह मैटरलिंक की शैली पर रचित पाश्चात्य शैली का एक भावात्मक रुपक है। इसमें केवल एक कल्पना है और इसके निर्माण में नाटककार और कवि में समझौता हुआ है।"[1] एकांकी की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए प्रो. अमरनाथ गुप्त का कथन है कि "हिन्दी साहित्य का सबसे पहला एकांकी नाटक श्री रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' है। . .... उच्च काव्य कल्पना का यह उदाहरण है। 'बादल की मृत्यु' में कथानक तथा नाटकीयता का सर्वथा अभाव है। यह कविता ही है। नाटक क्यां? हिन्दी-साहित्य का सबसे छोटा नाटक और कितनी गूढ संवेदनायुक्त ऐसे एकांकी हिन्दी साहित्य में बहुत कम लिखे गए हैं।"[2] प्रकाशचन्द्र गुप्त मानते हैं कि 'बादल की मृत्यु' तो नाटक के रुप में कविता ही है।"[3] डॉ. वर्मा ने भावात्मक शैली में मनोविज्ञान और संघर्ष को जोड़कर जीवन के महान् सत्य को अत्यंत संक्षिप्त कर ज्वलंत रुप में उपस्थित किया है।[4]

यह एकांकी छोटी होते हुए भी अपने संदेश में महान् है। डॉ. वर्माजी ने जीवन की नश्वरता को 'बादल की मृत्यु' शीर्षक एकांकी में अभिव्यक्त किया है। वे इस सत्य को उद्घाटित करते हैं कि जीवन नाशवान् है। प्रस्तुत एकांकी में बादल संध्या से प्रार्थना करता है कि आकाश के किसी कोने में वह उसकी प्रतिक्षा करे लेकिन संध्या संसार के नाशवान की पद्धति को भली-भाँति जानती है और वह यह भी जानती

है कि संसार एक रंगमंच है। प्रत्येक मनुष्य रंगमंच की कठपुतलियाँ हैं। हम जन्म के साथ ही जीवन रुपी नाटक में अपना-अपना अभिनय प्रस्तुत करते हैं। यही सांसारिक क्रम है, जो नित्य चलता ही रहता है यहॉ किसी एक पात्र की प्रतिक्षा करते रहना संभव ही नहीं है। इस प्रकार वर्माजी ने महान् सत्य को उद्घाटित करते हुए हमें संदेश दिया है कि प्रत्येक मनुष्य को इसकी नश्वरता को समझना चाहिए और अपने कर्तव्य की पूर्ति पूरी तत्परता के साथ करनी चाहिए।

'चंपक' एक यथार्थवादी सामाजिक एकांकी है, जिसमें जीवन की विषमताओं दुःख, दारिद्र्य तथा भिखमंगों के यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत हैं। कवि किशोर की सेवावृत्ति पर प्रकाश डालकर लेखक ने दीन-दुखियों की सेवा का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। एकांकी में 'चंपक' दुःखी तथा पीडित व्यक्तियों के प्रतीक के रुप में आया है। किशोर एक कवि है, जो स्वभाव से भावुक और संवेदनशील है। वह दूसरों की सहायता में तत्पर रहता है। ठंड की रात में टहलते हुए कवि किशोर की दृष्टि एक कुत्ते पर गई जो ठण्ड के मारे सिकुडा हुआ था। उस भावुक कवि को उस पर दया आ गई। दया भाव से कुत्ते को घर उठा लाया। घर आने से कुत्ते के दिन मजे में बितने लगे क्योंकि उसे बडी आसानी से पेट भरने के लिए खाना मिलने लगा और छत्त भी मिल गई थी। उस कुत्ते का नाम किशोर ने चंपक रखा दिया था। चंपक कवि के स्नेह और समय पर ऐसा हावी हो जाता है कि कवि को मोह-ममता के सारे बंधन तोड़कर उसे अपने से अलग कर देना पड़ता है लेकिन किशोर की बहन इस बीच कुत्ते से काफी घुलमिल गई थी वे चंपक के बिना नहीं रह सकती थी। अतः किशोर ने अपनी बहन की खुशी के लिए चंपक की तलाश जारी कर दी। लेकिन जब किशोर को यह पता चला कि कुत्ता मर गया है तो उसे बहुत दुःख हुआ, किन्तु अंत में कुत्ते के मरने का कारण जब ज्ञात होता है तो उसकी समवेदना कुत्ते के स्थान पर भिखारी से जुडती है।

वर्माजी की यथार्थवादी जीवन-दृष्टि उनकी रचनाओं के संघर्ष में पाई जाती है। इस सिद्धान्त से उनकी कृतियों में पाश्चात्य प्रभाव लक्षित होता है।[5] **'एक्ट्रेस'** शीर्षक ही पाश्चात्य प्रभाव का सूचक है। वर्माजी की यह प्रतिफलन है कि उन्होंने अपने पात्रों में चारित्रिक विलक्षणता का यथार्थ चित्रण कर अंत में आदर्शोन्मुख मोड दिया है।[6] लेखक का उद्देश्य ऐसे एकांकी-साहित्य की सृष्टि करना है, जिसमें आंतरिक संघर्ष का पूर्ण विकास किया जा सके। 'एक्ट्रेस' इस कथन की संपुष्टि करता है। प्रस्तुत एकांकी में वर्माजी ने एक ऐसे युवक अनंगकुमार की कहानी को चित्रित किया है, जो अपनी सभ्यता और संस्कृति को भुला चुका है। अनंग का विवाह एक सीधी-सादी भारतीय सभ्यता की साक्षात् प्रतिमूर्ति प्रभातकुमारी से हो जाता है, जो पश्चिमी रंग-ढंग से बिल्कुल वाकिफ नहीं थी। वह पति परायण नारी थी। अतः वह गैर-पुरुषों के

साथ चुहलबाजियाँ नहीं कर सकती थी, किन्तु यह सब उसके पति अनंगकुमार को गंवारपन प्रतीत होता है और उसे वह घर से निकाल देता है। पति द्वारा त्याग दिये जाने पर वह अत्यंत दुःखी और विचलित होती है, लेकिन अपने आपको संभालकर फिल्मी दुनिया से जुड जाती है। वह फिल्मी तारिका (एक्ट्रेस) बन जाती है। वह प्रभातकुमारी से प्रभा बन जाती है परन्तु अभिनेत्री बनने के बावजूद उसका प्रेमाभिनय केवल अभिनय ही रहता है उसे हकीकत नहीं बनने देती है। वह अपनी पवित्रता को बनाये रखती है। एक छोटी-सी बात जिसके लिये उसके पति ने उसे घर से निकाला था। वह चाहता था कि उसकी पत्नी खन्ना जैसे दुवृत्त शराबी के साथ चुहलबाजी क्यों नहीं करती वही सीधी-सादी प्रभातकुमारी आज करोडों लोगों की कल्पना में निवास करती है। वह उनके समक्ष भी धीरता के साथ पेश आती है। चुँकि वह एक पति परायणा थी अतः भावरुप में केवल अपने पति के प्रति ही समर्पित थी। अंत में वह अपना जीवन त्याग देती है।

'नहीं का रहस्य' एक भिन्न प्रकार की एकांकी है। इसमें एक पचपन वर्ष के अविवाहित प्रोफेसर हैं- हरिनारायण। इनके अविवाहित रह जाने का कारण यह है कि जब इनके पिता इनका विवाह इनकी प्रिय लड़की से कर रहे थे तो इन्होंने संकोचवश नहीं कह दिया तथा पिता ने 'नहीं' का अर्थ 'नहीं' ही समझा। लड़की का विवाह अन्यत्र हो जाता है। हरिनारायण को इतना दुःख होता है कि वह आजीवन अविवाहित रहने का दृढ संकल्प करते हैं। तत्पश्चात् पुनः पिता इनका विवाह जब दूसरी जगह ठीक करने लगे तो इन्होंने फिर 'नही' कह दिया। परन्तु इसका अर्थ 'हॉं' समझा गया। अन्ततः प्रो हरिनारायण ने शादी नहीं की तथा अपनी 'नहीं' की वेदनाओं एवं यातनाओं को भोगते रहते हैं।

'दस मिनट' का कथानक एक बहन और भाई से सम्बंध रखता है। उसमें बलदेव एक आदमी की हत्या कर देता है, वह केशव है। केशव बलदेव के घर में उसकी बहन से बलात्कार करने आता है, बलदेव उसे देख लेता है और उसकी हत्या कर देता है। उसके बाद लाश को एक झाडी में छुपा कर बलदेव अपने अभिन्न मित्र महादेव के यहाँ जाता है। महादेव उससे उस लाश की आँखों में छुरा घुसेड़ने को कहता है, क्योंकि इसी कार्य से उसकी मैली दृष्टि को वास्तविक सजा मिलेगी। वह ऐसा करने जाता है किन्तु पुलिस उसे वहॉं पकड लेती है। वह कहता है, सच्चा अपराधी वह नही, दस मिनट के बाद आयेगा। महादेव, बलदेव का कपडा पहनकर चला जाता है। प्रस्तुत एकांकी अपने आप में एक विशेष प्रकार की रचना है। यह एकांकी अत्यधिक यथार्थवादी है।[7] इसकी सभी घटनायें वर्तमान में घटती हैं। इसका उद्देश्य अपने दोस्त और उसकी बहन के लिये महादेव नामक एक साधारण व्यक्ति के आत्म-बलिदान का चित्रण करना है। लेखक ने हत्या, पुलिस आदि की घटनायें नियोजित करके कुतूहल और जिज्ञासा की सृष्टि कर कथानक में

यथार्थ का पुट भर दिया है। पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान की अधिकता के कारण गति की व्यंजना की गई है, क्योंकि यह एकांकी अभिनयात्मक प्रेरणा से लिखा गया है। यह भावुकताप्रधान एकांकी है जो काव्यगत भावुकता का प्रतिनिधित्व करता है।[8] दूसरे प्रयोग काल रचना होने के कारण इसका संविधान कमजोर है। डॉ. रामचरण महेन्द्र ने इसकी अत्यधिक भावुकता को स्वाभाविकता के लिये अमानवीय बतलाते हुए लिखा है कि "केवल मैली दृष्टि से देखने के कारण एक व्यक्ति का दुसरे को छुरा भौंकना बौद्धिकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। यह संभव है कि आवेश में कोई अदूरदर्शी व्यक्ति ऐसा कर बैठे किन्तु बौद्धिकता की दृष्टि से यह दण्ड अत्यधिक है।"[9]

प्रस्तुत संग्रह की एकांकियों में कुछ सामान्य बातें दिखाई पडती हैं, जैसे सभी एकांकी एक ही दृश्य वाले हैं। इनमें स्थान तथा समय का परिवर्तन नहीं होता है। कार्यगति भी एक ही निश्चित लक्ष्य की ओर गतिमान है। संकलनत्रय का निर्वाह अत्यंत कुशलतापूर्वक किया गया है। कथाएँ अतीत की हैं और वर्तमान के एक बिन्दु पर आकर समाप्त हो जाती हैं।

(ii) **'रेशमी टाई'** नामक डॉ. वर्मा के दूसरे संकलन के अन्तर्गत 'एक तोले अफीम की कीमत', 'अठारह जुलाई की शाम', 'रुप की बीमारी', 'परीक्षा' एकांकियाँ संकलित है। **'रेशमी टाई'** एक चरित्र-प्रधान यथार्थवादी एकांकी है। 'रेशमी टाई' के नायक नवीनचन्द्र की अच्छी-खासी आमदनी है। जीवन-यापन विषयक कोई कठिनाई या संघर्ष उसे नहीं है। लेकिन छुटपन से उसे एक बुरी लत लग गई है। वह बुरी लत यह है कि वह मौका पाकर दुसरे की चीज झटक लेता है। पढते समय किताबों के खरीदने में वह हाथ की सफाई दिखलाया करता था। आज बडा होकर, पैसा कमा कर भी वह वैसा ही कमाल किया करता है। कल ही वह मदन खन्ना के यहॉ टाई पसन्द करने गया था। दुकान पर उसने दो टाईयॉ पसन्द की लेकिन ली एक ही। विक्रेता ने प्रमादवश दोनों ही टाइयों को बंडल में बाँध दिया और दाम एक का ही लिया। अपने हाथ की सफाई नवीनचन्द्र ने दुसरी बार सुधा के गट्ठर से खादी का एक थान निकालकर दिखायी और इससे आगे बढकर अपनी पत्नी लीला की अंगूठी झटक ली।

लीला उसकी बुरी लत पर खीझती है। उसकी प्रतिक्रिया होती है कि नवीनचन्द्र को मदन खन्ना की दुकान पर जाकर एक टाई वापस कर देनी चाहिये। सुधा के थान को तो उसने दाम चुकाकर खरीद ही लिया है। अपने स्वभाव के इस दुर्गुण के लिए शर्मिन्दा होने के बजाय नवीनचन्द्र अपने कुकृत्य का समर्थन यह

कहकर करता है कि पूंजीपति एक के चार वसूल कर, जो अपराध करते हैं उसकी सजा तो उन्हें मिलनी ही चाहिए। नवीनचन्द्र उन्हें अपने आचरण से वही सजा देता है। अपने पक्ष को प्रमाण-परिपुष्ट बनाने के लिए वह मार्क्स का हवाला देता है और कहता है कि दुनिया को बदलना होगा। लीला उससे आग्रह करती है कि वह समाजवाद का नाम न ले। अपने दुर्गुणों को छिपाने के लिए मार्क्स का नाम न बेचे। नहीं तो देश रसातल में चला जायेगा। लीला के समझाने का असर नवीनचन्द्र पर पड जाता है और वह स्वीकार करता है कि 'सोशलिज्म' के विचार रखते हुए भी एक आदमी सच्चाई के साथ रह सकता है। वह लोगों के साथ ठीक बर्ताव रख सकता है। धनवानों से लड़ सकता है, लेकिन सच्चाई के साथ,प्रेम के साथ। वह बुकसेलर की किताबें नहीं उडा सकता है और न ही खद्र का थान.....।[10] अब वह इसी समय मदन खन्ना के यहां टाई वापस भेजेगा।

'अट्ठारह जुलाई की शाम' शीर्षक एकांकी में एक ऐसे दम्पत्ति के वैवाहिक जीवन की तिक्तता को प्रस्तुत किया गया है, जो आर्थिक अभाव की चक्की में पिस रहे हैं। उषा के पिता ने प्रमोद के शिक्षा-संस्कार, शील और उसकी शानदार एम.ए. की डिग्री को देखकर उषा से उसका विवाह कराया। प्रमोद के छात्र-जीवन की उपलब्धियों और उसके चरित्र से वह इतना प्रभावित था कि उसने यह विचार ही नही किया कि उसकी बेटी के नाज उठाने के लिए प्रमोद के पास आर्थिक क्षमता भी है या नहीं। उसे क्या मालूम था कि ये पोस्ट-ग्रैजुएट महाशय डिप्टी क्लेक्टर न होकर चालीस रुपये पानेवाले सम्वाददाता होंगे। इधर उषा है, जो वैभव की गोद में पली है। विश्वविद्यालय में पढते समय वह अपने ऊपर सैंकडों रुपये प्रतिमाह खर्च करती थी। पचास रुपये प्रतिमाह तो वह पिता से सिर्फ जेब-खर्च के लिए पाती थी। चालीस रुपये प्रतिमाह उसका बैरा पाता था। वह नहीं जानती कि खर्च के किस मद को वह घटा दे, उठा दे कि अपने पति की चालीस रुपयों की मासिक आमदनी में उसका गुजारा हो जाय। उसकी कठिनाई सचमुच वास्तविक है। वह कहती ही है - "फासफ़रीन न पिऊँ तो सर में दर्द हो जाता है। फोनटोना के बिना कमजोरी मालूम होती है। यार्डले मुख पर न लगाऊँ तो मालूम हो जैसे बरसों से बिमार हूँ।"[11] अपने पति से वह पूछती है- 'कहिये तो सिरोलिन रोश ही खाना बंद कर दूँ पर उसके बिना कफ़ से सफर करती हूँ। या फिर क्रासवर्ड भेजना बंद कर दूँ ?"[12] प्रमोद ने अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने की अनथक चेष्टा की। अच्छी नौकरी के लिए वह जाने कहॉ-कहॉ चक्कर काटता चला। जो छोटी-सी नौकरी मिल गयी है, उसे ही कलेजे से चिपकाये वह जिन्दगी का बोझ ढो रहा है। वह जानता है कि उसके घर उषा को बडा कष्ट है लेकिन वह करे भी तो क्या?

उषा का एक सहपाठी है अशोक, जो धनवान तो है ही अब मुसिफ होकर हाकिम भी बन गया है। उषा का उसके प्रति एक प्रकार का आकर्षण रहा है। दोनों का विवाह इसलिये नही हो पाया कि कुंडली नहीं

मिली।[13] यह अशोक उषा के घर आकर मसूरी की रंगीन जिन्दगी के सपने बिखेरता है और उषा भी जीवन की मधुयामिनी बनाने के लिए उसके साथ मसूरी जाना स्वीकार कर लेती है। किन्तु राजेश्वरी देवी उषा को पति की महत्ता के प्रति उसके हृदय में नवीन आस्था पैदा करती है और यह सोचने की प्रेरणा देती है कि 'धन और रुतबे से आदमी बडा नहीं होता, आदमी बडा होता है अपने हृदय की उदारता से, विशालता से'[14] उषा की आँख खुल जाती है। अब जब उसका नशा उतर गया है, उसे अपनी अत्यंत साधारण-सी साडी भी बडी अच्छी लगने लगी है।[15]

'एक तोले अफीम की कीमत' एकांकी में मुरारी मोहन नामक नये विचारों मे पूर्ण रीति से रंगे हुए एक ग्रैजुएट की अवतारणा होती है। उसका पिता लाला सीताराम अपने बेटे की भावना का ख्याल नहीं करता। वह सोचना भी नहीं चाहता कि उसके बेटे के पास भी दिल जैसी कोई चीज है, जिसमें हसरते हो सकती हैं।[16] इधर मुरारी है, जो पिता की संतुष्टि के लिए अपने 'कल्चर' को 'किल' नहीं कर सकता है।[17] क्योंकि उसके पिता उसके विवाह को रोजगार बनाने पर तुले हैं और वह सोचता है - Marriage is an event in life... वह जान दे देगा लेकिन किसी फूहड़, गँवार देहातिन से विवाह नहीं करेगा। अफीम के व्यापारी अपने पिता की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर मुरारी आत्महत्या करना चाहता है।

इधर ठीक ऐसी ही समस्या आ खड़ी हुई है विस्वमोहिनी के जीवन में। कॉलेज के द्वितीय वर्ष में पढने वाली विश्वमोहिनी की शादी होनी है। वरपक्ष तिलक-दहेज के रुप में 6000 रुपयों की मॉग करता है। इस रकम को चुकाने में निश्चय ही विश्वमोहिनी के पिता को अपनी सारी सम्पत्ति बेचनी पडेगी। कन्या यह नहीं गॅवारा कर पाती कि उसके विवाह के कारण उसके पिता भिखारी हो जाय। अस्तु, वह भगवान की शरण में जाकर पिता को उबारना चाहती है और आशा करती है, कि उसके बलिदान से शायद हिन्दू समाज की ऑखें खुलें।[18] दोनों की ही समस्या का अंत तब दिखाई देता है जब दोनों का एक होना तय होता है। मुरारी विश्वमोहिनी से कहता है - "Have patience, good girl... सब मामला सुलझ जायेगा।"[19] वह बिना दहेज के विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है।

'रुप की बीमारी' शीर्षक एकांकी नाटक में सेठ सोमेश्वर का इकलौता बेटा रुप एम.ए. में पढ रहा है। उसका मत है कि " इस बदलते हुए जमाने में शादी से अच्छे सिटीजन पैदा न होंगे, प्रेम से अच्छे सिटीजन पैदा होंगे।"[20] इसीलिए वह शादी करना जरुरी नही समझता। ऐसे उसे समाज की परवाह नही है। लेकिन उसकी मुसीबत यह है कि यदि वह शादी न करे तो उसके बूढे पिता को, जिसने उसको पिता के प्रेम के साथ ही मॉ की ममता भी दी है, और जिसने अपनी सारी उम्मीदें उसी पर टिका रखी हैं, बडा सदमा

पहुँचेगा और फिर वह रहता है हिन्दुस्तान में, रुस में नहीं।[21] इसलिए भी शादी की रस्म तो होनी ही है। अतः रुप को विवाह न करने के अपने निश्चय को बदलना ही होगा। रुप जानता है कि वर और कन्या को बिना आपस में एक-दूसरे को समझे, शादी नही करनी चाहिए क्योंकि तब वह शादी दिल की शादी नहीं होगी, दुनिया को दिखलाने की शादी होगी।[22]

इस रुपचन्द को रुप की बीमारी हो गई है।[23] पिछले साल म्यूजिक कान्फ्रेंस मे संगीत के लिए प्रथम पुरस्कार लेनेवाली कुसुम के प्रति उसका प्रबल आकर्षण हुआ है और वह चाहता है कि कुसुम उसके निकट सम्पर्क में आये और धीरे-धीरे उसे अच्छी तरह समझ जाय। रुप उसे अच्छी तरह समझ गया है। अगर वह भी उसे पहचान ले तो रुप धन्य हो जायेगा। रुपचन्द कुसुम को अपने निकट सम्पर्क में लाने के उद्देश्य से बीमारी का स्वाँग करता है। सेठजी के लिए रुपचन्द ही तो एकमात्र सहारा है तथा इससे बढकर वे संसार में किसी चीज को अच्छा नही समझते। "पुत्र-प्रेम के सम्बन्ध में वे ईसा की शताब्दियों में दशरथ के नवीन संस्करण हैं।"[24] अतः दो प्रसिद्ध डाक्टरों - डॉ. कपूर एवं डॉ. गुप्ता को उसका उपचार करने के लिये बुलाया जाता है। ये चिकित्सक बिना निदान (Diagnosis) किए हुए ही उपचार करना प्रारंभ कर देते हैं। जब उनके द्वारा लिखी हुई दवाओं से रुप की बीमारी ठीक नहीं होती है तो डॉक्टर उसका ऑपरेशन करने की सलाह देते हैं। ऑपरेशन के भय से जब रुप अपनी बीमारी का रहस्योद्घाटन करता है, तो आधुनिक डॉक्टरों की कलई खुल जाती है।

'परीक्षा' शीर्षक एकांकी नाटक में मुख्य कथावस्तु को गति देने के लिए प्रो. केदार तथा उसकी पत्नी रत्ना आते हैं। इनकी अवतारणा का लाभ डॉ.वर्मा ने समाज की कतिपय त्रुटियों के प्रकाश के लिए भी उठाया है। प्रोफेसर केदारनाथ की उमर पचास वर्ष की हो गई है। अपनी छात्रा रत्ना के साथ, जिसकी उम्र करीब बीस वर्ष की है, उसका परिचय बढता है और दोनों का विवाह होता है। प्रोफेसर केदारनाथजी अपने एक निकटतम मित्र डॉ. राजेश्वर रुद्र से सदैव युवा बने रहने का प्रबन्ध भी कर लेते हैं, लेकिन इसकी कोई आवश्यकता नहीं पडती है। अपनी पत्नी की परीक्षा करके वे इस निष्कर्ष पर पहॅुचते हैं कि प्रेम के लिए आयु का अन्तर कोई बाधा नहीं है।

प्रस्तुत एकांकी मे रत्ना केदारनाथ से अपने उम्र के अंतराल को नजरअंदाज कर विवाह कर लेती है। क्योंकि केदारनाथ श्रीसंपन्न है। वह सोचती है कि उसका उज्जवल भविष्य इस तरह सुरक्षित हो जायेगा। किन्तु जब वह प्रो. उदयनारायण के यहॉ जन्मोत्सव पर जाती है तो वहाँ से लौटने के पश्चात्

उसका मन खिन्न रहने लगता है। वह स्वयं कहती है कि उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। वह सोचती है कि उसकी भी गोद भरे। उनके ऑगन में भी कोई बालक खेले। उसका मातृत्व तडपने लगता है। किन्तु प्रो. केदारनाथ की क्षमता से बाहर की बात थी। वे चाहकर भी अपनी पत्नी को यह सुख प्रदान नहीं कर पाते हैं। ऐसे में रत्ना का जीवन झुलसने लगता है। उसे सबकुछ निरर्थक लगने लगता है। अब वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकती है, क्योंकि उसने स्वयं ही अपने पाँव पर कुल्हाडी मारी है।

(iii) श्री रामकुमार वर्मा का तीसरा एकांकी संग्रह है **'चारुमित्रा'**। प्रस्तुत एकांकी संग्रह में 'चारुमित्रा', 'उत्सर्ग','रजनी की रात' तथा 'अंधकार' एकांकी संकलित हैं। **'चारुमित्रा'** चरित्र प्रधान एकांकी है जिसमें चारुमित्रा की स्वामीभक्ति तथा वीरतापूर्ण मृत्यु तथा अशोक का उस पर प्रभाव चित्रित किया गया है। साथ ही सम्राट अशोक का अन्तर्द्वन्द्व, परिणति और शौर्य इत्यादि गौण रुप से होते हुए भी हृदय-स्पर्शी रुप में चित्रित हुए हैं। प्रस्तुत एकांकी में अशोक में वीर और क्रोध का मनोवैज्ञानिक चित्रण है साथ ही इतिहास का उतना ही अंश प्रस्तुत किया गया है, जितना अशोक के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक था।

'चारुमित्रा' की कथावस्तु सम्राट अशोक के कलिंग-युद्ध की एक जीवन्त ऐतिहासिक घटना पर आधारित है , जिसमें बचपन से अशोक के महलों में सेविका-चारुमित्रा की कर्तव्यनिष्ठा, स्वामिभक्ति, देशभक्ति और बलिदान का रोचक एवं यथार्थवादी चित्रण किया गया है। इस एकांकी के माध्यम से लेखक ने चण्डशोक के धर्माशोक में परिवर्तित होने को बडे ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। शत्रु-देश की होने के कारण अशोक के हृदय में चारुमित्रा के प्रति सन्देह जागृत हो जाता है, परन्तु यह स्वामिभक्ति युवती सम्राट अशोक को छिपकर मारने वाले कलिंग सैनिकों को धिक्कारते हुए कहती है - "कायरों! तुम लोग मेरे देश कलिंग के नाम को कलंकित करनेवाले हो। यदि सम्राट अशोक को मारना है, तो युद्ध में तलवार लेकर क्यों नही जाते? यहॉ चोरो की तरह घुसकर एक वीर पुरुष से छल करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती?"[25] सैनिक चारुमित्रा को लालच देते हैं, कलिग-विजय का स्वप्न दिखलाते हैं, परन्तु चारुमित्रा अपने स्वामी से विश्वासघात नही करती और सैनिकों पर तलवार लेकर टूट पडती है जिससे घायल होकर दो सैनिक तो भाग जाते है परन्तु एक सैनिक की तलवार से वह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पडती है। सम्राट अशोक जब सारी घटनाओ से परिचित होता है, तब वही नहीं, सारे मगधवासी इस कलिंग-कन्या की स्वामिभक्ति एव कर्तव्यपरायणता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। यह आदर्शोन्मुख यथार्थ पर आधारित मनोवैज्ञानिक एकांकी है। डॉ. वर्मा ने यहॉ एक प्रतिपादित किया है कि संसार की बडी से बडी घटना के पीछे कभी-कभी बहुत छोटी-सी घटना भी रहा करती है। इसी ओर संकेत करते हुए यह प्रदर्शित किया गया है कि अशोक के

इतिहास प्रसिद्ध महान परिवर्तन के मूल में चारुमित्रा का बलिदान था। वस्तुतः चारुमित्रा की स्वामीभक्ति एवं बलिदान की प्रेरणा से अशोक के हृदय परिवर्तन को चित्रित करना ही इस एकांकी का प्रयोजन है।

'उत्सर्ग' शीर्षक एकांकी में डॉ. शेखर एक महान् वैज्ञानिक हैं। जो मृत्यु के रहस्य को हासिल करने के लिए अनथक प्रयत्न और प्रयोग करता है। वह मनुष्य के सुक्ष्म शरीर को उसके स्थूल शरीर से पृथक करने की चेष्टा करता है। इस प्रयोग में वह सिद्ध हो जाता है। उसने ऐसा यंत्र तैयार कर लिया है, जिसके सहारे वह मृतात्माओं को अपने पास बुलाता है और मनुष्य का भौतिक शरीर देता है तथा उनसे बातें करता है। डॉ. शेखर छाया नामक एक स्त्री से प्रेम करता है, किन्तु दोनों का विवाह नहीं हो पाता है क्योंकि शेखर को अपने एक अभिन्न मित्र की विधवा पत नी और उसकी बेटी मंजुला के संरक्षण का कर्तव्य संभालना पडा। उसने सोचा कि छाया से विवाह करने के बाद वह अपना यह कर्तव्य निष्ठापूर्वक पूरा नहीं कर सकेगा। उसे यह उम्मीद थी कि उसके उत्सर्ग का मोल छाया के हृदय में होगा और वह शेखर का अनुमोदन करेगी। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं होता है। छाया शेखर से विवाह न कर सकने के फलस्वरुप मर जाती है। एक दिन मृत छाया की प्रेतात्मा डॉ. शेखर के यंत्र पर शरीर धारण कर आती है और चेतावनी देती है कि वह यंत्र को तोड दे तथा मृत्यु के पार झॉकने का दुस्साहस न करे अन्यथा वह उसके मित्र की पुत्री मंजुला को इस संसार से सदा के लिए ले जाकर अपने उपेक्षित प्रेम का प्रतिशोध लेगी। डॉ. शेखर छाया के प्रेत से मंजुला के प्राणों की भीख माँगता है और छाया की संतुष्टि के लिए वह यंत्र, जिसके सहारे वह प्रेतात्मा को अपने पास बुलाता था, तोडकर फेंक देता है।

'रजनी की रात' शीर्षक एकांकी में नारी की वर्तमान समाज में अधोगति की लज्जाजनक स्थिति को देखकर आधुनिक शिक्षाप्राप्त रजनी समाज की उपेक्षा करती है। इनका दोषारोपण समाज पर करती हुई समाज को गिरा हुआ मानती है।[26] समस्त दुनिया उसे स्वार्थ में लिप्त प्रतीत होती है। उसका मत है कि मनुष्य को उसके मायाजाल से निकलकर अपना अलग अस्तित्व बनाना चाहिए। अन्यथा उसका व्यक्तित्व धूमिल होकर समाज में विलीन हो जायेगा। वह समाज में हो रहे नारी पर अत्याचार को देखती है कि लड़की के जन्म के साथ ही पिता को केवल उसके विवाह की चिन्ता सताने लगती है। उसे पढ़ाया भी इसीलिए जाता है कि उसे दूसरे घर जाना है और कहीं अच्छे घर में जाना है। उसे बचपन से यही सुनने को मिलता है कि ऐसा मत कर, तुझे दूसरे घर जाना है, ऐसा ही कर। बस एसी ढर्रे पर उसे जीवन भर ऑखें बंद किए कोल्हू के बैल की तरह चलते जाना है, क्योंकि उसका निजी अधिकार तो उसे प्राप्त ही नहीं। यहाँ से पति के घर जाना फिर वही स्थिति। लडकी केवल गुलाम बनकर गुलामी ही करती रह जाती है। यही सबकुछ देखकर रजनी कभी किसी की गुलाम बनकर गुलामी करना नही चाहती है। वह करती है- 'मै परिवार और

समाज नहीं चाहती। मैं मनुष्य के लिए पूरी स्वतंत्रता चाहती हूँ। बंधन मनुष्य का कलंक है।"

आनंद जो रजनी की सखी कनक का भाई है। वह समाज को अनिवार्य संस्था मानता है। वह मानता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उससे अलग-थलग रहकर मनुष्य कभी सुखी नहीं रह सकता है। मनुष्यों के समूह को समाज कहा जाता है। अतः समूह से विलग एक प्राणी कैसे खुश रह सकता है। वह रजनी को समझाता है कि इससे कटकर मनुष्य प्राणहीन हो जाएगा। आनंद इस बात को अस्वीकार नहीं करता है कि समाज में काफी बुराईयाँ घर कर गई हैं। हमें चाहिए कि उसे दूर करने के अथक प्रयास में लगें। आनन्द भी परंपरागत रुढियों का विरोधी है। वह रजनी को समझाता है कि हमें सामाजिक अनर्गलताओं के प्रति विरोध का स्वर समाज में रहते हुए ही व्यक्त करना चाहिए। एक सामाजिक संगठन बनाकर इस उद्देश्य को कार्यरुप में परीणित करना चाहिए लेकिन समाज से मूँह मोडकर भागना, एकात में चले जाना, विद्रोही आत्मा की हार है। इसे समाज से पलायन ही कहा जाएगा। इस तरह आनंद मानता है कि रोग-जर्जर समाज की समस्याओ का हल समाज में रहकर ही कियाजा सकता है। न कि रजनी की तरह समाज से पलायन करके।

प्रस्तुत एकांकी मे एक रात रजनी के साथ एक अजीबोगरीब घटना घटती है। एक सूने शिविर पर जब रजनी अकेली थी तो गुण्डे शशि नामक लड़की को जबरन उठाकर ले जाते हैं। रजनी चाहकर भी शशि के लिए कुछ नही कर पाती है। वह स्वयं को भी अकेली और असमर्थ पाती है। वह केवल आह भरकर रह जाती है। आह के साथ एक टीस भी उसके हृदय में उठती है कि स्त्री अपनी रक्षा स्वयं क्यों नहीं कर पाती है, लेकिन आनन्द उन गुण्डों की योजना को छिन्न-भिन्न करके शशि को उनसे, अपना सामाजिक धर्म निभाते हुए बचा लेता है। इस तरह आनन्द ने एक स्त्री की रक्षा कर अपने सामाजिक दायित्व को बखूबी निभाया तथा प्रत्येक मनुष्य के लिए एक मिसाल रखी कि प्रत्येक मनुष्य को समाज के प्रति जो उसके कर्तव्य हैं उसे भूलना नहीं चाहिए। रजनी जैसी युवतियों को समाज से विलग रहकर नहीं समाज में उतरकर समाज में जो भी बुराईयॉ हैं जिन्हें उन्होंने भुगता है या महसूस किया है, उन्हें निर्मूल करने पर आज से ही प्रतिज्ञा ले लेनी चाहिए। समाज में स्थित ऐसी समस्याओ को जड से उखाड फेंकने के लिए अवश्य ही प्रतिज्ञाबद्ध होना पडेगा।

'कलंक रेखा' एकांकी में 19वीं शताब्दी का एक मर्मस्पर्शी चित्र है। अपने विवाह के कारण पिता और राज्य को संकट मे पडा देखकर उदयपुर की कृष्णाकुमारी ने जिस अलौकिक वीरता और साहस के

साथ विषपान द्वारा अपने पार्थिव शरीर का परित्याग किया, उससे अकेली कृष्णा ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय नारी-समाज के मस्तक पर कीर्ति की रेखा खिंच गई। यही कीर्ति की रेखा उदयपुर के महाराणा भीमसिंह के लिए एक अमिट कलंक-रेखा बन गई। पुत्री की रक्षा का भार उनके कंधों पर था, किन्तु शत्रुओं से भयभीत होकर उन्होंने न केवल कृष्णा की हत्या का प्रस्ताव स्वीकार किया, अपितु उसके वध के लिए आदेश तक दे दिया। किन्तु हत्या के लिए उद्यत चाचा की आत्मा ने उसे धिक्कारा। उसके हाथ काँप उठे और कृष्णा के बार-बार प्रेरित करने पर भी वह महाराणा का आदेश का पालन न कर सका। अन्ततः कृष्णा ने स्वयं पिता की चिन्ता दूर करने का निश्चय किया तथा वह उसमें सफल हुई। कृष्णा का अपूर्व साहस, धैर्य, बुद्धिमता और बलिदान भारतीय नारी का आदर्श चित्रित करता है।

'अंधकार' एकांकी पौराणिकता के साथ-साथ आध्यात्मिक चिन्तन को आधार बनाकर लिखा गया है। इस पर पाश्चात्य नाट्यकार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के "बैक टू मैथ्यूसेल" नामक नाटक के प्रारंभिक अंक की छाप परिलक्षित होती है।[27] शॉ के पौराणिक आख्यान से प्रेरित होकर वर्माजी ने भारतीय पौराणिक आख्यान पर आधृत सृष्टि के प्रारंभ की कथा का नाटकीय वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें जीवात्मा प्रेम और विवाह आदि के सम्बन्ध में जितने भी प्रश्न उठते हैं, उन पर शॉ के उक्त नाटक का प्रभाव है।[28] प्रस्तुत एकांकी की पृष्ठभूमि दार्शनिक होने के कारण कुछ प्रसिद्ध विचारक तो इसे एक प्रकार का 'दार्शनिक रुपक' मानते हैं।[29] श्री रामनाथ 'सुमन' ने इस एकांकी को दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधृत होने के कारण 'हिन्दी का ही नहीं, बल्कि भारतीय साहित्य का एक सर्वश्रेष्ठ नाटक' माना है।[30] संसार में ऊपर उठकर संसार की व्याख्या करने का एक कौतूहलजनक प्रयोग इस नाटक में है। "जड़, चेतन, गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार" से ही वर्माजी को इस नाटक के लिखने की प्रेरणा मिली है। इस पर श्रीमद्भागवत का विशेष प्रभाव है।[31] यह एकांकी पारस्परिक आख्यान पर आधृत होते हुए भी आधुनिकता का बोध सन्निहित किये हुए है, क्योंकि यह मनोविश्लेषणात्मक जीवन-दृष्टि पर आधारित है। इसमें वैयक्तिक प्रेम और व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा हुई है। प्रजापति के माध्यम से लेखक अंधकार का रहस्योद्घाटन कराता है। वस्तुतः इस एकांकी में लेखक की कल्पना ने नए संसार की सृष्टि की है। यह संसार देवताओं का संसार है जो अंत में मानवता से हार मान लेता है। नियति का यह चक्र किस वेग से घूम सकता है, जिसमें प्रजापति अपनी असमान्यता से गिर जाता है और मानव अपनी निर्बलता से अमर हो जाता है। मानव की निर्बलता ही उसकी सबसे बडी शक्ति है।[32]

प्रस्तुत एकांकी में प्रजापति सृष्टि के रचयिता विद्याधर को बताते हुए कहते हैं कि सर्वत्र अंधकार

व्याप्त है अर्थात् भयानक पाप और भीषण दुराचार हो रहे हैं। प्रजापति पुरुष और स्त्री के निर्माण द्वारा इस अधकार को दूर करने की चेष्टा करते हैं। मेनका में विजय गर्व था जो पुरुष की विशेषता है और विद्याधर मे आत्मसमर्पण है जो स्त्री की विशेषता है। अतः मेनका को पुरुष और विद्याधर को स्त्री के रुप में समस्त भू-लोक में व्याप्त अनाचार, पाप अर्थात् अंधकार को नष्ट करने के उद्देश्य में भेजा। एकांकी में एक स्थान पर जीवात्मा से प्रजापति कहते हैं कि ... "राजा कहेगा अन्न उत्पन्न करो और मेरा कोष भरो, किसान अन्न उत्पन्न करेगा और राजा का कोष भरेगा। स्वामी कहेगा - काम करो और भूखे रहो। सेवक काम करेगा और भूखा रहेगा।"

प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से वर्माजी गतिशीलता में प्राण भरना चाहते हैं। अंधकार का विनाश ही जैसे उनके जीवन का उद्देश्य है। वह अंधकार जो पाप से उत्पन्न है जिसके तामसी रहस्य में पाप के विकास की सीमाएँ बहुत दूर तक फैल जाती हैं। हमें अपनी शक्ति से अंधकार को प्रकाश में परिवर्तित करना होगा। इस महत् उद्देश्य के साथ ही प्रस्तुत एकांकी रचित है। परन्तु एक स्थान पर माया और कश्यप इस पर जोर देते हैं कि अंधकार का रहना आवश्यक है। माया का कहना है कि पुण्य के विकास के लिए पाप की पृष्ठभूमि है, उसी प्रकार प्रकाश के विकास के लिए अधकार की भूमि चाहिए। कश्यप कहते हैं कि अंधकार नहीं होगा तो पुरुष और देवताओं में अंतर ही क्या रह जायेगा।

IV. आपका चौथा एकांकी संग्रह है '**विभूति**' । इसमें 'शिवाजी', 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' एवं 'सम्राट विक्रमादित्य' एकांकी संकलित है। '**शिवाजी**' एकांकी की रचना शिवाजी के ऐतिहासिक चरित्र के आधार पर हुई है। इतिहास में शिवाजी की जीवन-गाथा स्वर्णिम अक्षरों से आलेखी गई है। भारतीय नाटक नायक की भॉति उनका चरित्र धीर, वीर एवं उदात्त गुणों से संपन्न है। इतना ही नहीं अपितु उनके चारित्रिक गुणों में देश-प्रेम और सांस्कृतिक गुणों का ऐसा परिष्कृत रुप पाया जाता है कि उन्हें राष्ट्रीय चरित्र का एक उज्जवल दृष्टांत कहा जा सकता है। एकांकीकार शिवाजी के चारित्रिक गुणों को उद्‌घाटित करते हुए हमारे सांस्कृतिक धरोहर के प्रति युवा पीढ़ी को आकर्षित करने का यत्न किया है। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर पतन के गर्त में जा रही युवा-पीढ़ी में सांस्कृतिक सींचन का महत्वपूर्ण कार्य प्रस्तुत एकांकी का उद्देश्य प्रतीत होता है।

युवा शिवाजी नैतिकता के प्रतीक है, जो यौवन एवं सौन्दर्य की साक्षात् मूर्ति गौहरबानू को बडी श्रद्धा से देखता है। यहॉ तक उसके मुख-कमल को देखकर उसे अपनी मॉ जीजाबाई के दर्शन होते हैं,

इसीलिए तो गौहरबानू को माँ पुकारते हुए प्रणाम करता है। सरदार आबाजी सोनदेव के द्वारा की गई गलती को अपनी समझकर अपने-आपको उससे मुक्त नहीं समझता है। वह कहता है - "आबाजी! जानते हो कि सेना के आक्रमण में मेरा आदेश है कि शत्रुओं के देश की स्त्रियों का किसी तरह भी अपमान नहीं होना चाहिए। उन्हें माँ, बहनों के समान आदरणीय और पुज्य समझकर उनकी इज्जत करनी चाहिये।"[33] वह सरदार आबाजी का मनोविज्ञान समझ जाता है तो पूछता है कि, "मेरे सेनापति होकर तुमने मेरे सिद्धांतो के विरुद्ध क्यों ऐसा काम किया? क्या तुमने मुझे सदाचार की कसौटी पर कसना चाहा या मेरी परीक्षा ली या अपने स्वार्थ-साधन का रास्ता तैयार करना चाहा? तुमने समझा होगा कि गौहरबानू के सौन्दर्य के सामने शिवाजी का सिद्धान्त पानी हो जायेगा , किन्तु भवानी भक्त शिवाजी भवानी का भक्त होने की योग्यता भी रखता है। जीजाबाई का पुत्र शिवाजी शत्रु की स्त्री में भी जीजाबाई की तस्वीर देखता है।"[34] डॉ. वर्मा के 'शिवाजी' एकांकी के माध्यम से यह सूचित किया गया है कि शिवाजी का किसी धर्म से विरोध नहीं था। उनकी सख्त ताकीद थी कि कुरान और पुराण को तथा मंदिर और मस्जिद को समान मानकर उनको नुकसान न पहुँचाया जाय। इस्लाम धर्म के प्रति उनके मन में विरोध भाव नही था। उनकी सेवा में पर्याप्त संख्या मे मुसलमान सैनिक थे, जो इस बात को प्रमाणित करते हैं।

'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' एकांकी में समुद्रगुप्त की न्याय-निष्ठा का परिचय मिलता है। समुद्रगुप्त न्याय को देवता मानकर पूजते थे और अन्याय को दैत्य समझकर उसका विनाश करते थे। एक बार बोधगया में एक विशाल मठ बनाने तथा भगवान बुद्ध की रत्नजडित स्वर्ण-प्रतिमा का निर्माण करने का कार्य शुरु होता है। सिंहल की राजमहिर्षे कुमारिला धवलकीर्ति नामक एक दूत के हाथों दो हीरक खण्ड इस अनुरोध से समुद्रगुप्त पराक्रमांक को भेज देती है कि भगवान बुद्ध की प्रतिमा के अंगुष्ठ नखों के स्थान पर विजड़ित हों। भांडागार का अधिकरण मणिभद्र उन दोनों हीरक खण्डों को भांडागार में सुरक्षित रखता है, परन्तु वीरबाहु तथा घटोत्कच नामक कलाकारों को पुरस्कार के रुप में दी जाने वाली स्वर्णमुद्राओं की गिनती करते समय धवलकीर्ति वे दोनों हीरक खण्ड उसे भेंट कर देता है। इधर चोरी की वार्ता सुनकर समुद्रगुप्त पराक्रमांक को बहुत दुःख होता है। वे धवलकीर्ति के सामने ही प्रतिज्ञा करते हैं कि चोरी का पता लगाने में उन्हें यश न मिले तो वे भगवान बुद्ध की प्रतिमा के सामने घोर प्रायश्चित करेंगे। धवलकीर्ति, वीरबाहु , घटोत्कच, मणिभद्र आदि की बातें सुनने के बाद वे राजनर्तकी को नृत्य करने का आदेश देते है और खुद वीणा पर केदारा बजाते हैं। वीणा के संगीत से प्रभावित होकर नर्तकी रहस्य को खोल देती है। राजा को संतोष होता है। राजदूत होने के कारण वे धवलकीर्ति को खुद दण्ड न देकर सिंहल के सामन्त के द्वारा दण्ड की उचित व्यवस्था करना चाहते हैं। इतने में स्वयं लज्जित होकर धवलकीर्ति आत्महत्या कर

लेता है। स्वयं दण्डित होने से वह सब अपराधों से मुक्त हो जाता है।

प्रस्तुत एकांकी में समुद्रगुप्त की न्यायप्रियता, सूक्ष्म प्रतिभा एवं बुद्धि की झाँकी उपस्थित की गई है। इसमें महाराज समुद्रगुप्त के चरित्र में दो तत्वों पर विशेष रुप से प्रकाश डाला गया है - बौद्धिकता, कुशाग्रता तथा संगीत कुशलता। वे ऐसी वीणा बजाते हैं कि अपराधी विह्वल हो उठता है। उसे आत्मग्लानि अनुभव होती है। पापवासना, मोह, चोरी इत्यादि विकार नष्ट हो जाते हैं। अंत में दोषी धवलकीर्ति पश्चात्ताप की अग्नि मे दग्ध होकर आत्महत्या करता है। महाराज समुद्रगुप्त की बुद्धि इस एकांकी का प्राणतत्व है। समुद्रगुप्त न्याय के समर्थक हैं और न्याय की प्रतिष्ठा में वे मरण को भी एक पर्व मानते हैं। उनमें राजनैतिक अन्तर्दृष्टि के साथ ही कलात्मकता दृष्टिगोचर होती है। संगीत के माध्यम से 'अपराध स्वीकृति' का प्रतिपादन किया गया है। इस तरह इसमें बौद्धिकता एवं संगीत कुशलता का बडा ही मार्मिक समन्वय हुआ है। एकांकी में वर्माजी का कवित्व झलकता है तथा संगीत के प्रति लगाव प्रतीत होता है।

'सम्राट विक्रमादित्य' एकांकी की कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त है। पर्दा उठते ही शककुमार भूमक विभावरी के वेश में सम्राट विक्रमादित्य की न्याय-सभा में आकर अपना यह अभियोग प्रस्तुत करता है कि उज्ञयिनी नगरी में स्त्री वेशधारी पुरुष से पुष्पराग उद्यान में अपमान हुआ है। वह अपराधी को पुष्पराग उद्यान की रक्षिका से बंदी बनाकर लायी है। विक्रमादित्य विभावरी को इसलिए फटकारते हैं कि उसने अपमान करनेवाले से प्रतिशोध न लेकर आर्यनारी के धर्म का पालन नहीं किया। इसके पश्चात् उनके समक्ष अभियुक्त लाया जाता है जो कभी अपने को पुरुष और कभी स्त्री कहता है। अंत में अभियुक्त स्पष्ट कर देता है कि अभियुक्त उज्ञयिनी की नारी पुष्पिका और विभावरी शक राजकुमार भूमक है। उसने आत्मरक्षा के लिए स्त्री वेश धारण किया है। वह इस प्रकार सैनिकों के संरक्षण में उज्जयिनी सीमा से निकलना चाहता था, क्योंकि अकेले जाने से उसे प्राण-संकट का भय था। वह उसका उपकार करने वाला है। उसने शकों से उसकी रक्षा की थी और अपमानित होने से बचाया था। विक्रमादित्य यह जानकर कि विभावरी भूमक है वे उसे उसकी कायरता पर फटकारते हैं। वह द्वंद्वयुद्ध के लिए तलवार चाहता है। विक्रमादित्य उसे प्रहरी के साथ सैनिक वस्त्र-विन्यास धारण करने को भेजते हैं। भूमक ने स्त्री वेश धारण किया है इसलिए वे उससे युद्ध करना भी अपनी वीरता के विरुद्ध समझते हैं। वे पुष्पिका को दो मास का कारावास तथा भूमक के दोनों हाथ काटे जाने का आदेश देते हैं। बधिक भूमक पर तलवार का वार करता है। पुष्पिका बीच में आकर घायल हो जाती है। इससे प्रभावित होकर भूमक प्रायश्चित के रुप में आर्य-धर्म स्वीकार कर लेता है। विक्रमादित्य भूमक को मुक्त करते हुए पुष्पिका का भी अपराध क्षमा कर देते हैं। पुष्पिका के प्रार्थना स्वरुप

युधिष्ठिर संवत् के स्थान पर विक्रम संवत का प्रचलन होता है- "पुष्पिका - सम्राट (टूटे स्वर में) मेरी.... एक..... प्रार्थना ..... आज ......की ..... अमर... घटना ..... की स्मृति.. में .... आपका.... संवत्... ..प्रचलित..... हो।"[35]

'विक्रमादित्य' नामक एकांकी में सम्राट विक्रमादित्य के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। विक्रमादित्य की कुशलता के कारण स्त्री वेशधारी शक राजकुमार भूमक को यह स्वीकार करना पडता है कि वह पुरुष है। अंत में प्रायश्चित के रुप में वह पुष्पिका को बहन के रुप में स्वीकार करता है। प्रस्तुत एकांकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधृत होने के साथ ही साथ उसमें समसामयिक जीवन को नवीन दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो कि पुराने गौरवमय इतिहास का यह चित्र प्रस्तुत करके वर्माजी वर्तमान समाज की नैतिक व्यवस्था के स्थान पर विक्रमादित्य कालीन उच्चतर भारतीय नैतिक जीवन की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। इस प्रकार इसमें विक्रमादित्य के नारी-सम्मान, स्वाभिमान, न्यायप्रियता और राष्ट्रप्रेम आदि को यथातथ्य अभिव्यक्त किया है।

प्रस्तुत एकांकी में उज्जयिनी में सन् 57 ई.पूर्व की पृष्ठभूमि पर विरचित है। एक कल्पित कहानी को आधार मानकर एकांकीकारने सम्राट विक्रमादित्य का न्याय, उनका तर्क, तीव्र बुद्धि, अन्तर्दृष्टि, स्त्री-पुरुष मनोविज्ञान, आर्य धर्म के प्रति श्रद्धा, गौ-ब्राह्मण की रक्षावृत्ति तथा चरित्रबल को स्पष्ट किया है। उनके न्याय के सामने सभी समान हैं। अपराध करने पर वे जिस प्रकार शक राजकुमार को दंडित करते हैं, उसी प्रकार से उज्ञयिनी नारी पुष्पिका को भी दंडित करते हैं।

पुष्पिका में एक आर्यनारी के समस्त गुण हैं। वह उपकारी का उपकार नहीं भूलती। वह शक राजकुमार भूमक के षडयंत्र में इसीलिए सम्मिलित हुई थी। वह अपने उपकार करनेवाली की रक्षा करना चाहती है। प्रस्तुत एकांकी में भूमक का चरित्र विकासशील है। उसमें क्रूरता, हिंसा आदि शकों के जातिगत अवगुण नहीं है। उसमें दया, उपकार और अहिंसा की भावना है।

V. डॉ वर्मा ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में महत्वपूर्ण एकांकियों की रचना की है। आपके एकांकी संग्रह 'सप्तकिरण' में 'राजरानी सीता', "औरंगजेब की आखिरी रात', 'पुरस्कार', 'कलाकार का सत्य', "फैल्ट हैट', 'छोटी सी बात' तथा 'ऑखों का आकाश' नामक एकांकियाँ संकलित हैं।

'राजरानी सीता' पौराणिक एकांकी है। इसमें सीता के मन में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्र अंकित किया गया है। एकांकी का कथानक अशोकवाटिका प्रसंग पर आधारित है। नारी के विषय में डॉ. वर्मा की जो महती कल्पना है, उसका आधार प्रस्तुत एकांकी है। सीता के मन में उठने वाले भाव- विरह, आतुरता, प्रिय मिलन की आकांक्षा, स्मरण आदि मनोविज्ञान के नियमों पर आधारित है। आपकी यह कल्पना कि सीता - सीता न होकर एक सामान्य नारी है उसमें उदित - हर्ष, विषाद, विरह, करुणा, क्रोध, ममता आदि भावों से परिपूर्ण एक जीती-जागती भाव-प्रतिमा है। प्रस्तुत एकांकी में राजरानी सीता को वर्माजी ने शक्ति के विशाल एवं विराट पुंज के रुप मे चित्रित किया है जो प्रबल प्रतापी रावण को भी दो टूक कहने में कतराती नही है। "सीता - चुप रह दुष्ट! क्या तुझे लज्जा नहीं आती कि मुझे एकांत में पाकर हरण करता है और अपनी शक्ति का आडम्बर मुझे दिखलाना चाहता है? अन्यायी भी कभी शक्तिशाली हो सकता है? पापी भी कभी भक्त हो सकता है, कायर भी कभी शूरवीर हो सकता है? जिसने अपनी सारी लज्जा खो दी, वह अपने सम्मान की बात किस मुख से कह सकता है? जिसके सामने संन्यासी, चोर, भिक्षुक और कायर नहीं है, वह रावण प्रभु राम से. ."[36]

इस प्रकार इसमें भारतीय संस्कृति के उज्जवल पक्ष को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करके भारतीय नारी के उच्च मानवीय आदर्श को वर्माजी ने प्रतिपादित किया है। सीता अपनी गरिमा एवं महिमा में संपूर्ण नारीजाति के लिए वरेण्य़ है। उसका त्याग और तपस्यापूर्ण जीवन नारी जाति के महत्व का द्योतक है, जिसकी पतिपरायणता एवं कर्त्तव्यनिष्ठा प्रत्येक नारी के लिए अनुकरणीय है और विविध प्रकार के प्रलोभन दिए जाने पर भी रावण के महलों की शोभा बनना न स्वीकार करके भारतीय संस्कृति के वर्चस्व से परिपूर्ण होने के कारण नारी समाज का गौरव है।

'औरंगज़ेब की आखिरी रात' एकांकी इस तथ्य की पुष्टि करता है, जिसमें अठारह फरवरी 1707 ई. की रात्रि के तीन बजे मृत्यु शैय्या पर पडे आलमगीर औरंगजेब की पश्चात्ताप एवं आत्मग्लानि का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। बादशाह की मनःस्थिति बडी ही दर्दनाक, मलीन एवं प्रायश्चित से ओत-प्रोत है। उसकी पुत्री जीनत उन्निसा बेगम उसके दायीं तरफ सुसज्जित पीठिका पर विराजमान है, जिसे वह अपनी विगत स्मृतियॉ सुना रहा है। सुनाते समय वह इतना भावुक एवं प्रायश्चित की अग्नि में दग्ध हो जाता है कि ऑसू मानो पश्चाताप को धोनेवाले दो लघु स्त्रोता हों। वह कहता है कि, "जिन्दगी उससे ज्यादा बीत चुकी है! (नेपथ्य की ओर उॅगली उठाकर) देखती हो यह अंधेरा? कितना डरावना! कितना खौफनाक! दुनिया को अपने स्याह परदे मे लपेटे हुए है। गोया यह हमारी जिन्दगी हो ! इसमे कभी सुबह नही

होगी, जीनत? अगर होगी भी तो वह उसके काले समुंदर में डूब जायेगी। इस अंधेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जायेगा!.... (रुककर) ओह..... कितना अंधेरा है, खुदा! हमने तेरा नाम लेकर सल्तनत पर कब्जा किया, तेरा नाम लेकर औरतों और बच्चों को कैद किया, वे सब तेरे बच्चे! तेरे बन्दों पर ऐतबार नहीं किया! तेरा नाम लेकर... कुरान की कसम खाकर मुराद .. भाई मुराद से सुलह की और फिर.... और फिर. उसका खून.... ।"[37]

'औरंगजेब की आखिरी रात' एकांकी में औरंगजेब के व्यक्तित्व के कई रुप हमारे समक्ष उभरते हैं। औरंगजेब एक बादशाह के रुप में तथा चरित्र के सभी पहलुओं, वीरता, सतर्कता, इस्लाम धर्म के प्रति प्रेम, प्रसार की योजना, राजपूतों एवं मराठों के प्रति कटुता एवं घृणा, हिन्दू धर्म के प्रति विद्वेष, चिंताजनक आर्थिक स्थिति, शक-शुबा, परेशानियाँ, मानसिक विक्षुब्धता, हृदय की विकलता, कमजोरी और बुढ़ापे की बेबसी, हजारों सतनामियों के कत्ल, द्वार, शुजा, मुराद का तख्त ताउस का हक न देना, बाप को कैद करने पर घोर पश्चाताप, घबराहट, तडप आदि सभी को बरे दर्दनाक ढंग से पस्तुत किया गया है। एकांकी में औरंगजेब को उसके जीवन की आखिरी रात में एक सामान्य मानव के रुप में प्रस्तुत किया है। समस्त चारित्रिक पहलुओं से समसामयिकता का बोध होता है।औरंगजेब के हृदय से निस्रत अर्थात स्फुटित प्रत्येक वाक्य से दर्द और पश्चाताप टपकता है। प्रस्तुत एकांकी में कार्यकलाप अधिक नहीं, भावोद्गार अधिक हैं। बुखार के प्रलापों द्वारा विगत स्मृतियाँ हरी होती हैं और पश्चाताप की अग्नि निकलती है। एकांकी के अनेक अंश करुणा, पश्चाताप, आत्मग्लानि से ओत-प्रोत हैं और उनमें चित्रोपमता भरी हुई है। सजीव वर्णन और पुरानी घटनाओं के स्मृतिचित्र बड़े मार्मिक हैं। वर्माजी ने मनोविश्लेषण की शैली बडी सफलता से अपनाई है। औरंगजेब के गूढ़ मन में पडी हुई अनेक दुःखद स्मृतियाँ आत्मग्लानि से मथित होकर स्मृति-पटल पर आ जाती हैं।

प्रस्तुत एकांकी में ऐतिहासिक सत्यता के साथ भावनाओं का तीखापन है। इसमें निर्देशित चरित्र ऐतिहासिक खोजों की आधारशिला पर खडा किया गया है। औरंगजेब के जीवन के समस्त मनोभावों को प्रतिक्रियाओं को घटनाओं का आश्रय देकर वर्माजी ने मंच पर उपस्थिति करने की चेष्टा की है। इस एकांकी का समस्त मनोविज्ञान उन ऐतिहासिक पत्रों पर आधारित हैं, जो औरंगजेब ने अपने जीवन के अंतिम क्षणों में अपने पुत्रों को लिखे थे।

श्री रामकुमार वर्मा जी की अन्य एकाकियाँ हैं - कौमुदी महोत्सव, कादम्ब या विष, स्वर्ण श्री, दुर्गावती, मर्यादा की वेदी पर, रात का रहस्य, वासवदत्ता, सही रास्ता, दीपदान, सम्राट उदयन पर अभियोग, प्रतिशोध, भाग्यनक्षत्र, तैमूर की हार, कलंक रेखा, ध्रुवतारिका, राज्यश्री, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया,

सोन का वरदान, कृपाण की धार, दीने-इलाही, पानीपत की हार, नाना फडनवीस तथा बापू एकांकी हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा के **'कौमुदी महोत्सव'** एकांकी मगध सम्राट चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व से सम्बंधित है। नन्द वंश की हत्या के बाद चन्द्रगुप्त मगध सम्राट बनता है और विजय की खुशी में शरद पूर्णिमा के अवसर पर कौमुदी महोत्सव मनाने की घोषणा खुद करता है। नन्द के प्रति राजभक्ति रखने वाले लोग इस अवसर का फायदा उठाकर कूटनीति से चन्द्रगुप्त को मिटाने की याजना बनाते हैं। नंद के मंत्री राक्षस की प्रेरणा से समाहर्ता वसुगुप्त राज-नर्तकी के नृत्य की योजना के बहाने विषकन्या अलका को पहचान कर अपने अधिकार में कौमुदी महोत्सव को रोक देता है। तब चन्द्रगुप्त और चाणक्य में इस को लेकर संघर्ष होता है कि आखिरकार सम्राट कौन है? चन्द्रगुप्त या चाणक्य? चन्द्रगुप्त के स्वतन्त्र व्यक्तित्व और चाणक्य की चतुरता का परिचय तब मिलता है, जब चाणक्य यह सिद्ध कर दिखाता है कि राजनर्तकी विषकन्या है और उसके विष का प्रयोग चन्द्रगुप्त पर करने का षडयन्त्र रचा जा चुका है, तब चन्द्रगुप्त को चाणक्य की अवहेलना करने का पश्चाताप होता है। यह घटना ई.पू. 322 की है।

वर्माजी के ऐतिहासिक एकांकियों में 'कौमुदी महोत्सव' का विशेष महत्व है। प्रस्तुत एकांकी से ज्ञात होता है कि कोई भी शासन केवल शक्ति के बल पर स्थिर नहीं रह सकता। उसके लिए बुद्धि या युक्ति का सहयोग आवश्यक है। चन्द्रगुप्त की शक्ति और चाणक्य की कूटनीति के समन्वय से ही चन्द्रगुप्त राजा बना और अपने साम्राज्य का विस्तार भी कर सका। कूटनीति से चन्द्रगुप्त की हत्या की योजना के पूर्णतया ऐतिहासिक होने पर भी डॉ. रामकुमार वर्मा ने जिस रीति से उसको प्रस्तुत किया है, वह प्रशंसनीय है। राष्ट्रीयता की दृष्टि से यह एकांकी लेखक की सबसे गंभीर और सुष्ठु रचना है साथ ही काव्यानन्द की प्रतीति भी होती है।[38]

डॉ. वर्मा ने **'कादम्ब या विष'** एकांकी में जो प्रसंग लिया है वह मगध सम्राट कुमारगुप्त के काल में ई स. 455 का है। प्रस्तुत एकांकी मे कुमारगुप्त विलासिता में मग्न रहनेवाले राजा थे। महारानी अनन्तदेवी अपने सौन्दर्य से उनको अपने वश में कर लेती है। राज्य की महादेवी तो देवकी है और उसका सुयोग्य पुत्र स्कंदगुप्त राजा का विश्वासपात्र भी है परन्तु अनन्तदेवी अपने पुत्र पुरगुप्त को राजा बनाकर मगध के राज्य पर अपना एकाधिपत्य प्रस्थापित करना चाहती है। इसके लिए वह षडयंत्र भी रचती है। पहले एक हूण सैनिक के माध्यम से स्कन्दगुप्त पर पितृहत्या का अभियोग लगाने का प्रयत्न करती है। जब उसमें असफल होती है तो अपने सौन्दर्य जाल में कुमारगुप्त को फांसकर उसे कादम्ब के साथ विष पिलाती है और मृत्युपूर्व

नशे की स्थिति में एक आज्ञा-पत्र पर कुमारगुप्त के हस्ताक्षर ले लेती है। इस आज्ञापत्र के अनुसार स्कन्दगुप्त को युवराज पद से हटाकर पुरगुप्त को युवराज पद की आज्ञा दी जाती है।

ई.स. 1464 की घटना पर **'दुर्गावती'** एकांकी आधारित है। मध्ययुगीन आक्रमणों में गढा मंडले की रानी दुर्गावती पर किया गया आक्रमण विशेष उल्लेखनीय है।[39] रानी दुर्गावती को अकेली और अबला समझकर कडा मानिकपुर का पंचहजारी नवाब आसफखाँ उसके राज्य को हजम करना चाहता है। रानी दुर्गावती के सबसे प्रिय हाथी महेन्द्रगज का बहाना बनाकर वह गढा मंडले पर आक्रमण करना चाहता है। वह रानी के दीवान आधारसिंह को संदेशा भेजता है कि तीन दिन के अन्दर यदि महेन्द्रगज नवाब आसफखाँ की सेवा में नहीं भेजा गया तो उसकी सेना गढा मंडले पर आक्रमण करेगी। यह भी सूचित करता है कि रानी दुर्गावती अपने नूर से उसके हरम की शोभा बढाए तो वह और भी खुश होगा। रानी दुर्गावती वीर क्षत्राणी के रुप में युद्ध की चुनौति स्वीकार करती है और खुद महेन्द्रगज पर सवार होकर युद्ध भूमि में जाने की तैयारी करती है। रानी दुर्गावती अपनी जन्मभूमि के प्राणपण से लडने की तैयारी करके एक आदर्श उपस्थित करती है। शक्ति और सौन्दर्य की सम्मिलित सृष्टि का नाम दुर्गावती है। अपनी भावनाओं को नींव का पत्थर बनाकर दुर्गावती ने कर्तव्य के प्रासाद का निर्माण किया जिसका कलश मध्ययुग के आकाश में सूर्य की भाँति देदीप्यमान रहा।

महत्वाकांक्षी सिकन्दर ने जब अपनी विश्वविजयिनी अभियान यात्राओं में भारत पर आक्रमण किया। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस महत्वपूर्ण प्रसंग को लेकर **'मर्यादा की वेदी पर'** एकांकी में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। जब सिकन्दर भारत पर आक्रमण करता है तब गांधार नरेश आँभि कायरता से तथा पंचनद नरेश से व्यक्तिगत बैर का बदला लेने के लिए सिकन्दर से मित्रता करता है। उद्‌भाव पर सेतु बॉधकर सिकन्दर के लिए भारत का द्वार खोल देता है। अपने अतिथि के सत्कार के लिए सोना-चॉदी, हीरे, मोती, पन्ने, नीलम से भरी थैलियाँ भेंट में देता है। आँभि की इस वृत्ति पर व्यंग करते हुए एनिसाक्रिटिज कहता है-

"एनिसाक्रिटिज - अगर ऑभि जैसे तीन-चार लोग हमे मिल गए तो हिन्दुस्तान हमारा है। .... ऐसे लोग शत्रु का सत्कार करने मे बहुत कुशल है।"[40]

ऑभि क्षत्रिय कुल के लिए कलंक एवं जन्मभूमि से विश्वासघात करने वाला कायर है, जो लोभ में आकर तलवार चलाए बिना ही अपनी सारी सेना सिकन्दर को सौंप देता है। इसके विपरित पंचनद नरेश

पौरव सच्चे क्षत्रिय की तरह बडी वीरता से लडता है। उसकी हार में भी उसका माथा ऊँचा रहता है। ऐसे वीर की कद्र कर सिकन्दर पचनद नरेश पौरव को उसका राज्य लौटाकर उसका सम्मान करता है। सिकन्दर की विजय उसके पराक्रम के कारण नहीं बल्कि भारतीयों के आपसी फूट के कारण है। सिकन्दर का वकत्व है - "....... इस देश के वीरों ने शक्ति की पूजा तो की पर वे अपने देश की पूजा नहीं कर सके। ..... ये एक दूसरे के हृदय से नहीं जुड सके।"[41] सिकन्दर के वकत्व में भारत की दीर्घकालीन पराधीनता का रहस्य छिपा हुआ है। पौरव को मित्र बनाकर उसका राज्य लौटा देने में भी सिकन्दर की कूटनीति ही दृष्टिगोचर होती है। मस्सगादुर्ग की भैरवी को पौरव की हार स्वीकार नहीं है। अपनी हार को जय समझ बैठने की पौरव की वृत्ति को धिक्कारती है। भैरवी भारतीय नारी होने के फलस्वरुप अपने देश की रक्षा के लिए अपना बलिदान कर देती है। वह कहती है-

"भैरवी - मैं इतने सैनिकों से जीत नहीं सकूँगी, पर बंदिनी भी नहीं बनूँगी। देश को बंदी होता मैं नहीं देख सकती। .... आज अपना रक्त ही देश की मर्यादा की वेदी पर चढाऊँगी।"[42]

डॉ. वर्माजी ने '**रात का रहस्य**' एकांकी में उत्तराधिकार के लिए किया गया संघर्ष प्रस्तुत किया है। छलना मगध सम्राट बिंबसार की छोटी रानी है। वह बुद्धदेव के विद्रोही चचेरे भाई देवदत्त के परामर्श से अपने पति के जीवनकाल में ही अपने पुत्र अजातशत्रु को सिंहासन पर अधिकार कर लेने की सलाह देती है। देवदत्त और छलना की नीति के कारण अजातशत्रु उद्दण्ड बनता है। गृह-कलह और आंतरिक संघर्ष मिटाने के लिए बिंबसार सिंहासन त्याग कर वासवी के साथ एक कुटी में रहते हैं। परन्तु राजशक्ति के प्रलोभन से अजातशत्रु पिता को कुटी पर नियंत्रण लगा देता है तथा उनका भोजन भी बंद कर देता है। अंत में अजातशत्रु षडयंत्र से पिता पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर उन्हें मृत्युदंड देने की योजना बनाता है। तब बिंबसार कहते हैं - "अहंकार के अभिशाप का नाम तो सम्राट है। .. . यह महत्वाकांक्षा ही अमरबेल है, जो बडे-बडे राज्य पर चढ जाती है और राज्य को दबा देती है।"[43]

डॉ. वर्माजी ने 'रात का रहस्य' एकांकी मे उत्तराधिकार के लिए संघर्ष राज्य लिप्सा को प्रस्तुत किया है। एकांकी से ज्ञात होता है कि राज्य लिप्सा मनुष्य को मनुष्यता की सभी मर्यादाओं को तोड देने के लिए बाध्य करती है। साथ ही इस एकांकी में एक उच्च आदर्श भी प्रस्तुत किया गया है। जब बिबसार और वासवी को मृत्युदंड की सजा सुनाई जाती है तब प्रथम कौन मरे इस बात की होड लग जाती है। प्रमुख अभियुक्त होने के कारण बिंबसार पहले मरना चाहता है तो वासवी एक आदर्श हिन्दू नारी की तरह पति के पहले मृत्यु का वरण करना चाहती है। परन्तु अंत में दोनी ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अजातशत्रु को अपनी

गलती का एहसास होता है। वह पश्चाताप की अग्नि में जलता हुआ कहता है- "........ क्या इस रात का यही रहस्य है, जिसने अपने अंधकार में मेरे जीवन के वास्तविक सत्य को ढँक लिया था? .... धिक्कार है मुझे। अभागे कुणीक अब तुझे तिल-तिल कर जल... जल.."[44]

राजनीति का सम्बन्ध जब व्यक्तिगत स्वार्थ से आता है तब युद्ध के बदले वहाँ छल, कपट, षडयंत्र, खून आदि मार्गो का अवलंबन किया जाता है। ये संघर्ष अधिकतर उत्तराधिकारी के लिए होते हैं। राजनीति के इस पहलू पर वर्माजी ने प्रस्तुत एकांकी की रचना की है। पुत्र के बडे होने पर भी जब पिता राज्य-वैभव के लोभ से खुद ही सिंहासन से चिपका बैठा रहता है तब पुत्र का विद्रोह करना साधारणतया अटल हो जाता है। यहाँ बिंबसार खुद सिंहासन त्याग करते हैं, ताकि बेटे को उसका अधिकार मिल जाए। परन्तु अजातशत्रु को इसकी क्या परवाह है? उस प्रतिहिंसा को क्या कहा जाए, जिसमें पुत्र अपने पिता के वात्सल्य को भूलकर उसे बंदी बना दे, उसको भूखों मरने दे और और उस पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर उसे मृत्युदंड देने की योजना भी करे। राज्य लिप्सा मनुष्य को मनुष्यता की सभी मर्यादाओं को तोड देने के लिए बाध्य करती है।

'वासवदत्ता' शीर्षक एकांकी में डॉ. वर्मा ने कुशल प्रेमी को परिभाषित किया है और मनुष्य के शरीरावयव से सौंदर्य का मोल क्या है इसका अंकन किया है। प्रस्तुत एकांकी की वासवदत्ता एक ऐसी जनपद कल्याणी है जो अपने अतीन्द्रिय सौंदर्य एवं अपनी कला निपुणता के बल पर संसार विजयिनी बन चुकी है। सभी सामंत कुमार उसके सौंदर्य पर मर मिटने को तत्पर रहते थे। केवल एक उपगुप्त है, जिस पर वासवदत्ता के मादक सौंदर्य का प्रभाव तनिक भी नहीं पड़ता है। यह इसलिए कि वह शरीर-सौन्दर्य की व्यर्थता को समझता है और जानता है कि शरीर परपडने वाली किरणों की कांति के धूमिल पडते ही शरीर पर श्याम रेखाएँ उभर उठती हैं और तब अनुभव होता है कि कान्ति दर असल शरीर में नहीं है, कांति है अवस्था में और अवस्था परिवर्तनशील है। ऐसी स्थिति में शरीर का महत्व कुछ भी नहीं है।[45] अस्तु, वासवदत्ता की जो सबसे बडी पूँजी है, उसका ही कोई अर्थ नहीं है। नर्तकी वासवदत्ता ने पहली बार नारी होने के भाव का अनुभव इसी उपगुप्त को देखकर किया और वह अपने तरल सतीत्व को लेकर उसके चरण धोने के लिए उपगुप्त के पास उमड कर आयी। किन्तु उपगुप्त के हाथों यौवन और सौन्दर्य की अवहेलना हुई, अपमान हुआ। अपमान के क्षणों में वासवदत्ता ने निश्चय किया कि वह उपगुप्त की संपूर्ण पुरुषजाति से पूरा बदला लेगी, उसे अपने चरणो के नीचे पीसकर रख देगी। उसने निश्चय किया कि वह अपनी नारी की समाधि पर विश्वविजनियी नर्तकी बनकर नृत्य करेगी।[46]

तीस वर्षो के बाद एक दिन ऐसा भी आया कि वासवदत्ता रुप के बाजार में लूट गयी। उसके शरीर की वह कांति, जो उसके प्रेमियों, उपासकों के तन और मन की ऑखो के आगे चकाचौध पैदा किया करती थी, नष्ट हो गयी ! सोने की तरह दमकता हुआ वासवदत्ता का शरीर जली हुई लकडी की उपमा को प्राप्त हुआ। उसके प्रेमियों ने ही उसे उठाकर नजर के प्राचीर के बाहर लाकर डाल दिया ताकि उसका विष किसी दूसरे को न लगे। ऐसे बुरे समय केवल सच्चा प्रेमी ही उसकी मदद कर सकता है और वह सच्चा प्रेमी था उपगुप्त। वादे के मुताबिक उपगुप्त वासवदत्ता की मदद को आ जाता है क्योंकि उसने उससे कहा था कि 'जिस दिन समय आएगा मै स्वयं तुम्हारे समीप आ जाऊँगा।'

वर्माजी ने प्रस्तुत एकांकी में कुशल प्रेमी की संज्ञा दी है। एकांकी के माध्यम से वे इस चिर-सत्यता को उद्घाटित करना चाहते हैं कि शरीर नाशवान है। इसलिए तन के सौन्दर्य की अपेक्षा मन का सौन्दर्य श्रेष्ठ है इसे प्रतिपादित किया है। सच्चा प्रेमी वही है जो किसी को हृदय से प्रेम करे। अन्यथा वह प्रेम नहीं मोह है। इसके मायाजाल से सर्वथा मुक्त ही रहना चाहिए।

रामकुमार वर्मा ने विक्रमादित्य के शासनकाल की एक घटना '**दीपदान**' एकांकी में प्रस्तुत की है। यह घटना ई.स. 1536 की है। महाराणा संग्रामसिंह की मृत्यु के बाद विक्रमादित्य राजा बना परंतु वह अत्यंत विलासी था। राजकाज की और बिल्कुल ध्यान नही देता था। प्रजाजनों में उसके प्रति न आदर था, न सहानुभूति। इसका फायदा उठाकर बनवीरसिंह नामक एक दासीपुत्र खुद राजा बनने की लालसा से विक्रमादित्य की हत्या करता है किन्तु जब तक महाराणा साँगा का छोटा पुत्र उदयसिंह जीवित है तब तक बनवीर का राज्य निष्कंटक नही हो सकता। अतः विक्रमादित्य की हत्या के बाद हाथ में तलवार लेकर वह उदयसिंह के कमरे की ओर बढता है। पन्ना-धाय उदयसिंह की परवरिश करती है। बनवीरसिंह की आने की खबर सुनकर वह उदयसिंह को सुरक्षित जगह पहुँचाकर अपने पुत्र चंदन को उसकी जगह सुला देती है। बनवीर सिंह उसी को उदयसिंह समझकर तलवार के एक ही वार से उसका काम तमाम करता है।

प्रस्तुत एकांकी में बनवीर के चरित्र को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकार लिप्सा से मनुष्य पशु की भॉति हिंसक बन जाता है। जबकि उसके विपरीत अपने बेटे चन्दन की जान कुर्बान कर पन्ना-धाय स्वामीभक्ति का आदर्श प्रस्तुत करती है। आदर्श भारतीय नारी होने के कारण पन्ना देशप्रेम तथा स्वामीभक्ति के लिए अपने पुत्र का बलिदान करती है।

सम्राट उदयन अपनी न्यायनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी न्याय निष्ठा का एक उदाहरण रामकुमार वर्मा ने '**सम्राट उदयन पर अभियोग**' एकांकी में प्रस्तुत किया है। एक बार सम्राट उदयन आखेट के लिए जाते हैं। वन प्रांत में पक्षियों के कलरव के साथ ही एक तीव्र स्वर को सुनकर वे उसको लक्ष्य बनाकर शब्दवेधी बाण चलाते हैं। बाद में उनको ज्ञात होता है कि मंजुघोषा नामक एक किरात कन्या की प्रिय सारिका उनके बाण से विद्ध गयी है। मंजुघोषा नहीं जानती कि आखेटक खुद सम्राट है। अतः वह आखेटक के विरुद्ध अभियोग लेकर राजमहल में पहुँचती है। सम्राट खुद ही न्याय दाता और खुद ही अभियुक्त, बडी विचित्र परिस्थिति हो जाती है। मंजुघोषा जब यह जानती है कि अभियुक्त खुद सम्राट है तब वह अपने अभियोग को लौटा लेने को तैयार होती है, परन्तु सम्राट अभियुक्त को दण्ड देना आवश्यक समझते हैं और न्याय निर्णय सुनाते हैं-

"सम्राट उदयन - जिस प्रकार मेरे बाण से तुम्हारी सारिका के कण्ठ पर प्रहार किया उसी प्रकार मेरे कण्ठ पर इस कृपाण का प्रहार करो।"[47]

प्रस्तुत एकांकी में सम्राट उदयन के चरित्र की ऊँचाई, प्रजा की सेवा को अपनी सर्वोपरि समझना, सदा उसके सुख और संतोष का विचार करना तथा न्याय-प्रियता को प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त किया गया है। सम्राट उदयन की न्याय-प्रियता को भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है।

'**प्रतिशोध**' संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि भारवि के जीवन के नाटकीय प्रसंग पर आधारित है। प्रारंभ में माता सुशीला और पिता श्रीधर का वार्तालाप है, जिससे यह ज्ञात होता है कि पुत्र भारवि घर नहीं लौटा है। तत् पश्चात् यह रहस्योद्घाटन होता है कि पंडितों की सभा में पिता ने पुत्र को ताडना दी थी क्योंकि वह पुत्र के दंभ, अहम् तथा दर्प को नष्ट करना चाहता था। जब दूसरी ओर लांछित पुत्र ने यह सोच लिया कि जब तक पिता जीवित है तब तक वह लांछित होता रहेगा। उसने सोच लिया कि वह पिता के जीवन को ही समाप्त कर देगा। अंत में जब वह अपनी आकांक्षा को पूर्ण करने घर में आता है तब माता-पिता का वार्तालाप सुनकर उसे ज्ञात होता है कि पिता सदा उसकी उन्नति के आकांक्षी है। अंत में पितृहत्या का प्रतिशोध लेने के लिए उत्सुक पुत्र प्रायश्चित के रुप में अपना मस्तक कटवाने की भिक्षा पिता से मॉगता है। संवाद काव्यात्मक है।

'**तैमूर की हार**' एकांकी के लिये ई.सं. 1398 की ऐतिहासिक घटना का आधार लिया है। तैमूर ने भारत पर अनेक आक्रमण किये। उसके आक्रमण भारत की धन-दौलत को लूटने के इरादे से ही हुए हैं। हर

आक्रमण के अवसर पर यहाँ से बहुत धन-दौलत लूटकर ले जाता। गजनी के महमूद से ही यह लूट-पाट का सिलसिला आरंभ हुआ। प्रस्तुत एकांकी के आधार से पता चलता है कि तैमूर के आक्रमणों के अवसर पर संपूर्ण उत्तर भारत पर उनके अत्याचारों का आतंक छाया हुआ था। माताएँ आतंकवश अपने बच्चों को घर से दूर अकेले जाने भी न देती थी। वे अकसर इस तरह का गीत गुनगुनाती रहतीं -

"अब मत जाना तुम दूर.... दूर ।
उठ रही है पश्चिम में धूर,
आ गया तुरक... आ गया तुरक,
नशे में चूर . नशे में चूर..."[48]

बलकरन की माँ कल्याणी ने यह गाना अपने बचपन में अपनी माँ से सुना था। अब कल्याणी वही गाना अपने बच्चे बलकरन को सुना रही है। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि उन दिनों उत्तर भारत के सामाजिक जीवन पर किस तरह का आतंकमय वातावरण फैला हुआ था। बलकरन का एक चाकू लेकर तैमूर से लडने के लिए तैयार होना यह दर्शाता है कि राजपूतों के बच्चे भी वीर और निडर थे। यथा -
"बलकरन - तुम्हारी तलवार अब मेरे हाथ में है। अब तुम मुझसे लड सकते हो। सामने आओ। ... लड़ने वाले तलवार नहीं छिनते, वार करते हैं।"[49]

'ध्रुवतारिका' नामक एकांकी में महाराज जसवंतसिंह के उत्तराधिकारी राजकुमार तथा शाहजादा अकबर की पुत्री सफीयत-उन्निासा का प्रेम प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने सफीयत में हिन्दु-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का समन्वय करके नैतिकता की प्रस्थापना की है। वह हिन्दू वातावरण में रहने के कारण हिन्दू सांस्कृतिक आधारों में विशेष निष्ठा रखने लगी है। यह एकांकी उस दिन को लेकर लिखा गया है जिस दिन राजकुमार अजीतसिंह सफीयत से मिलने आया है। मिलकर जब दोनो एक-दूसरे का वरण करने की योजना बना रहे होते हैं कि सेनापति दुर्गादास उनके प्रणय-बंधन को विघटित कर देता है। यौवन की हाला में हलाहल दो हृदयों में जो विभिन्न नव-नूतन भाव-विभाव दृष्टिगत है उनका वर्माजी ने मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से बडा ही मार्मिक चित्रण किया है।[49] ऐतिहासिक तथ्यों को व्यावहारिकता, स्वाभाविकता एवम् सजीवता प्रदान करने के लिए डॉ. वर्मा ने कल्पना का भी सहारा लिया है , जिसके कारण ऐतिहासिक घटनाओं में नया स्पन्दन भरके एक ऐसे जीवन का संचार किया, जो नैतिकता, आदर्शता एवं सांस्कृतिक महत्ता से परिपूर्ण है। प्रस्तुत एकांकी में औरंगजेब के पुत्र अकबर की पुत्री सफीयर-उन्नीसा के त्याग एवं बलिदान का चित्रण करके उसे राजस्थान के क्षितिज पर ध्रुवतारिका के समान देदीप्यमान रहनेवाली अंकित किया है। 'ध्रुवतारिका' एकांकी में त्याग, राष्ट्र-धर्म तथा भाई-बहन के प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया

गया है।

'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया' शीर्षक एकांकी में कबीर के जन्म से मृत्युपर्यन्त की कथा है। बीच-बीच में वर्माजी ने अन्य पात्रों के माध्यम से कथासूत्र को जोडा है। इसमें पात्रों की संख्या अधिक है। इसके पात्र हैं - कबीर, रामानन्द, नीरु, नारायणदास, मसुरिया दीन, बैजनाथ, काजी, बकरीदी, रामानन्द के दो सेवक हिन्दू और मुसलमान, नीमा तथा गौरी। एकांकी की भाषा खडी बोली है। कबीर की कविताओं की भाषा खिचड़ी है... यथा-

"झीनी-झीनी.. .... दास कबीर जतन से ओढी ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया ।।"

महामहिम कबीर को एकांकी का विषय बनाया है और जीवन के उद्देश्य के मसले पर विचार करते हुए वर्माजी ने जीवन को सार्थक बनाने के लिए प्रयत्नरत होने का प्रत्येक मनुष्य को सुझाव दिया है। कबीर की भॉति हमें अपने जीवन का कुछ सार निर्धारित करना चाहिए तथा उनके बताये गए मूलभूत तत्वों पर विचार करते हुए उन्हें अपने जीवन में अपनाने का यत्न करना चाहिए।"[50] 'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया' शीर्षक एकांकी में वर्मा जी ने जीवन के आदर्श को स्थापित किया है। उसका मानना है कि जीवन का कोई उद्देश्य, सार्थक ध्येय होना चाहिए। उसी आदर्श को लेकर जीवन मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। यहाँ उन्होंने कबीर की भाँति दार्शनिक आदर्श को स्थापित किया है। वे कहते हैं कि शरीर नाशवान है। इस शरीर को एक समय के बाद खोल के रुप में उतार फेंकना पडता है। अतः जीवन के रहते मनुष्य को अपना जन्म सफल कर लेना चाहिए।

प्रस्तुत एकांकी में डॉ. वर्माजी मनुष्य जीवन के आदर्श का निर्धारण करते हुए कहते हैं कि जीवन की सफलता इस बात में है कि व्यक्ति समस्त संघर्षो में अपनी विशेषता अक्षुण्ण रखे और जीवन के अंत में अपना पवित्र सत्य निर्विकार रुप मे मृत्युदेव को अर्पित कर दे।[51] यह नितान्त सत्य है कि मनुष्य को शरीर त्यागना ही पडता है। इस अंतिम सत्य को आपने संत कबीर के व्यक्तित्व के मूर्त देखा और इस विषय को हमारे समक्ष एक चिंतक एव दार्शनिक की भॉति प्रस्तुत किया है।

'सोन का वरदान' एकांकी में मगध के सम्राट बिंदुसार की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर पाटलीपुत्र मे समस्यापूर्ण वातावरण का निर्माण होता है। मगध की जनता तथा अमात्यमण्डल द्वारा अशोक को सम्राट के रुप में निर्वाचित किया गया है, परन्तु ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते सुसीम ही सिंहासन का अधिकारी है, इस बात के आधार पर सुसीम अपने सभी छोटे भाईयों को अशोक के विरुद्ध खडा कर देता

है। अशोक का वध करने के लिए अपनी-अपनी तलवारें लेकर सब भाई सोननदी के किनारे रात के समय उपस्थित हो जाते हैं। अशोक अपनी बुद्धि के बल पर भेद-नीति से काम लेकर अपने सभी भाईयों के विद्रोह को स्नेह में परिवर्तित कर देता है।

वास्तव में बुद्धि, बल, नीति-निपुणता आदि सभी दृष्टियों से एकमात्र अशोक ही अधिकारी पात्र था। ऐसा होने पर भी राज्य-लिप्सा भाई-भाई में भी कैसे शत्रुत्व का निर्माण करती है इसका परिचय यहाँ मिल जाता है। प्रस्तुत एकांकी में वर्माजी इस तथ्य को रखना चाहते हैं कि 'सिंहासन उच्च नही है, सिंहासन पर बैठने की योग्यता उच्च है।" आज के मत्रियों के लिए भी उक्त अवतारणा मार्गदर्शक हो सकती है।

डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित **'दीने इलाही'** एकांकी में इस बात का प्रमाण मिलता है कि धर्म के नाम से राजनैतिक स्तर पर जैसे संघर्ष हुए हैं, वैसे एकता प्रस्थापित करने के प्रयत्न भी हुए हैं। 'दीने इलाही' रचोवित रुपक[52] है, जिन में सम्राट अकबर धर्म के संबंध में अपने छः पृष्ठो के लम्बे विचारों को प्रस्तुत करता है। बादशाह अकबर ने फतेहपूर सीकरी में ऐसा इबादतखाना बनवाया था जिसमें हिन्दू, मुसलमान, जैन, पारसी, यहूदी आदि सभी धर्मो को मानने वाले आ सके और भगवान से अपनी-अपनी प्रार्थनायें कर सकें।

प्रस्तुत एकांकी रचोवित रुपक होने के फलस्वरुप अकबर अपने विचारों को ही प्रस्तुत करता है। इसमें अकबर के अतिरिक्त न कोई पात्र है और न ही अकबर के संवाद के अतिरिक्त और किसी अन्य के संवाद। 'दीने ईलाही' मे धर्म के सम्बध में अकबर के द्वारा प्रस्तुत विचार बहुत ऊँचे हैं। सब धर्मो को एकत्रित करने में अकबर का इरादा यही था कि बिखरे हुए मनकों को जोडकर एक सुंदर माला तैयार की जाये। प्रस्तुत एकांकी में अकबर ने दस बातों को सर्वश्रेष्ठ माना है तथा अपने विचारों के द्वारा उन्हें व्यक्त किया है। इस प्रकार धार्मिक एकता प्रस्थापित करने के लिए अकबर के द्वारा की गयी दीने-इलाही की घोषणा इतिहास मान्य है। सम्राट अकबर ने इस्लाम के सुंदर तथा सर्वमान्य तत्वों का चयन कर उसे दीने-इलाही अर्थात् सद्धर्म के रुप में प्रस्तुत कर धार्मिक तथा दार्शनिक सामंजस्य प्रस्थापित करने की चेष्टा की है। इसी को सांस्कृतिक समन्वय की ओर परायण तथा प्रयत्न कहा जा सकता है।

डॉ. रामकुमार वर्मा की अन्य एकांकियो मे है - 'स्वागत है ऋतुराज', 'कविता का युग पथ', 'सूर-संगीत','मन मस्त हुआ तब क्या बोले', 'प्रसाद की कला' आदि भावात्मक एकांकियाँ है। आपकी हास्य-व्यंग्य प्रधान एकांकियों में है- 'चक्कर का चक्कर', 'मै और तूँ', 'महाभारत में रामायण', 'मेढक का

बीज' और 'हीरे के झुमके' आदि।

'चक्कर का चक्कर' वर्माजी के हास्य व्यंग्य एकांकियों में एक है। स्थान है प्रयाग का बैरहन मुहल्ला। इसमें सिर्फ पुरुष पात्र ही है। इसमें मृत के अंध विश्वास को नाटक का आधार बनाया गया है। भैरो (भैरवलाल) इसमें नौकर का काम करता है। श्याम मोहन से राम बहादुर ब्रजकिशोर अपनी लडकी की शादी करना चाहते हैं। इसी उद्देश्य से वे अपने नौकर भैरो के साथ श्याम मोहन के घर जाते हैं। श्याम को चक्कर आता है। उस पर उसकी माता भूत बनकर आती है। भैरो उसे झाड फूँक के द्वारा उस भूत को अपने गंगाजली में बंद कर देता है। यही है 'चक्कर का चक्कर'। प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से वर्माजी ने भूत-प्रेत जैसी अनर्गल बातों में विश्वास रखनेवालों पर व्यंग्य किया है। इसमें 'मैंने कहा' तकिया कलाम से हास्य की उत्पत्ति हुई है। अन्तर्द्वन्द्व और कौतूहल की सृष्टि करते हुए अंधविश्वास जैसे बडे मुद्दे को हास्यरस के द्वारा उद्घाटित किया है।

श्री रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों का हिन्दी एकांकी के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। आपके एकांकी नाटकों का कथानक संश्लिष्ट है। आपके एकांकी नाटकों में एक विशेष प्रकार का अभिनयात्मक सौन्दर्य प्राप्त होता है। खोखलेपन को उद्घाटित करके यथार्थ चित्रांकन प्रस्तुत करने में आप समर्थ हैं। वे एकांकी को सामाजिक वस्तु स्वीकार करते हैं। लेखक ने कल्पना के स्वप्नलोक में विचरण करते हुए भी अपने पात्रों को अत्यंत स्वाभाविक एवं यथार्थ रुप में चित्रित किया है। इसी कारण ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त उनके जितने भी काल्पनिक पात्र हैं, वे इसी जगत् के गतिशील प्राणी होते हैं। और उनमें भी स्वाभाविकता और यथार्थता विद्यमान है। अतः डॉ. वर्मा के पात्रों का विकास घटनाओं एवं परिस्थितियों के अनुकूल ही हुआ है। उनके पात्र मानव-जीवन की यथार्थता का उद्घाटन करते हैं। वे मानव-हृदय के शाश्वत सत्य को अभिव्यक्त करके उसे आन्दोलित करने में सक्षम एवं सशक्त दिखाई देते हैं।

आपके एकांकी साहित्य में उच्च और शिक्षित व्यक्तियों के जीवन की दुर्बलताओं का सुंदर चित्रण मिलता है। पश्चिमी जीवन के प्रति असंतोष, ईर्ष्या, संदेह और प्रेम का उल्लेख इन्होंने एकांकियों में किया है। उनके पात्रों के हृदय में कोई न कोई विशेष ग्रंथि अवश्य होती है जिसका उद्घाटन बडी सुंदरता से एकांकी का विषय बन जाता है। एकांकी की घटनायें उतार-चढाव से सूक्ष्म और महत्वपूर्ण को विशेषता देती हुई आगे बढती है। वार्तालाप का एक-एक शब्द घटनाओं के एक गुप्त वातावरण को मूर्त रुप प्रदान कर

देती है। उनके पात्रों के चरित्र स्पष्ट एवं पुष्ट है और वे पाठक एवं दर्शक के हृदय की सहानुभूति प्राप्त कर लेते हैं। वस्तुतः वर्माजी ने मानवीयकरण के माध्यम से विषय को सामाजिक एवं चरित्र-चित्रण को मनोवैज्ञानिक प्रस्तुत किया है। मानवीयकरण के द्वारा घटना का चुनाव दैनिक जीवन का हो गया है जिससे उसमें यथार्थता एवं मनोरंजन का समन्वय हो गया है। डॉ. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकांकियों में हमें उनके नैतिक आदर्शवाद के दर्शन होते हैं। प्रायः सभी एकांकियों में मध्ययुगीन भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि तथा मुगल साम्राज्य की झॉकी दिखाई देती है। वर्मा जी की मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता तथा प्राचीन गौरव का प्रतिपादन है। प्राचीन हिन्दू राजाओ तथा अन्य व्यक्तियों के शौर्य, देशभक्ति, चरित्र की महानता, स्वतंत्रता-प्रेम एवं गौरव-गान की उदात्त भावनाएँ इनमें मुखरित हुई हैं। संवादों में आपकी मनोवैज्ञानिक कुशलता इतनी स्वाभाविक रुप से प्रस्तुत हुई है कि प्रत्येक पात्र सजीव और अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं को लेकर प्रकट हुआ है। वे अपना मंतव्य प्रकट करने और जैसा चित्र उनकी कल्पना में है, वैसा ही चित्रित करने के लिए सजग हैं। इतिहास के प्रति व्यापक दृष्टिकोण रखने के कारण वर्माजी ने पात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में बड़ी ही सूक्ष्मदृष्टि से काम लिया है। आप लिखते हैं कि, "मैं मनोविज्ञान और ऐतिहासिक तथ्य का समन्वय कर नाटक की रचना करता हूँ।"[53] आपने प्राचीन ऐतिहासिक घटनायें लेकर ऐतिहासिक पात्रों में नवीन जीवन तथा आवेशमय स्फूर्ति का संचार किया है। वे तत्कालीन सांस्कृतिक तथा राजनैतिक पृष्ठभूमि में पात्रों को प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि से वे वॉल्टर स्कॉट के समान दिखाई पडते हैं। उनके तथ्य इतिहास पुष्ट होते हैं। उनकी कला की सबसे बडी विशेषता है कि वे घटनाओं के रिक्त अंशों को सांस्कृतिक अध्ययन के सहारे पूर्ण कर उसकी श्रृंखला की कडियाँ जोड देते हैं। आपने ऐतिहासिक पात्र को निज तर्क तथा मंतव्य प्रकट करने का अवसर प्रदान किया है अपितु तत्कालीन स्थिति में पात्रों के हृदयगत भावों के अनुसार कथोपकथन का स्वरुप स्थिर किया है। आप भारतीय इतिहास से किसी हृदयस्पर्शी घटना को चुनते हैं। यह घटना प्रायः ऐसी होती है जो हमारे जीवन को गति और प्रेरणा प्रदान कर सके। जीवन से दूर न रहे, प्रत्युत ऐतिहासिक होते हुए भी मानव समाज की स्वाभाविकता में प्रविष्ट होकर गति, प्रेरणा और शक्ति प्रदान कर सके।

श्री रामकुमार वर्मा की एकांकियों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए डॉ. महेन्द्र ने लिखा है, "डॉ. वर्मा के नाटकों में भारतीय समाज के अनेक व्यंग्यात्मक चित्र मिलते हैं। ऊपर से सभ्यता का मुलम्मा चढ़ाये जो व्यक्ति धोखा दे रहे हैं, उन्हें उधेडकर सबके सामने रख दिया गया है। इस यथार्थ के साथ आदर्श का जो समन्वय वर्माजी के सामाजिक नाटकों में मिलता है, वह व्यावहारिक है। आप झूठी भावुकता में नही बह गये हैं, बल्कि एक गूढ विचारक के रूप में अपने वर्तमान सामाजिक विधान की जर्जरता पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली है। ये हमें अपने समाज के कुछ अंगों पर सोचने को विवश करते है, साथ ही आदर्श भी उपस्थित करते हैं।"

सेठ गोविन्ददास :

हिन्दी के आधुनिक एकांकीकारों में सेठ गोविन्ददास का भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार कथा-साहित्य में प्रेमचंद हमारे कीर्ति-स्तंभ हैं, उसी प्रकार नाट्य-साहित्य में "प्रसादजी" के पश्चात सेठ गोविन्ददास का नाम आता है। आपके एकांकियों का मूल स्वर राष्ट्रीय नैतिक चेतना से ओत-प्रोत है। इन्होंने अपने एकाकी साहित्य मे समसामयिक सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति की है। सेठजी ने अपने सामाजिक एकांकियों में पूँजीवाद के प्रति उग्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए व्यक्ति के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की उन असंगतियों, विकृतियों एवं स्वार्थी मनोवृत्तियों को अनावृत किया है जो जन-जीवन को कुण्ठित किए हुए थे। गांधीवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित आपके एकांकी साहित्य में सेवा, त्याग, अपरिग्रह, सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों का प्रतिपादन हुआ है। आपकी कृतियों की पृष्ठभूमि में आदर्शवाद मिलता है।[54] सेठजी ने अपने समस्या प्रधान सामाजिक एकांकियों मे समाज के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक पक्ष, तथा अन्य जीवन के पक्षो पर लेखनी चलाकर मध्यवर्गीय एवं उच्चवर्गीय समाज में परिव्याप्त कुरीतियों, कमजोरियों, अनियमितताओं, कुप्रथाओं, स्वार्थपरता, अधिकार लिप्साओं, छल-कपटपूर्ण व्यवहार, भ्रष्ट तरीकों आदि का तथातथ्य चित्रण किया है। डॉ. रामचरण महेन्द्र ने सेठ जी के सामाजिक यथार्थ के बारे में लिखा है कि "उन्होंने यथार्थवादी एकांकी लिखे हैं, जिनमें मानव-जीवन के संघर्षो और जन साधारण की समस्याओं को उभारा गया है। इन नाटकों की सबसे बडी विशेषता है उनकी सहज स्वाभाविकता। मानव जीवन के जिस पहलू ने लेखक को कचौटा है, हमारे समाज में उन्हें उन्होंने यथार्थवादी शैली में प्रकट कर दिया है। फलतः व्यक्ति स्वातंत्र्य, मानव-समानता, सहानुभूति, नारी स्वातंत्र्य आदि की स्थापना इनके एकाकियों में पाई जाती है। सेठजी ने भारतीय जीवन की बहुमुखी समस्याओं की आदर्शोन्मुख व्याख्या करके वर्तमान राजनीति में परिव्याप्त स्वार्थपरता एवं धन लोलुपता का व्यंग्यात्मक शैली में पर्दाफाश किया है।

इनके "सप्तरश्मि", "एकादशी", "पंचभूत", "चतुष्पद", "स्पर्द्धा" आदि एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए है। इनके सभी एकांकी नाटक अब गोविन्ददास ग्रंथावलि में संकलित हैं। विषय की दृष्टि से इनके एकांकी नाटकों मे पर्याप्त विविधता है। इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राजनैतिक आदि पृष्ठभूमि पर आधारित एकाकियों की रचना की है। सेठ जी के प्रमुख सामाजिक एकांकियों में- 'स्पर्द्धा", 'मानव-मन', 'निर्माण का आनंद', 'सुदामा के तंदुल', 'आई सी', 'यू नो', 'हँगर स्ट्राइक', 'धोखेबाज', 'फाँसी', 'व्यवहार', 'अधिकार लिप्सा', 'ईद और होली', 'आधुनिक यात्रा', 'बंद नोट', 'उठाओ और खाओ खाना (बफे डिनर)', 'बूढे की जीभ', 'चौबीस घण्टे', 'महाराज', 'विटेमीन', 'वह मरा क्यों?', 'अर्द्धजाग्रत' आदि

उल्लेखनीय हैं। 'कंगाल नहीं', 'सच्चा कांग्रेसी कौन', 'पाप का घडा', 'आदि नाटकों को लेखक ने सच्ची घटनाओं पर आधारित एकांकी कहा है।

'स्पर्द्धा' शीर्षक एकांकी नाटक में सेठजी ने पुरुष और नारी के बीच आज हर क्षेत्र में जो स्पर्द्धाएँ हो रही हैं उन्हें बताया है। प्रस्तुत एकांकी में युनियन क्लब नामक संस्था है- कौंसिल की सदस्यता के लिए क्लब के ही दो सदस्य त्रिवेणी शंकर और मिस कृष्णा कुमारी उम्मीदवार के रुप में खडे हैं लेकिन चुनाव के प्रत्याशी जिस प्रकार एक-दूसरे पर तरह-तरह से कीचड उडाते हैं। एक-दूसरे पर मिथ्या आरोप, मिथ्या आक्षेप करते हैं। त्रिवेणी शंकर पर आक्षेप करते हुए एक गुमनाम पर्चा छपता है। दुसरा पर्चा मिस कृष्णा कुमारी के विरुद्ध में छपता है। लोग यह अनुमान लगाते हैं कि दोनों सदस्य ही एक-दूसरे के खिलाफ ऐसा कर रहे हैं। क्लब का एक अन्य सदस्य अग्निहोत्री जब यह देखता है कि कृष्णा के खिलाफ उसके चरित्र को लांछित करता हुआ पर्चा छपा है तो यह सब उसे अच्छा नहीं लगता है। वह लोगों से कृष्णा के पक्ष (महिला पक्ष) में कहता है कि स्त्री जैसे ही चाहरदीवारी से बाहर कदम रखती है, पर्दे से बाहर निकलती है उसे तरह-तरह से उसके चरित्र को लांछित करना शुरु हो जाता है। यह पर्चे क्लब के सदस्यों के लिए विचार के महत्वपूर्ण विषय हो गए थे। सभी इसकी ही चर्चाएँ करते रहते हैं। मिस कृष्णा ने त्रिवेणी शंकर के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर दिया। उसने बताया कि जो उस पर आरोप हैं, वह नितांत घृणित और मिथ्या हैं। त्रिवेणी शंकर के विरुद्ध क्लब ने अविश्वास मत पारित कर दिया। इस पर त्रिवेणी शंकर ने अपनी सफाई में बताया कि मिस कृष्णा के विरुद्ध जो आरोपित हैं, वह कृत्य उसका नहीं। इसके साथ ही वह क्लब के सदस्यों के समक्ष अपने विचार और प्रश्न रखता है कि यदि महिलाएँ पुरुषों के क्षेत्र में पदार्पण करेंगी तो उन्हें इस तरह के संघर्ष करने ही पड़ेंगे। जब आधुनिकाएँ हर क्षेत्र में भागीदार बनना चाहती हैं, तो ऐसी समस्याओं का तो सामना करना ही होगा। अपितु निसर्ग ने स्त्री और पुरुष दोनों ही के लिए अलग-अलग क्षेत्र निर्धारित किया है, तो फिर ऐसे समय में वे क्यों पुरुषों से आशा रखती हैं कि वे उन्हें स्त्री समझकर इस प्रकार मिथ्या दोषित न करें। बल्कि ऐसे समय में भी वे पुरुषों के कंधों का सहारा माँगती हैं। यह उचित नहीं है। यद्यपि मिस कृष्णाकुमारी त्रिवेणी शंकर से सहमत तो नहीं हैं लेकिन इतनी बात वह भी स्वीकार करती हैं कि यदि महिलाएँ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों से स्पर्द्धा करना चाहती हैं तो उन्हें पुरुषों से परित्राण-शूरता के नाम पर किसी बात की आशा नहीं रखनी चाहिए।

'मानव-मन' शीर्षक एकांकी 'सप्तरश्मि' संग्रह में संकलित है। इसमें मनुष्य की एक स्वाभाविक वृत्ति को उद्घाटित किया गया है। बताया गया है कि भावना, आदर्श आदि सभी अपनी जगह हैं और

वास्तविकता वास्तविकता है। प्रस्तुत एकांकी में कृष्णवल्लभ एक व्यापारी है जिसका बृजमोहन नामक एक मित्र है जिसे क्षय रोग हो जाता है। कृष्णवल्लभ को अपने मित्र की पत्नी भारती के रुख को देखकर आश्चर्य होता है क्योंकि भारती को इसकी कोई चिन्ता नहीं थी। वह डॉक्टर और नर्स की जिम्मेदारी पर अपने पति को छोडकर पार्टियों आदि में जाती थी। श्रृंगार करने में ही लगी रहती थी। केवल नर्स आदि से अपने पति के स्वास्थ्य के बारे में एक-आध बार पूछ लेती है। शेष वह अपने किसी काम में कोई कमी नहीं करती है। कृष्ण वल्लभ की पत्नी पद्मा को यह सब ठीक नहीं लगता है। वह मानती है कि सारा जीवन भी यदि बीमार पति की सेवा में बीत जाए तो उसे शांति-पूर्वक बिता देना चाहिए। भारती का यह अमानुषिक कृत्य उसे नितान्त अनुचित लगता है। संयोग या दुर्भाग्य से पद्मा पर भी वैसी ही विपत्ति आ पडती है। कृष्ण वल्लभ को भी वही बीमारी क्षय रोग हो जाता है। वह अपने बीमार पति की सेवा तीमारदारी दिन-रात एक करके करती है। एक दिन श्रीनाथ के एक उत्सव में जाने के लिए कृष्ण वल्लभ अपनी पत्नी से आग्रह करता है। पद्मा उस उत्सव में चली जाती है। उसे वहाँ बहुत अच्छा लगता है। कई दिनों के बाद उसे कुछ जीवन में बदलाव-सा प्रतीत होता है। यहाँ सेठजी यह बताना चाहते हैं कि बीमार के साथ बहुत दिनों तक रहने से साथवालों को घुटन होने लगती है।

'मैत्री' शीर्षक एकांकी में दो अभिन्न मित्रों को उपस्थित करके सेठ जी आज की पदलोलुपता को प्रस्तुत करते हैं। पद और कुर्सी पाने के लिए लोग आज एडी-चोटी का जोर लगाते हैं। इसके लिए किसी भी हथकंडे को उपयोग में लाने में संकोच अनुभव नहीं करते हैं। निर्मलचन्द्र और विनयमोहन दोनों को अपनी मैत्री पर गर्व है। दोनों ने साथ ही साथ पढ़ाई की है और काम भी साथ ही साथ करते हैं। कांग्रेस-दल ने स्थानीय नगरपालिका में बहुमत प्राप्त किया है और अब उसे उसके अध्यक्ष का चुनाव करना है। यह दोनों मित्रों की अग्नि परीक्षा की घडी थी। दल यह तय नहीं कर पाता है कि किसे दल का नेता और किसे अध्यक्ष बनाया जाए। अब दोनों मित्र मित्रता को भूलकर स्वार्थवश होकर एक-दूसरे को अप्रिय प्रसंग भी कहते हैं। वे दोनों एक-दूसरे पर लांछन लगाना शुरु कर देते हैं। उनकी अयोग्यता को दिखाने लगते हैं लेकिन आगे जाकर उन्हें अपनी गलतियों का एहसास होता है कि वे पद की लालसा में इतने अच्छे मित्र होते हुए भी एक-दूसरे को अपशब्द कहने में नही चूकते, झुठ बोलने पर उतारु हो गए हैं। ऐसी कुर्सी ऐसा पद उन्हें नहीं चाहिए।

'धोखेबाज' एकांकी सेठ गोविन्ददास द्वारा रचित सामाजिक व्यसन के शिकार दानमल की कहानी पर चित्रित है। दानमल गरीबों की सेवा द्वारा एक प्रकार से देशसेवा जैसी परोपकार की भावना रखता है।

इस पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति और सक्रियता हेतु उसे प्रचुर सम्पत्ति करना अति आवश्यक प्रतीत होता है। वह व्यक्तिक सुख भोग के लिए केवल नाम कमाने के लिए धन कमाने जैसी निकृष्ट भावना नही रखता है। उसे यश की स्पृहा नहीं है। वह तो धन कमाकर देश सेवा, आपस वालों की सहायता और गरीबों की भलाई करना चाहता है।'[55] जल्द से जल्द धन कमाने का उसे केवल एक साधन सट्टा-बाजार का व्यापार दिखाई देता है। वह जानता है कि यह एक अलग जरिया है, यह एक प्रकार का जुआ है। उसे आरभ में सकोच भी होता है, किन्तु उसके मन में उठे इस तूफान को यह तर्क शात कर देता है कि आज जिन बडे-बडे धनियों की चरण-चुम्बन के लिए बडे-बड़े धर्माचार्य , समाज के बडे-बड़े नेता और देश सेवक भी व्याकुल रहते है। प्रथम महायुद्ध के समय सट्टा बाजार में जुआ खेल कर ही वे भी दानवीर जैसी संज्ञा को प्राप्त कर सके हैं। अतः ऐसा विचार करने के उपरान्त वह सट्टा बाजार में अपना भाग्य आजमाने पहुँच जाता है और केवल दो माह में ही वह काफी धन अर्जित कर लेता है। इसके उपरांत वह दोनों हाथों से सार्वजनिक संस्थाओं के लिए दान देता है। वह सिद्ध कर देता है कि उसकी कथनी और करनी में अंतर नहीं है। सरकार द्वारा 'वार-बैग' की आपूर्ति की तिथि के कुल तीन महिने बढा देने भर से बाजार में भूकम्प आ जाता है और उसके परिणामस्वरुप दानमल का दिवाला निकल जाता है। नील रतन, कैलाशचन्द्र और मुमताजुद्दीन जैसे उसके पावनेदार, उसके मुनीम रुपचंद से मिलकर उसे कचहरी घसीट ले जाते हैं और उस पर दफा 420 का मुकदमा ठोक देते हैं। कचहरी में न्यायाधीश के समक्ष पहुँचकर दानमल अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहता है "मुझे ऐसी सख्त .... ऐसी सख्त सजा दीजिए कि चाहे सारा समाज, धर्माचार्य, समाजसेवक और दरिद्र नारायण के झूठे, पर लक्ष्मीनारायण के सच्चे पूजक ये राजनीतिक नेता रुपये का पूजन करें, श्रीमानों का चरण-चुम्बन करें, पर मेरे मन में, मेरे छोटे से हृदय में इसकी प्राप्ति की अभिलाषा का अवशेष भी न रहे।"[56] समाज से दानमल को प्रतिदान में पराजय ही क्यों मिली यह प्रश्न हमारे सामने उठता है। सचमुच यह विषय परिताप का ही है क्योंकि दानमल जो सच्चा लोकसेवक है उसका दुखद अंत होता है कि वह धन-प्रतिष्ठा के साथ जान से भी हाथ धो बैठता है।

'अधिकार लिप्सा' सेठ गोविन्ददासजी द्वारा रचित एकांकी में राजा अयोध्यासिंह नामक एक जमीदार की कथा तीन दृश्यों में प्रस्तुत है। उसका पुत्र कुमार काशी सिंह उसे चिंताओं से मुक्त रखने के लिए राज-काज का भार अपने ऊपर ले लेता है। यद्यपि अयोध्यासिंह की अवस्था काफी अधिक हो गई थी किन्तु वह स्वयं को बुढा मानने को तैयार नहीं था। वह किसी के शासन मे भी नही रहना चाहता है। उसे इस बात की कोई खुशी नहीं होती, कोई सतोष नहीं होता है कि उसका पुत्र अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह भली-भॉति कर रहा है और उसे एक प्रकार से चिंतामुक्त कर रहा है बल्कि उसे तो दुःखानुभूति हो रही थी

कि उसके जो भी अधिकार थे वह उससे छिन रहे हैं। यह पीड़ा उसके लिए असहनीय थी। अतः उसे एक उपाय सुझता है कि वह बीमारी का बहाना बनाए रहे ताकि उसके पुत्र अधिकार सुख को भूलकर उसकी चिन्ता में डूबा रहे। बीमार अयोध्यासिंह का बीमारी में रहने की वजह से उसका तरह-तरह का इलाज किया जाता है। यद्यपि वह बिल्कुल स्वस्थ था किन्तु पचासों तरह के इलाज की वजह से वह अस्वस्थ हो जाता है और परिणामस्वरुप जान से हाथ धोना पड जाता है।

'ईद और होली' सेठ गोविन्ददासजी की साम्प्रदायिक समस्या पर आधारित है। प्रस्तुत एकांकी में रतना और खुदाबख्श नामक हिन्दू और मुस्लिम पडोसी की गाथा है। रतना एक ब्राह्मणी है। उसके पुत्र का नाम राम है। खुदाबख्श की एक बेटी है हमीदा। राम और हमीदा दोनों बच्चे छोटी उम्र के हैं और दोनों ही इस बात से बिलकुल अनभिज्ञ हैं कि वे दोनों के धर्म अलग-अलग हैं। उनके लिए राम और रहीम में कोई अंतर नहीं है। वे साथ ही साथ रहते और खेलते खाते हैं। ईद की सेवई और होली की मिठाई दोनों ही उनके लिए प्रिय हैं। दोनों में से कुछ भी नहीं छोड़ सकते हैं, किन्तु रतना और खुदाबख्श को उनके साथ-साथ खेलने खाने मे आपत्ति है क्योंकि रतना का मानना है कि म्लेच्छ (हमीदा) उसके बेटे (राम) को जूठा खिलाकर जाति भ्रष्ट कर रही है। इसी तरह खुदाबख्श को भी यह सब ठीक नहीं लगता है कि उसकी बेटी को म्लेच्छ कहा जाए। दोनों अपने-अपने बच्चों को लेकर आपस में ही लड़ते रहते हैं लेकिन इससे मासूम बच्चों पर कोई फर्क नहीं पडता है। वे उसी तरह से आपस में खेलते रहते हैं क्योंकि वे जाति-पाति, धर्म-अधर्म के नाम पर अनभिज्ञ थे अनजान थे। उन्हें तो केवल इतना ही ज्ञात था कि होली पर वे मिठाईयाँ खाएंगे और ईद पर उन्हें सेवईयां मिलेगी। दोनों ही चीजें उन्हें बेहद पसंद थी किन्तु उन्हें इस बात से बिलकुल सरोकार नहीं था कि कौन से त्यौहार किसके हैं। प्रस्तुत एकांकी में साम्प्रदायिक दंगे भड़क जाते हैं और सारा घरबारा रतना का उस दंगे में तबाह हो जाता है। इस तबाही के लिए खुदाबख्श जो उसका पड़ोसी था वह ही जिम्मेदार था। खुदाबख्श रतना के घर में आग लगा देता है लेकिन इससे बिलकुल अनजान और बेपरवाह खुदाबख्श की बेटी हमीदा छत पर रतना के ही बेटे के साथ खेल रही थी। जब ये बात खुदाबख्श को पता चलती है तो वह काफी पछतावा करता है।

'वह मरा क्यों' शीर्षक एकांकी में एक गोरे सिपाही की मौत की छानबीन गोरे अधिकारी किस मुस्तैदी से करते हैं इसे ही सेठ गोविन्ददासजी ने कुछ हास्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। अंग्रेज अधिकारियों को यह अनुमान था कि बाहर बाजार से कुछ खा लेने से ही उस सिपाही की मृत्यु हुई है। अनुमान के आधार पर वे पूरी छानबीन करते हैं कि मृत्यु से पूर्व उसने क्या खाया था। वे सब्जी मण्डी जाते हैं वहाँ वे एक कुम्हडे

(कद्दु) बेचने वाले को पकड लेते हैं। उन्हें कुम्हडा ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह सब्जी नहीं कच्चा कछुआ है। इसी कच्चे कछूए को खाने से उस गोरे (अंग्रेज) सिपाही की मृत्यु हुई है। ऐसा भ्रम उन्हें हो जाता है फिर वे मिठाई की दुकान पर जाते हैं। पिस्ते की बर्फी को सड़ी हुई मिठाई (फफुंदी लगी) समझते हैं और सोचते हैं कि इसे खाने से ही मरा है। इसके पश्चात् अधिकारी सिनेमा घर जाते हैं। वहॉ पहुॅचकर उन्हें लगता है कि वहॉ की गंदगी की वजह से ही हो न हो अंग्रेज सिपाही की मृत्यु हुई है।

प्रस्तुत शीर्षक एकांकी 'वह मरा क्यों?' के माध्यम से सेठ गोविन्ददासजी यह उद्घाटित करना चाहते हैं कि एक गोरे सिपाही के जान की कीमत उनकी दृष्टि में कितनी ज्यादा है जबकि कितने ही हिन्दुस्तानी सिपाही की मृत्यु हो जाने पर भी उन पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। शासक जब छोटी-छोटी बातो से अनभिज्ञ होगा तो उसे शासितों के प्रति अपनेपन की भावना कहाँ से आ पाएगी। गोरे की मृत्यु का रहस्योद्घाटन एक स्वयं उसके द्वारा लिखी किसी चिट्ठी के माध्यम से होता है कि गोरे की मृत्यु उसकी अपनी मेमसाहब की किसी बीमारी के संसर्ग से होती है।

'कंगाल नहीं' एकांकी सेठ गोविन्ददासजी की सत्य घटनाओं पर आधारित है। इसका कथानक एक ऐसे राज परिवार से संबंध रखता है जिन्होंने किसी जमाने में अपने देश के इतिहास को गढा था। इनके वंशज के सात सदस्य आज विद्यमान हैं किन्तु उनकी आजीविका बडी कठिनाई से चल रही है क्योंकि इनको सरकार पेंशन के तौर पर कुल 120 रुपए वार्षिक आय ही प्राप्त होती है। इस मॅहगाई के जमाने में इतनी कम आय में गुजारा चलाना कितना दुष्कर कार्य होगा इसका अंदाजा तो हम लगा ही सकते हैं। इनके इलाके में अकाल पडने पर सरकार ने अकाल ग्रसित लोगों के लिए ऐसे कई सुविधाएँ प्रदान की जिसके अन्तर्गत शारीरिक श्रम करके जीविका का उपार्जन किया जा सके। इस राज परिवार के सदस्यों ने भी अपना वंशाभिमान त्याग कर श्रम द्वारा कुछ आमदनी बढाने की उम्मीद से उस कार्य को करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं जिस काम को करने में उनके वंश की दृष्टि से अपमान समझा जाता है। लेकिन उनके भाग्य में वह आमदनी भी नहीं थी क्योंकि अधिकारियों का कहना था कि यह केवल कंगाल है उनके लिए यह बंदोबश्त किया गया है और राज परिवार के लोग कभी कंगाल नहीं हो सकते हैं।

'सूखे संतरे' शीर्षक एकांकी नाटक में गॉधीजी के माध्यम से अछूतोद्धार की समस्या को रखा है। एकांकी मे विठोबा नामक एक शूद्र बालक है, जो महार वंश से संबंध रखता है। उसे अध्ययन, शिक्षा ग्रहण करने की बहुत ही इच्छा है किन्तु उसके पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। उनके लिए अध्ययन के

कार्यभार को वहन करना काफी दुष्कर है। बालक ने निश्चय किया कि वह महात्मा गाँधी से मिलेगा और अपनी समस्या स्वयं उनके समक्ष रखेगा। दृढ़ निश्चयी बालक गाँधीजी से मिलता है और अपनी शिक्षा का बंदोबश्त किसी धनी-मानी व्यक्ति के द्वारा करवाने के लिए उनसे सिफारिशी पत्र लिखने के लिए कहता है। महात्मा गाँधी उस समय किसी हरिजन प्रश्न को लेकर ही अनशन करने वाले थे अतः उन्होंने बालक को यह कहा कि मैं अनशन के समाप्त होने पर तुमसे अवश्य मिलूँगा और तुम्हारी प्रार्थना पर अवश्य गौर किया जाएगा। विठोबा को इस बात को लेकर उन पर विश्वास ही नहीं होता है वह उसे संतोष दिलाने के लिए कहते हैं मैं अनशन से मर नहीं जाऊँगा, तुम्हारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान दूँगा और सिफारिशी पत्र अवश्य दुँगा। मैं अनशन तुम्हारे हाथो लाए हुए संतरे से तोड़ुँगा। इस पर बालक आश्वस्त हो जाता है। कई दिनों बाद, बालक विठोबा शहर में सुनता है कि बापू अनशन तोडने वाले हैं। इस शहर के धनी-मानी, बडे-बडे लोग बापू के पास संतरा पहुँचाने की होड में लग जाते हैं। इसके प्रतिफल संतरे का भाव बढना स्वाभाविक था। बालक को याद आता है कि बापू ने उसके हाथों लाए संतरे से ही अनशन तोड़ने को कहा है अतः अब उसे कैसे भी हो संतरा लेकर उनके पास पहुँचना होगा लेकिन यह समस्या थी कि वह संतरे का प्रबध कैसे करे। उसके भाव तो बहुत थे और फिर उसके पास पैसे भी नहीं थे। इस पर वह दुकानदारों से सारी कथा को सुनाकर उनसे माँगता है कि उसकी प्रार्थना स्वीकार करें किन्तु कोई भी उसकी सत्यता को नहीं समझता है फिर वह कुछ निश्चय करके कॉलोनी के धनी-प्रतिष्ठित और शिक्षित व्यक्तियों से इस आशय से प्रार्थना करता है कि वे उसकी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे किन्तु उनके रुखे व्यवहार से उसे और भी निराशा होती है। श्री बी.डी. देसाई नामक बडे 'एडवोकेट' साहब ने उससे उत्तर में कहा "क़ौन 'बापू', कहाँ का बापू, और वो तो इस 'हंगर स्ट्राईक' में मर जाएगा।"[57] एम.बी.बी.एस. डॉ. सी.आर. भोपटकर ने कहा- "बापू का उपवास! कैसा उपवास? कौन बापू.. ओह, हमको पेपर पढने का फुर्सत नहीं, हम नहीं जानता किसका उपवास... हमारा पास फिजूल वक्त नहीं, यू गेट आउट फ्राम दि कम्पाउन्ड।"[58] विठोबा को इस तरहके कितने ही अपशब्द और व्यंग्यपूर्ण वाक्य, कटु वाक्य सहने पड़े। प्रो. एन. के. भटनागर ने विठोबा से कहा- "भला-चँगा होकर भीख माँगता है? शर्म है शर्म। सबेरे-सबेरे भीख? उफ् फिर उससे भीख जिसको गिनती के टके मिलते हैं।"[59] विठोबा की मदद अंत तक कोई नहीं करता है। वह काफी हतोत्साहित हो जाता है।

अंत में उसकी सहायता एक सज्जन मुस्लिम दुकानदार करता है और फिर किसी तरह वह सूखे हुए सतरे लेकर बापू के पास पहुँचता है , दूसरी ओर बापू अपने किए गए वादे को भूले नहीं थे वे भी उसी की प्रतीक्षा में बैठे थे। उन्होंने बालक के द्वारा लाए गए सूखे संतरे के रस से ही अपना अनशन तोडा। इसके पश्चात् अपने वादे के मुताबिक उन्होंने उसकी शिक्षा-दीक्षा के लिए धनी-वर्ग के लोगो से बात चलायी।

उनकी आज्ञा और निर्देश का उल्लंघन संभव नहीं था। उनके आग्रह पर सभी उसका भार अपने ऊपर लेने को तैयार हो गए। लेकिन विठोबा अपने आगे के निश्चयपूर्ण वाक्य से सभी को निराश कर देता है। अब उसने पढ़ने का विचार बदल लिया है और आगे वह कहता है कि जिन लोगों से उसकी भेंट हुई उन पढे-लिखे लोगों को देखकर उसकी पढने की सारी साध ही समाप्त हो गई।

'बंद नोट' शीर्षक एकांकी देश में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर इंगित है। प्रस्तुत एकांकी में वैदेहीशरण नामक एक कॉंग्रेसी कार्यकर्ता है वह बहुत ही सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी है। उसके सिद्धान्त के विरुद्ध कुछ भी उसके आस-पास घटित होता है तो वह उसे आड़े हाथों लेता है। वैदेहीशरण रामनारायण नामक साहूकार की बहुत ही आलोचना करता है चुँकि रामनारायण ने अपनी सुविधानुसार किसी को बंद नोट देकर और किसी को खुला नोट देकर रिश्वत और चोर-बाजारी फैला रखता है। एक सिद्धान्तवादी को उसके यह कार्यक्रम भला कैसे गवारा होता। अतः यह रामनारायण की घोर भर्त्सना करता है। रामनारायण भी कम न था। वह भी अपनी सफाई में बोलता है और इस रिश्वत-चौर बाजारी के लिए सीधा देश और देश में व्याप्त चतुर्दिक ऐसी परिस्थितियाँ हैं जो मजबूरन ऐसे कार्य करने को उकसाती हैं। उसका कहना है कि व्यक्ति एसे चाहे अथवा न चाहे किन्तु उसे अपनी सुविधा, अपने कार्यसिद्धि के लिए उसे रिश्वत देनी ही पडती है। ऐसी परिस्थितियाँ हमारे समक्ष खडी हो जाती हैं कि हमें न चाहते हुए भी रिश्वत देनी पडेगी। इसके लिए कोई व्यक्ति विशेष उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। वह यह भी दावे के साथ कहता है कि कितने भी बडे सिद्धान्तवादी, आदर्शवादी हों, उनके समक्ष भी जब ऐसी ही कोई परिस्थिति आ खडी होती है तो उसे भी अपने सिद्धान्त को तोड़कर आगे आना ही पड़ता है अर्थात् घूस देनी पड़ जाती है किन्तु वैदेही शरण को रामनारायण की सभी दलीलें झूठी और व्यर्थ प्रतीत होती है।

देश की परिस्थिति के अनुसार उसका सिद्धान्त कैसे भंग होता है इसका सेठजी ने अच्छा वर्णन किया है। प्रस्तुत एकांकी में जब वैदेही शरण को भी ऐसी घोर स्थिति भोगनी पडती है तब उसे एहसास होता है कि उस साहूकार का कथन कितना सत्य था। होता यूँ है एक दिन वैदेही शरण अपने एक वर्ष के नन्हे से पुत्र के साथ और अपनी पत्नी गंगादेवी के साथ एक दिन आधी रात के समय किसी छोटे-से स्टेशन पर पहुँचता है। रात बहुत ही भयानक थी, जोरदार बरसाती ठण्डी हवा चल रही थी, बारीश भी हो रही थी। बच्चा भीगकर ठण्ड से कॉंप रहा था। उस स्टेशन के मास्टर ने यह घोषणा कर दी थी कि बिना टिकट कटाए कोई भी यात्री प्लैटफार्म पर आ भी नहीं सकता है। प्रथम श्रेणी का टिकट भी बिना बंद नोट दिए, बिना मुट्ठी गरम किए अर्थात् बिना घूसखोरी के कुछ भी संभव नहीं था। परिस्थिति ऐसी थी कि मरता क्या न करता,

एक तरफ तो बच्चा ठण्ड से काँप रहा था यदि इसी तरह से भीग कर थोडी देर और रहता तो उसे निमोनिया होने का खतरा था तो दूसरी तरफ उसके सिद्धान्त की बात, यदि टिकिट लेता है तो उसे घूस देनी ही पडेगी। अन्यथा यह असंभव है। ऐसे कठिन समय में सिद्धान्त की बाते कोरी बन जाती है। वैदेही शरण के नौकर मथुरा ने समय की माँग को समझा और किसी तरह से बंद नोट देकर टिकिट कटा लाया।

'फॉसी' शीर्षक एकांकी नाटक में सेठ जी ने ऐसे तीन व्यक्तियों को प्रस्तुत किया है, जो अपनी प्रिय वस्तु पर एकांत रुप से अधिकार करने की स्पृहा करने के कारण बल-प्रयोग करने की नादानी कर जाते हैं। इन तीनों में एक कवि है, जो अपनी प्रेयसी पर एकाधिकार करने के लिए उसपर बलात्कार करता है। वह अपने इस कर्म के औचित्य का प्रतिपादन करते हुए कहता है - "प्रलय के समय समुद्र बलपूर्वक ही तो पृथ्वी को अपनी लहरों में दबोचता है।"[60] कवि की प्रेमिका.. बलात्कार के फलस्वरुप मर जाती है और कवि को मृत्युदण्ड मिलता है। दूसरा पात्र एक पूँजीपति है, जिसने अपनी 'मिल' में हडताल करने वाले एक हडताली मजदूर की हत्या कर देता है और दण्डस्वरुप उसे भी फॉसी की सजा मिलती है। तीसरा पात्र एक मजदूर। वह यह मानता है कि पूॅजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत बहुत से लोगों को तो दुःख ही मिलते हैं अर्थात् मज़दूर वर्ग आदि को एक छोटे से वर्ग को ही सुख प्राप्त होता है। इसलिए उसके विरुद्ध खडा होना मनुष्य का धर्म है... यह सब सोचकर वह एक पूॅजीपति की हत्या कर देता है और खुशी-खुशी फॉसी पर चढ जाने के लिए तैयार बैठा है। पूँजीपति और कवि मरना नहीं चाहते, इनको बचाने के प्रयत्न भी होते हैं। मनुष्य स्वार्थवश होकर एस तरह के जघन्य और अकांड कर्म कर जाता है। इनमें कोई भी अपने स्वार्थ को छोड़ना नहीं चाहता है। इसी कारण तीनों दण्ड पाते हैं। कवि का यह व्यामोह है, यह भ्रम है कि उसके जैसे उदीयमान, उसके जैसे मशहूर कवि को लोग यूँ मरने नहीं देंगे और सरकार पर जोर डालेंगे कि उसे छोडा जाय। देश के कवि-कलाकारों ने सरकार से आवेदन किया है कि मृत्युदण्ड पाये हुए उस उदीयमान कवि की क्षमा-याचना को स्वीकार किया जाए। इधर पूॅजीपति अपनी रक्षा के लिए धन का जाल खड़ा करता है किन्तु उन दोनों के प्रयत्न व्यर्थ जाते हैं। अन्ततः सारे प्रयत्नों के बावजूद फॉसी की घडी आ जाती है। घडियाँ समीप आने पर कवि शून्य और कातर दृष्टि से सामने की ओर देखने लगता है। पूँजीपति तो धीरज गँवाकर रोने ही लगता है और मजदूर दोनों को देखकर कहकहे लगाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को स्वयं पर अभिमान है कि कोई अर्थात् आम जनता उसके जैसे महान् कवि को इतनी-सी बात के लिए यों मरने नही देंगे और उसे बचा लिया जाएगा। पूँजीपति की सोच है कि पैसे से दुनिया में सभी कुछ आसानी से खरीदा जा सकता है। उसे अपने कृतित्व पर तनिक भी पश्चाताप नहीं था। उसकी मान्यता थी कि उसने एक अदना से, तुच्छ से मजदूर की ही तो जान ली है। वो ऐसे मजदूरो की तुलना कीडे-मकोडों जैसे करता है। उसकी दृष्टि में

उनकी जान की कोई कीमत नहीं है। मजदूर को अपनी फाँसी लगने से थोड़ा सा भी रंज नहीं दिखाई देता है। वह यह मानता है कि उसने जो कुछ भी किया है वह बिल्कुल सही किया है। बल्कि, उसे भगवान से एक शिकायत भी रहती है कि काश और इस तरह के पूँजीपति उसके हाथों मारे जाते किन्तु ईश्वर ने उसे यह मौका नहीं दिया है। यहाँ तीनों फॉसी के दण्ड प्राप्त तीनों ही पात्रों में कहीं न कहीं मनोवृत्ति की समानता दिखाई देती है। तीनों ही अपने क्षेत्र में एकाधिकार चाहते हैं।

यहाँ विचारों का संघर्ष तो सेठजी ने प्रस्तुत किया है किन्तु विचारों का विकास नहीं हो पाया है तब वह समस्या नहीं उभर पायी है। मानव की वृत्तियाँ निरन्तर परिवर्तित हो रही हैं। बदलती हुई मानसिक वृत्तियों और भिन्न-भिन्न वृत्तियों को बड़ी होशियारी से प्रस्तुत किया है। तीनों ही कैदी अपनी स्वभावगत विशिष्टताओं के अन्तर्गत अपने हाव-भाव और लक्षण प्रस्तुत करते हैं।

'व्यवहार' शीर्षक एकांकी भी फाँसी एकांकी की ही भाँति प्रतीत होती है। सेठ जी ने इसमें जमींदार और किसान के संघर्ष को अपने विचार के लिए उठाया तो है, लेकिन समस्या का समाधान क्या होना चाहिए, यह ज्ञात नहीं हो पाया है। प्रस्तुत एकांकी में किसानों और जमींदारो के संबंध में जो अलगाव होता है उसे प्रस्तुत करता है।

रघुराजसिंह ऐसा जमींदार है, जिसके हृदय में किसानों के प्रति सच्ची सहानुभूति दिखती है। वह किसानों के साथ मिलकर रहना चाहता है। गद्दी पर बैठते ही रघुराज सिंह ने किसानों के पक्ष में उनके सारे कर्जे माफ कर दिए, लगान भी घटा दिया और इसके साथ ही उनसे बिना नजराना लिए हुए, वह उनके नाम जमीन भी करवाई। काफी समय से उसके रियासत में यह नियम चला आ रहा था कि विवाह आदि के अवसर पर प्रमुख किसानों को निमंत्रित किया जाता था और उनसे नजराने की रकम भी वसूल की जाती थी। लेकिन रघुराजसिंह की बहन की शादी पर रघुराजसिंह ने नियम में परिवर्तन कर दिया और उसने सभी को निमंत्रित किया और नजराना भी किसी तरह का न वसूलने का निर्णय लिया। रघुराजसिंह की इस प्रकार की उदारतापूर्ण कृत्य का कोई विश्वास ही नही कर पाता है। ऊपर से किसानों का नेता क्रांतिचन्द्र था, वह रघुराज का घोर विरोध करने लगता है कि - उसका कहना था कि भक्ष्य और भक्षक का संबंध कभी नहीं हो सकता है। वह सभी को यह कहकर अपने पक्ष में कर लेता है कि रघुराज के पूर्वजों ने तो केवल सम्पन्न किसानों को ही ऐसे अवसर पर बुलाया किन्तु रघुराजसिंह ने तो उनसे कितने कदम आगे बढकर सभी को बुलाया ताकि उसे हर एक से नजराना वसूलने का अवसर मिल पाए। यद्यपि नेता क्रांतिचन्द्र के इस कथन

में कोई सच्चाई नहीं है। फिर भी सभी उसकी बातों पर ही विश्वास करते हैं। यह सभी कुछ इसलिए हुआ क्योंकि किसानों में वर्ग-संघर्ष की भावना व्याप्त हो गई है। ऐसे में रघुराजसिंह जैसे जमींदार पर कैसे विश्वास किया जा सकता है क्योंकि आज तक तो उन्होंने जमींदार और उसके ऐसे उदारतापूर्ण कार्य को नही देखा था। उनको भला कैसे अविश्वास न हो, किसान-जमींदार का तो सदा से सघर्ष रहा है। चिरकाल से ही जमींदार, किसानों के खून चूसते आ रहे हैं। फिर इतनी जल्दी किसानों का रवैया जमीदार रघुराज के पक्ष में कैसे हो सकता है, यह नामुमकिन प्रतीत होता है। इसलिए तो प्रत्येक किसान को रघुराज के उदारतापूर्ण कार्यो में भी कोई षडयंत्र, कोई चालबाजी दृष्टिगत होती है और चाहकर भी कोई रघुराजसिंह जैसा जमींदार नही बन पाता है। वर्ग संघर्ष इतना घोर रुप धारण कर चुकी है। दूरियाँ इतनी ज्यादा हो गई हैं कि सह-अस्तित्व के सारे प्रयास विफल हो रहे हैं।

'आधुनिक यात्रा' एकांकी में सेठजी ने रेलगाडी में होनेवाली नियमित दैनिक कठिनाईयों के माध्यम से शासन तंत्र की आलोचना की है। प्रस्तुत एकांकी चार दृश्यों में है। यह चार दृश्य बेकरारी, इंतजारी, फौजदारी, जमींदारी नामक शीर्षक में हैं। यह चारों शीर्षक रेल-सफर के समय होने वाली कठिनाइयों के आधार पर निर्मित हैं। समय द्वितीय विश्वयुद्ध के समय का है। युद्ध के समय अंग्रेज सरकार ने युद्ध की व्यवस्था की ओर ही अपना पूरा रुख कर दिया। युद्धावस्था मे किसी प्रकार की कोई बाधा उपस्थित न हो इसीलिए ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि मुसाफिरों के लिए जिन रेल सेवाएँ निहीत थीं उनकी संख्या आधी कर दी गई। इस की गई कटौति से काफी दिक्कतें मुसाफिरों को होने लगी। उन्हें वक्त-बे-वक्त किसी न किसी कार्य से रेल में सफर करना ही पडता है लेकिन नियमित रुप से उन्हें जो परेशानियाँ रेलों में झेलनी पडती हैं उन्हें झेलना पडता है। आने-जाने वाले मुसाफिरों की संख्या तो लगभग पहले जैसी ही थी किन्तु आधी रेलें रद्द हो जाने पर उन आधी रेलों की तो हालत ही खराब थी। यह सब देखकर सरकार का कहना था कि आबादी निरंतर बढती जा रही है। इस वजह से यह सब कुछ मुश्किलें उभर रही हैं। 'बेकरारी' शीर्षक के अन्तर्गत गाँव के गरीब किसान तप्ती दोपहरी में किसी तरह हाल-बेहाल कर सैंकडों मील पैदल चलकर, जब किसी प्रकार से स्टेशन पहुँचते हैं तो उन्हें ज्ञात होता है कि गाडी कई घण्टे लेट है फिर उसके इंतजार में कई-कई घण्टे स्टेशन पर मायुसी से उन्हें गुजरना पडता है। 'इंतजारी' शीर्षक के अन्तर्गत जब किसी तरह समय से पहुंचने पर, यदि गाडी के समय पर आने पर जब टिकट कटवाने की बारी आती है तो वे पाते हैं कि टिकट की खिडकी ही बंद। टिकट काटा ही नहीं जा रहा है। पूछने पर उन्हें पता चलता है कि गाडी में पहले से ही इतनी भीड-भाड है कि औरों के घुसने की तो गुंजाईश ही नहीं है। अब उन्हें टिकट की खिडकी खुलने की घण्टों-घण्टों प्रतीक्षा करनी पडती है। 'फौजदारी' शीर्षक के अन्तर्गत जब किसी तरह से टिकट

भी मिल जाती है तब उन्हें इतनी भीड में चढ़ना किसी फौजदारी से कम नहीं लगता है। और इसके बाद वे जब जान हथेली पर लेकर यदि रेल के अदर पहुँच जाते हैं तो मानो वे मालिक बन बैठते हैं। वे दूसरे लोगों के भीतर घुसने के सारे प्रयास विफल करने में एडी-चोटी लगा देते हैं। एक प्रकार से जमीदार बन बैठते हैं।

'शिवाजी का सच्चा स्वरुप' शीर्षक एकांकी ऐतिहासिक एकांकी है। प्रस्तुत एकांकी में आवाजी सोनदेव कल्याण प्रांत को जीतकर वहॉ का सारा खजाना लूटकर आते हैं। ऐसी सूचना पेशवा मोरोपंत पिंगले लाते हैं। ऐसी सूचना को पाकर शिवाजी इसे शुभ संवाद मानते हैं। हम्मालों का झुण्ड और पालकी के साथ आवाजी सोनदेव आते हैं। शिवाजी उन्हें उनके कल्याण विजय पर बधाई देते हैं। आवाजी सोनदेव से शिवाजी युद्ध के हाल-चाल आदि के बारे में पूछने के उपरांत हम्मालों के पीछे पालकी को देखकर प्रश्न करते हैं कि उस मेणा में क्या है। सोनदेव बताते हैं कि उस मेणा में इस विजय का सबसे बडा तोहफा है अर्थात् सोनदेव बताते हैं कि इसमें कल्याण के सुबेदार अहमद की पुत्रवधू जो अप्रतिम सुंदर है उसे आपकी सेवा में बंदी बनाकर लाए हैं। आवाजी सोनदेव के मुख से ऐसा सुनकर शिवाजी की मुद्रा एकदम परिवर्तित हो जाती है। शिवाजी स्वयं अहमद की पुत्रवधू से क्षमा-याचना करते हैं।
शिवाजी - माँ, शिवा अपने सिपाहसालार की नामाकूल हरकत पर आपसे मुआफी चाहता है. . आप जरा भी परेशान न हों। माँ आपको आराम, इज्जत, हिफाजत और खबरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जाएगा बिना देरी के फौरन।[61] आवाजी सोनदेव के ऐसे कृत्य के लिए उन्हें फटकारते हैं। भविष्य के लिए घोषणा करते हैं कि आज के बाद यदि ऐसी कोई घटना हुई तो दोषी का सिर उसी वक्त कलम कर दिया जाएगा। इस प्रकार 'पर स्त्री' में भी अपनी माता के दर्शन करने वाले शिवाजी के उज्जवल चरित्र की रेखाएँ लेखक गोविन्द दासजी ने एकांकी में स्पष्ट की है।

श्री सेठ गोविन्द दास प्राचीन भारतीय गौरव, संस्कृति, आचार-विचार तथा सामाजिक नियमों से विशेष प्रभावित रहे हैं। अतीत कालीन भारतीय परंपरा और आदर्शो को सम्मुख रख उन्होंने अपने ऐतिहासिक एकांकियों का निर्माण किया है। इसमें प्राचीन संस्कृति का अभ्युत्थान और गौरव महिमा प्रदर्शित की गई है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक एकांकियों के कथानक में भारतीय इतिहास तथा भारतीय महापुरुषों के जीवन में घटित मार्मिक घटनाओं को ग्रहण किया है।

'जालौक और भिखारिणी' एकांकी की कथावस्तु संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'राजतरंगिणी' से ली गयी है और अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ ही यह अपना प्रभाव और निजी आकर्षण रखता है। यह चरित्र

प्रधान एकांकी है। इसमें कश्मीर के राजा जालौक की अहिंसा, धर्मपालन, चरित्र की ऊँचाई, आदर्शवाद और प्रजावत्सलता चरित्र चित्रित की गई है। राजा जालौक प्रतिज्ञा करता है कि उसके राज्य में जब तक सम्पूर्ण प्रजा भोजन नहीं कर लेगी, तब तक वह स्वयं भोजन नहीं करेगा। बहुत दिनों तक प्रजा सुखी जीवन व्यतीत करती है और किसी को कोई शिकायत नही होती। स्वयं राजा जालौक भी इससे संतुष्ट हैं। एक दिन एक ऐसी अद्भुत भिखारिणी उसके राज्य में आती है, जो भोजन के लिए उससे नरमांस चाहती है। यह अजीब मांग सुनकर सब चकित हो जाते हैं, राजा को भी आश्चर्य होता है। अन्य व्यक्ति मांस देने को प्रस्तुत हो जाते हैं, किन्तु प्रजावत्सल राजा नरमांस अन्य किसी को नहीं देने देता। वह कहता है, प्रतिज्ञा पूर्ति मेरी होनी है। वह आपके मांस से हो, यह कैसे हो सकता है? राजा के समीप माँस काटने का सामान आता है। जब माँस काटने का अवसर आता है, तो भिखारिणी राजा जालौक का हाथ पकड लेती है। इस प्रकार राजा प्रजावत्सलता की परीक्षा में खरा उतरता है। प्रस्तुत एकांकी में जालौक के चरित्र की ऊँचाई, प्रजा की सेवा को सर्वोपरि समझना, सदा उसकी सेवा, सुख और संतोष का विचार करना, अतुल प्रजावत्सलता, प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त की गई है। जालौक दृढ-प्रतिज्ञ, प्रजापरायण हिन्दू राजा है, जो हमारे आजकल के शासकों के लिए एक जीता-जागता आदर्श प्रस्तुत करता है।

'चन्द्रपीड़ और चर्मकार' का कथानक भी संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'राजतरंगिणी' से लिया गया है। इसमें काश्मीर के राजा चन्द्रापीड और चमार रैदास की कहानी है। इसका समय सन् 680 और 682 ई. मध्य का काश्मीर का इतिहास-काल है। राजा चन्द्रापीड़ श्रीनगर के बाहर त्रिभुवन स्वामिन के मंदिर के लिए कुछ भूमि चाहते हैं। नींव खुदते-खुदते रैदास के झोपडे के बहुत निकट तक आ जाती है। यह चर्मकारों की बस्ती है। अन्य चर्मकारों ने तो मंदिर के लिए भूमि दे दी है, किन्तु रैदास अपनी झोंपडी राजा को नही बेचना चाहता। उधर राजा उससे कहीं अधिक भूमि दूसरे स्थळ पर देने को प्रस्तुत है, कच्चे झोंपडे के स्थान पर राज्य-व्यय से पक्का गृह बनवाने को तैयार है, उसके व्यापार की वृद्धि के लिए राज्य-कोष से प्रचुर धन देने को तैयार है, परन्तु रैदास अपनी हठ पर डटा ही रहता है। वह कहता है - 'आप हमें अधिक भूमि दे देंगे, परन्तु (झोंपड़ी की ओर देखकर) वह मेरी जन्मभूमि न होगी, उसक घर की भित्तियो पर मेरा और मेरे कुटुम्ब का इतिहास.... छोटा . मोटा... टूटा-फूटा.... सुख-दुख का.... प्रेम-कलह का, जीवन-मरण का इतिहास कहाँ से आयेगा?"[62] इस पर राजा कहता है-"मैं रैदास का झोंपडा उसकी अनिच्छा से अपनी सत्ता का उपयोग कर कभी न लूँगा। त्रिभुवन स्वामिन का मंदिर अपने जीवन का श्रेष्ठतम कार्य मानने पर भी मुझसे यह न हो सकेगा।"[63]

चन्द्रापीड का सद्व्यवहार, अछूतो के प्रति ऊँची जातियों जैसा समान व्यवहार, प्रेम, सम्मान

देखकर रैदास का हृदय धीरे-धीरे पिघलता है। राजा के हृदय में हमारे समाज में अछूतों से होनेवाले पक्षपात और परंपरागत रुढियों के प्रति दुःख है। भेदभावपूर्ण धर्म को वह पाप समझता है, अस्पृश्यता को वह समाज का एक कुत्सित नियम समझता है। उसका सबके साथ एक-सा व्यवहार है। यह उच्च आदर्श देखकर रैदास अपना झोंपडा चन्द्रापीड को अर्पित कर देता है। प्रस्तुत एकाकी में भेदभाव दूर कर, भारत से छुआछुत की रुढि दूर करने के पक्ष में बडी तर्कपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। भारतीय राजा की उदारता, और न्याय, सवर्णो तथा अस्पृश्यों से एक-सा व्यवहार, पुरानी रुढियों का परिमार्जन इस एकांकी की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

'गुरु तेग बहादुर की भविष्यवाणी' एकांकी ऐतिहासिक सत्य पर आधारित है। जब मुगल सम्राट औरंगजेब ने गुरु तेगबहादुर साहब को बंदी बनाकर दिल्ली के किले में कैद किया, उस समय एक दिन संयोग से वे अपने कमरे की छत पर खडे हो पश्चिम की ओर देख रहे थे। किले के पश्चिम में औरंगजेब का हरम (जनानखाना) था। औरंगजेब ने अपने हरम में गुरु तेगबहादुर को उस ओर देखते हुए देखकर आग-बबूला हो, तेगबहादुर साहब के पास पहुँचा और बोला - "बड़े ज्ञानी गुरु बने फिरते हो और देखते हो शाही हरम की तरफ।" इस पर गुरु तेग बहादुर ने उत्तर दिया- (गंभीर स्वर में) 'मैं देख रहा था, पश्चिम की तरफ जहाँपनाह, उस ओर से आती और बढ़ती हुई अंग्रेज जाति को। ये अंग्रेज आपके दादा जहाँगीर के समय सौदागरों के रुप में इस देश में आये थे। आपके परदादा बादशाह अक़बर ने इस देश में एक मजबूत अधिक से अधिक शक्तिशाली राज्य को स्थापित किया था, हिन्दू-मुस्लिम एकता की नींव पर। उनकी नजर में हिन्दू धर्म और इस्लाम ही नहीं, दुनिया के जितने भी मजहब हैं सब समान थे। वे सभी धर्मो के ग्रंथो को एक-सी पूज्य दृष्टि से देखते थे। मंदिर और मस्जिद में उनके लिए कोई फर्क न था। ... लेकिन ... लेकिन आलीजाह, आपने इस सारी नीति को रद्दोबदल कर दिया। आप हिन्दुओं के इस देश में मुस्लिम राज्य स्थापित करना चाहते हैं। यह देश बड़ा प्राचीन देश है, न जाने कितनी बाहरी जातियाँ यहाँ आयीं और यह देश उन्हें हजम कर गया। आप चाहते हैं, इस देश की सारी जनता मुस्लिम हो जाय। आपने अन्य जातियों के धर्मो को खोदकर दफना देने का संकल्प किया है। आपके लिए सिर्फ कुरान शरीफ पूज्य है, बाकी धर्मो के धर्मग्रंथ नापाक। आपके लिए मस्जिद में खुदा रहता है, मंदिरों में नहीं। आपकी इस नीति के कारण.... सल्तनत मुगलिया ही कमजोर नहीं हो रही है, सारे देश का समाज तहस-नहस होकर टुकडे हो रहा है... और मुझे लगता है कि इस देश की इस हालत से पूरा-पूरा फायदा उठाकर पश्चिम से सात समुद्र पार से आयी हुई यह अंग्रेज जाति इस देश पर छा जायेगी।"[64]

'अट्ठानवे किसे?" इस ऐतिहासिक एकांकी में काश्मीर के राजा यशस्कर के न्याय की अद्भूत झॉकी प्रस्तुत की गई है। एक व्यक्ति देवराज सौ मुद्राएँ कमाकर घर वापिस लौट रहा था कि अचानक संयोग से एक कुएँ में स्नान करते समय उसकी रुपयों की थैली कुएं में जा गिरी। आपाधीश नामक एक अन्य व्यक्ति उधर से आ निकला। देवराज उससे कुएँ से थैली निकालने की प्रार्थना करता है और कहता है - "थैली मे से जो चाहे तुम ले लेना और जो चाहे मुझे दे देना।" थैली के निकालने पर आपाधीश के मन में बेईमानी आती है और वह थैली में से दो मुद्राऍं निकालकर देवराज को दे देता है और शेष अट्ठानवे अपनी मजदुरी के रुप में अपने पास रख लेता है। यह मुकदमा राजा यशस्कर के पास निर्णय के लिए पहुँचता है किसको दो मुद्राऍं और किसको शेष अट्ठानवे मुद्राएँ प्रदान की जावे? यही निर्णय का विषय है। यशस्कर अपनी कुशाग्र बुद्धि से दोनों पक्षों की बात सुनकर न्याय करते समय कहता है - "ऐसे प्रसंगों पर न्याय करने के लिए शब्दों का नहीं, भावना का महत्व रहता है। (आपाधीश से) आपाधीश तुमसे जब देवराज ने यह कहा कि थैली में से जो चाहे तुम रख लेना, शेष उन्हें दे देना, उस समय उनकी क्या भावना थी, उस पर विचार करना होगा। उस समय उनकी क्या भावना थी, उस पर विचार करना होगा। इसलिए मेरा निर्णय है कि..... दो मुद्राएँ तुम्हें शेष अट्ठानवे देवराज को मिलेगी।"[65] प्रस्तुत एकांकी में तर्क और विवेचना शक्तियों का चमत्कार दिखाया गया है। काश्मीर के राजा यशस्कर का तर्क और सूक्ष्म अंतर्दृष्टि प्रकट करना ही यहाँ एकांकीकार का मूल उद्देश्य रहा है। वह इसमें पूर्ण सफल रहे हैं।

'निर्दोष की रक्षा' एकांकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमिक पर हिन्दू-मुस्लिम एकता का एक आदर्श प्रस्तुत करता है। एक जौहरी तथा मनसबदार शुभकरण की पालकी में आतिशबाजी से आग लग जाती है। इसी बात पर शुभकरण और दिल्ली के पंजाबियों में लडाई हो जाती है। बात बढते-बढते हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिक झगड़े का रुप ग्रहण कर लेती है। दूसरी दिन इसी झगड़े में हाजी हाफिज मारा जाता है। इस पर मुसलमान उसे मारने पर तुल जाते हैं। अंत में शुभकरण के अफसर शेर अफगनखाँ द्वारा बचा लिया जाता है। शेर अफसनखाँ के शब्दों में लेखक ने भारत में होनेवाले सांप्रदायिक झगडों की समस्या को हल कर दिया है। यथा- "जिस झगडे का मजहब से कोई ताल्लुक नहीं, उसे मजहबी शक्ल दी गयी। बिना वजह तुम्हारी कुर्बानी माँगी गयी। मैं एक बेकसूर को इस तरह कुर्बान नहीं कर सकता, और इसके लिए इससे भी ज्यादा तकलीफें बर्दाश्त करने को तैयार हूँ।"[66] संकुचित मनोवृत्ति के हिन्दू-मुस्लिम धर्म का ठीक अर्थ न समझने के कारण लडते हैं। साधारण झगड़ों को साप्रदायिक रुप दे दिया जाता है। दूसरे लोग स्वार्थवश हिन्दू-मुसलमानों को कैसे लडाते हैं, इस सब का प्रासंगिक रुप से इस एकांकी में विवेचन है।

'अजीबो–गरीब मुलाकात' अवध की नवाबी की भूमिका पर एक अंग्रेज कमांडर और उसकी पत्नी की नवाब से मुलाकात का नाटकीय रुप है। इसकी कथावस्तु "The Life and Opinions of General Sir Charles James Napier G.E. by Sir W. Napiers (Vol IV Pages 96)" से ली गई है। कमांडर अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी बोलने का प्रयत्न करता है, लेडी को बहुत सी बातें सिखला कर लाता है। लेडी नवाब का उगालदान उलट देती है। तमाम गद्दी पर लाल पीक फैल जाती है। नवाब हुक्का हुडगुड़ाता है, तो वह समझती है, कि यह कोई बाजा है। सबसे अधिक हास्यास्पद स्थिति तब होती है, जब कमान्डर कहता है, कि मैं और मेरी स्त्री 'रिस्पैक्ट पे' करने आयी है, तो इसका अभिप्राय यह निकाला जाता है कि यह और इसकी स्त्री अपनी इज्जत बेचने आयी हैं। मजा यह है कि दोनों ओर से भाषा समझने में गलतियाँ होती है, और कुछ का कुछ अर्थ निकाला जाता है। प्रस्तुत एकांकी हास्यमूलक है। इसमें कुल चार ही पात्र हैं। अंग्रेजी भाषा संबंधी भूलों, दिखावा, हिन्दुस्तानियों की तारीफ से उन्हें प्रसन्न करना, औपचारिकता अवध के नवाबों की खुशामद पर व्यंग्य है।

'केरल का सुदामा' एकांकी में ट्रावनकोर के राजा राम वर्मा के चरित्र की ऊँचाई, प्रजा की सेवा को सर्वोपरि, सदा उसकी सेवा, सुख और संतोष का विचार रखना, अतुल प्रजावत्सलता प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त की गई है। ट्रावनकोर के राजा रामवर्मा एक निर्धन कवि को उसी प्रकार की सहायता देते हैं, जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने सुदामा को दी थी। प्रसंग यों होता है कि रामवर्मा दौरा करने निकले हैं। एक गाँव में एक कवि उनकी प्रशस्ति कर उन्हें छंद भेंट करता है। उस छंद से प्रसन्न हो रामवर्मा उस कवि को अपने साथ ले आते हैं। जिस नाव पर वे कवि के साथ आ रहे हैं, उस नाव में उनकी आज्ञा से कवि कृष्ण और सुदामा से सम्बन्धित एक कविता का गान करता है। कवि अत्यंन निर्धन है। रामवर्मा उसे छः महिने ट्रावनकोर में रखते हैं और उनके अनजान में चुपके से उसके ग्राम में उसका वैभवशाली भवन बना देते हैं। जब कवि जाने लगता है, तो उसे साधारण रीति से विदा करते हैं। कवि निराश होकर लौटता है और जो कुछ उसे विदा में मिला है उसे भी नाराज होकर नदी में प्रवाहित कर देता है। अपने फटे-पुराने वस्त्र धारण कर लेता है। अपने घर रात में पहुँचता है और देखता है कि झोंपड़ी नहीं है तब बाहर ही सो जाता है। सुबह उसकी बहन और पत्नी उसे उठाते हैं। वह आश्चर्य में पड जाता है कि यह सब कैसे हुआ? अच्छा हुआ कि बुरा? उसे भय हुआ कि 'इस लक्ष्मीपूजा में कहीं मेरी सरस्वती पूजा भी न चली जाय।' प्रस्तुत एकांकी सुदामा चरित्र के आधार पर लिखा गया है।

'सच्चा धर्म' एकांकी में दिल्ली निवासी महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण का शिवाजी के पुत्र संभाजी को

औरंगजेब से बचाने के लिए अपने कुल, वर्ण इत्यादि की परवाह न करने की कहानी है। औरंगजेब के एक सरदार दिलावरखॉ को यह शक हो जाता है कि जो बच्चा ब्राह्मण पुरुषोत्तमदास के पास है, वह पुरुषोत्तम दास का भानजा नहीं बल्कि शिवाजी का बेटा संभाजी है। अतः दिलावरखॉ पुरुषोत्तम से कहता है कि वह अपने भानजे के साथ`क थाल मे खाना खाये तो वह मान जायेगा कि वह लडका उसका भानजा है। पुरुषोत्तम की पत्नी अहिल्या कहती है कि उन्हें अपने ब्राह्मणत्व की रक्षा करनी चाहिए, संभाजी के साथ भोजन न करना चाहिए, झूठ बोलकर झूठ को सत्य सिद्ध करने के लिए तैयार न होना चाहिए। परन्तु पुरुषोत्तम दिलावरखॉ के सम्मुख संभाजी के साथ एक थाल में भोजन करता है। इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में सेठ ने एक साधारण प्रजा द्वारा अपने राजा की रक्षा के लिए जाति, वर्ग, वर्ण तथा धर्म के बलिदान को स्पष्ट किया है।

'सच्ची पूजा' एकांकी में लेखक ने एक शासक की सच्ची पूजा क्या होनी चाहिए - यह स्पष्ट करना ही इस एकांकी का तात्पर्य बताया है। पेशवा माधवराव का अधिकांश समय धर्म में लग जाता है। वे उषाकाल में उठ मध्यान्ह तक जप-यज्ञादि करते हैं जिसके कारण उन्हें प्रजा के लिए अवकाश नहीं मिलता। इस पर रामशास्त्री पेशवा को सच्ची पूजा का रहस्य समझाते हैं- कि "... अपनी प्रजा को भगवान का ही स्वरुप मान, अपने कार्य को भगवत कार्य समझ, ... जिस दीक्षा में इस समय आप हैं, उसके लिए जो पूजा आप कर रहे हैं, वह सच्ची पूजा नहीं"[67] इसका प्रभाव यह होता है कि पेशवा माधवराव प्रजा को भगवान् का स्वरुप मान, राजसेवा को भागवत् कार्य समझ कर रामशास्त्री के आदेशानुसार सच्ची पूजा प्रारंभ करता है। इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में रामशास्त्री ने माधवराव को सच्ची पूजा अर्थात् प्रजा की सेवा का अर्थ समझाया है।

सेठ गोविन्ददास जी के एकांकी नाटकों में भारतीय परम्परा, संस्कृति की रक्षा, देश-प्रेम, राष्ट्र निर्माण, राजनैतिक आन्दोलन, धर्म, पुराण आदि का सफल चित्रण हुआ है। उन्होंने अपने एकांकियो में अनेक सामाजिक, राजनैतिक और पारिवारिक समस्याओं का विवेचन किया है। उनके एकांकियों के कथानक हमारे सार्वजनिक और सामाजिक जीवन से इतने अधिक निकट हैं कि वे हमारी नित्य की समस्याओं का रुप धारण कर लेते हैं। सेठजी ने विभिन्न प्रकार के एकांकी लिखे। उनमे ऐतिहासिक, सामाजिक समस्या प्रधान सत्य घटनाओं पर आधारित एकांकी हैं। उनका एकाकिसाहित्य भारतीय समाज की कुरीतियॉ और रुढिवादी जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं के स्पष्ट चित्र उपस्थित करता है। उनके एकांकियों को पढ़कर और रंगमंच पर देखकर रुढिवादिता पर हॅसी आती है और कुरीतियों के प्रति घृणा होती है। उन्होने किसी समस्या

को उपस्थित करते हुए दृढ़ता से अपने पक्ष का समर्थन करते है। उनके समस्त एकांकी यथार्थ को अपने सामने रखकर आदर्श की ओर संकेत करते हैं।

एकांकी-कला की दृष्टि से वे युगांतकारी कलाकार हैं। उन्होंने अपनी नाट्य-कला में पाश्चात्य और पौर्वात्य तंत्र का बड़ी सफलता से समन्वय किया है। गतिमय कथावस्तु, सरल-सजीव और स्वाभाविक कथोपकथन, रंग संकेत, अभिनय को सफलता प्रदान करते है। सेठजी के एकांकी नाटकों मे व्याख्यात्मक शैली की प्रधानता है। उन्होंने समस्या प्रदान नाटक इसी शैली में उनको विशेष सफलता भी मिली है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं पर आलंकारिक और व्यंग्यात्मक शैलियॉ भी मिलती हैं, जहॉ पात्रों में रोमांस का प्रभाव है, वहाँ शैली भावात्मक हो गई है। सेठजी की एकांकी कला जीवन के लिए है। वे बडे संयम से समस्याओं को उपस्थित करते हैं। क्रांति की बात कहते-कहते और सोचते-सोचते रुक जाते हैं। उनको आवेश आता है, किन्तु दब जाता है। नवीन प्रणाली के प्रति आकर्षण होते हुए भी वे प्राचीनता को नहीं छोडते। वे यथार्थवाद की रक्षा के लिए प्रयत्नशील दिखाई पडते हैं। उपक्रम तथा उपसंहार उनकी एकाकी-कला की महत्वपूर्ण देन है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

पाश्चात्य नाट्य-साहित्य से प्रभावित और प्रेरित होकर जिन नाटककारों ने आधुनिक युग में एकांकियों के क्षेत्र में नये प्रयोग किए हैं उनमें 'अश्कजी' का नाम महत्वपूर्ण है। अपने एकांकियों के माध्यम से 'अश्क' जी ने जीने की सही जिन्दगी तलाशने की कोशिश की है। आपने यह तलाश बहुत ईमानदारी से की है- यथार्थ और मनोविज्ञान के संस्पर्श से।"[68] प्रसादोत्तर काल में समस्या नाटक के रुप में हिन्दी नाटक का, नयी दिशा में जो उत्थान हुआ है, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' उसके प्रमुख प्रतीक तथा स्तंभ माने जाते हैं। आपने पाश्चात्य नाट्य-साहित्य के किताबी ज्ञान को निजी अनुभव और पर्यवेक्षण के खरल में कूटपीस कर सामाजिक दिग्दर्शन का नवीन और तथ्यपरक रसायन तैयार किया है।"[69]

'अश्क' जी के सभी एकांकियों की आधारभूमि समाज ही है। आप सामाजिक यथार्थवादी एकांकीकार हैं। वस्तुतः इनके एकांकियों की विषय सामग्री का सम्बन्ध आधुनिक मानव जीवन की यथार्थता से ही है। चुँकि इनका दृष्टिकोण आलोचक की भॉति है अतः इन्होंने अपने आस-पास के क्षेत्र तथा इसी से जुडी मानवीय जीवन तथा समाज की उद्भुत समस्याओं को एक आलोचक की दृष्टि अर्थात पैनी दृष्टि से देखा है, परखा और अपनी रचना के माध्यम से इसे प्रस्तुत किया है। आज घर-घर में मानव के अन्तर्मन में, परिवारों में तथा समाज के अंतराल में जो विकृतियाँ, विद्रुपताएँ घर कर गई हैं, वे समाज की उन्नति में

बाधक सिद्ध हो रहे है। भारतीय समाज अपने सांस्कृतिक पतन की राह पर अग्रसर प्रतीत हो रहा है। ऐसे तत्वों को, ऐसी समस्याओं को उभारकर हमारे समक्ष प्रस्तुत करने का बीडा 'अश्क' जी ने उठाया और अपनी लेखनी द्वारा, एकांकियों के माध्यम से हमारे समक्ष खोलकर रख दिया है। 'अश्क' जी उपदेशक बनकर कोई आदर्श प्रस्तुत करना नहीं चाहते बल्कि मात्र समाज तथा मनुष्य की अंतर्वृत्तियों के भीतरी परतों को ही उघाडना चाहते हैं। जागरुक होने के कारण इन्होंने अपने सामाजिक परिवेश को खुली आँखों से देखा है तथा उसमें परिव्याप्त विकृतियों को व्यंग्य की तूलिका से प्रभावशाली रुप से अंकित किया है। इन्होने स्वयं लिखा है कि "मैं ऐसे नाटक लिखना चाहता हूँ, जो यथार्थधर्मी भी हो और मनोवैज्ञानिक भी और हमारी समस्याओं का भी दिग्दर्शन कराये।"[70]

'अश्क' जी मध्यवर्ग के समाज की कमजोरियों, रुढियों तथा जीर्ण-शीर्ण परंपराओं की ओर अनवरत ध्यान दिलाते हैं। अपने नाटक को प्रभावशाली बनाने के लिए ये उसके शिल्प का परिमार्जन खूब करते हैं और उसे अधिक से अधिक सुगठित बनाते हैं। 'अश्क'जी की सबसे बडी शक्ति व्यंग्य और हास्य है और सबसे बडी विशेषता इनकी यह है कि हिन्दी एकांकियों में हास्य और व्यंग्य में यथार्थवादी सफल प्रयोग करने के बावजूद युगानुरुप इन पर श्रेष्ठ व्यंग्यकार बर्नाड शॉ का कोई प्रभाव नहीं पडा और इन्होंने अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण रखा। समाज, व्यक्ति अथवा संस्थाओं के खोखलेपन, युगों की कडवाहट, रुढियों की कमजोरियों का चित्रण ये ऐसे व्यंग्यात्मक शैली से करते हैं कि एकांकी समाप्त करते-करते दर्शक का मन उसके प्रति विद्रोह से परिपूर्ण हो उठता है। आपका प्रत्येक एकांकी किसी मूल सामाजिक समस्या को लेकर जीवन या समाज की किसी गूढ गुत्थी की ओर संकेत करता है। और अन्तर्जगत में उनके प्रति एक विद्रोह का बीज बोते हैं। अपनी अनुभूति को सूक्ष्म से सूक्ष्म रुप में मनोविज्ञान के सहारे हमारे मस्तिष्क में उतार देते हैं। उन्होंने एकांकी इसी दृष्टि से लिखे हैं।"[71] हिन्दू परिवार की समस्याओं का अध्ययन और अनुभव उनके एकांकी नाटकों में मुखरित हुआ है। रुढ़िवादी परंपराओं से घायल तथा बुद्धिवादी तर्को से बोझिल भारतीय समाज इनके एकांकियों की भाव-भूमि है। आपका उद्देश्य रहा है - सामाजिक विभीषिका का पर्दाफाश करना और इसमें इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। इसलिए 'अश्क' जी वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं से नाट्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए जिनमें उन्होंने विशेष रुप से सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न समस्याओं, पात्र-सृष्टि और मनोवैज्ञानिकता का विशेष रुप से ध्यान रखा है।[72] इन्होंने आलोचक की पैनी दृष्टि से समाज का अन्तर्द्वन्द्व देखा है और मध्य-वर्गीय समाज की नस-नस पहचानने की कोशिश की है। इनके पात्र, घटनाये यहाँ तक कि संभाषण भी हमे चिरपरिचित प्रतीत होते हैं। व्यग्यात्मक दृष्टिकोण से उन्होंने मध्यवर्गीय समाज, चलती दुनियादारी, जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं का चित्रण किया है। पारिवारिक,

सामाजिक और राजनैतिक विषमताओं और रुढ़ियों के विरुद्ध कड़ा मोर्चा है। इन न्यूनताओं की ओर संकेत कर जैसे उन्होंने समाज के मर्म-स्थल पर ऊँगली रख दी है।[73]

'अश्क' जी ने सन् 37-38 में **'देवताओं की छाया में'** नामक संग्रह का प्रणयन किया। इस संग्रह में सात सामाजिक एकांकियों का संकलन है। यह समय 'अश्क' जी के जीवन संघर्षो का था। मानसिक तनाव ने उनकी दृष्टि को पैनी बनाया। वैयक्तिक राग-विराग सुख-दुःख से ऊपर उठकर उन्हें अनुभूति की व्यापकता अपने अभाव कष्टों ने उन्हें बहुतों के प्रति द्रवीभूत किया, निज की विवशताओं ने औरों की सीमाओं की ओर देखने को प्रेरित किया और इसीलिए उनके इन प्रारंभिक एकांकियों में जीवन का आलोचन स्पष्ट लक्षित होता है। इस आलोचक रुप ने ही इन्हें व्यंग्य का अस्त्र प्रदान किया। प्रत्येक पग और प्रत्येक क्षण जिन अभावों ने उन्हें रोका, इन्होंने 'अश्क' जी को वर्तमान की तत्कालिकता को हृदयगम कर, अभिव्यक्ति प्रदान करने की प्रेरणा दी।

(i) **'देवताओं की छाया में'** संग्रह में 'जोंक', 'पहेली', 'विवाह के दिन', 'अधिकार का रक्षक', 'आपस का समझौता', 'लक्ष्मी का स्वागत' और 'देवताओं की छाया में' आदि सात एकांकियाँ संकलित हैं। संग्रह के सभी एकांकियों में पंजाब के मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग का ही चित्रण प्रधान है। इस संग्रह में लेखक, शोषित, मजदूरवर्ग की विपत्तियों और सीमाओं के चित्रण द्वारा वर्तमान समाज के कलुषित वर्ग-भेद की ओर संकेत करता हुआ, उस दुःखद अंत का चित्र प्रस्तुत करता है, जो अपनी करुणा से अभिभूत कर लेता है।

भारत एक खेतीप्रधान देश था और गांवों में बसता था। आज विकास के नाम पर नगरों की चकाचौंध का आकर्षण गाँवों के युवावर्ग तक व्याप्त हुआ है। शहरों के सम्मोहन के कारण गॉव नगरों की ओर पलायन कर रहे हैं। गाँवों से निरंतर बढ़ती हुई आबादी के कारण शहरों में भीड़ बढती जा रही है। इससे कई समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं जिससे साधारण जन तो क्या समस्त समाज त्रस्त है। शहरों में आवास की समस्या, रोजगार की समस्या ऐसी कई ज्वलंत समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं जिससे शहर देहात की ओर फैलने के लिए विवश हैं।

'देवताओं की छाया में' इसी परिप्रेक्ष्य में नगर के पास अवस्थित काकू नामक गाँव अब 'देवनगर' बन रहा है। एक व्यावसायिक कम्पनी काकू नामक गाँव की जमीन खरीदकर भवन-निर्माण कर रही है। व्यावसायिक कम्पनियाँ अपने आर्थिक लाभ और तुच्छ स्वार्थो से प्रेरित होकर आम जनता का भारी नुकसान

करती है। वे गाँव की भोली-भाली जनता के जीवन से खिलवाड करती है। देवनगर में जो मकान बनाये जा रहे हैं, वे बनने के पहले ही मरम्मत चाहते हैं, क्योंकि ठेकेदार मकानों में सीमेन्ट कम लगाते हैं। इसी से छत गिर पडती है और मजदूर दब जाते है। रोज ऐसे स्वार्थी कम्पनियों के कारण मकानों की छत्त गिर रही है। कहने को तो यह कहा जा रहा है कि कम्पनी 'काकू' के गरीब मजदूरों को रोजी-रोटी दे रही है लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि छः आना रोज की मजदूरी थमाकर उनका भीषण शोषण किया जा रहा है। प्रस्तुत एकांकी में दयनीयता की पराकाष्ठा वहॉ होती है, जब दम तोडते हुए मजदूरों को पिलाने के लिए भी दो बूँद दूध भी समस्त गॉव में नही बचा था। क्योंकि गॉव का सारा दूध शहरों मे चला जाता था। 'अश्क'जी अपनी खूली आँखों से देख रहे थे कि शहरों की कुरुपताएँ गाँव की ओर अपना रूख कर रही है। भोले सहज ग्रामवासी उसका शिकार हो रहे हैं।

प्रस्तुत एकांकी में सादिक ऐसा ही पात्र है जो 'काकू' ग्रामवासी है। युवक सादिक आठवीं कक्षा तक पढा हुआ है और स्वयं को शिक्षित समझता है। सादिक शरीर श्रम करने में अपना अपमान समझता है। पूर्वजों से प्राप्त जो भी उसे भू-सम्पत्ति प्राप्त होती है उसे वह नष्ट कर देता है। वह एक दुकान खोल लेता है। लेकिन इस क्षेत्र में भी वह असफल सिद्ध होता है फिर वह मजदूर बन जाने पर बाध्य हो जाता है लेकिन छत्त गिर जाने पर उसकी जान ही चली जाती है। श्रमिक के जीवन के प्रति वेदना और व्यावसायिक सोसायटी के प्रति गहरा क्रोधमय व्यंग्य जो अपनी समस्त संवेदना और तिलमिलाहट के साथ उभरता है।

'जोंक' एक व्यंग्यात्मक प्रहसन है। शहरों के मध्य-वर्गीय जीवन के संत्रास को लेखक ने बखूबी प्रस्तुत किया है। 'जोंक' एक ऐसा कीडा है जो शरीर से चिपक जाने पर सारा खून चूसने के बाद ही अलग होता है। 'जोंक' में भोलेनाथ के गाँव से आये हुए अतिथि बनवारीलाल, जोंक की तरह भोलानाथ का जीवन-रस चूस कर भी वहाँ से जाने का नाम नहीं लेता है। बनवारीलाल के कारण भोलानाथ और उसकी नवब्याहता पत्नी को होनेवाली अनेक परेशानियों के संत्रास का व्यंग्यात्मक निरुपण प्रस्तुत है। इस प्रकार यह एकांकी देश के मध्यवर्गीय जन-जीवन पर सामाजिक-सांस्कृतिक दबाव के कारण उत्पन्न कठिनाइयों का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत करती है। प्राचीन हिन्दू मान्यता है कि अतिथि ईश्वर का रूप है। अतिथि को पूजनीय मानकर उसका आदर-सत्कार किया जाता है। लेकिन यहाँ तो स्थिति विपरीत हो गई है। मेरे विचार से जब ऐसे मेहमान गले आ पडेंगे तो ऐसा आभास होगा मानो विपत्ति आ खडी हुई है। मेहमान अर्थात् अतिथि आदर, सेवाभाव के हकदार तभी तक रह सकते हैं जब तक वे मेहमान रहेंगे या यो कह सकते हैं कि वे मेजबान का भी ख्याल रखेंगे। आज शहरी जीवन इतना कठिन हो गया है कि स्वयं व्यक्ति परेशान रहते हैं,

उस पर यदि ऐसे बेतूके मेहमान आ धमकेंगे तो वे देवतुल्य मेहमान सिरदर्द बन जायेंगे। हास्य की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना है।

'पहेली' एकांकी में यद्यपि हास्य का पुट है किन्तु फिर भी इसे शुद्ध प्रहसन नहीं माना जा सकता है। 'अश्क' जी ने इसे झाँकी कहा है, जिसमें शब्द पहेली प्रतियोगिता में भाग लेने वाले एक युवक की सनक का रोचक चित्रण किया गया है। यह झाँकी बहुत कुछ उस मनोवृत्ति की सूचक है, जब विपन्न व्यक्ति अपनी स्थिति, प्रतिभा और कार्यक्षमता से अवगत होते हुए और अपनी सीमाओं का दुखद ज्ञान रखते हुए भी एक क्षण को किसी मोहक भ्रम में फॅसकर कुछ कल्पनायें करता है, अपनी दमित इच्छाओं की परिणति किसी स्वप्न लोक में देखता है। बुद्धिवादी होते हुए भी क्षणभर को भाग्यवाद पर आस्था करके अपने अभावों की पूर्ति का माध्यम खोजता है। एकांकी का मुख्य पात्र बेकार युवक चेतन है जिसे 'क्रोस वर्ड पज़ल"(Cross Word Puzzle) का शौक है। उसका यह शौक इस कदर उस पर सनक बनकर हावी हो गया कि उसे इसके अलावा कुछ भी होश नहीं रहता था। हालाँकि उसे ईनाम स्वरुप अभी तक कुछ भी नहीं मिला था, बल्कि वह जो है उसे भी गँवा रहा था। चेतन की मॉ नहीं चाहती कि चेतन इस व्यर्थ धन्धे में समय और पैसे नष्ट करे। जब चेतन अपने मित्र आनन्द के साथ पहेली बूझता है तो माँ खीझ जाती है और उसे समझाने की कोशिश करते हुए कहती है 'बेटा, लॉटरी क्या, सट्टा क्या, यह क्या, सब जुआ है और जुए में कौन जीता है और जो जीता है, वही तो हारा है। अंत में कभी किसी का अच्छा न हुआ। इस तरह पाया हुआ कभी किसी के पास नहीं रहा है।'[74]

यहॉ चेतन की माँ का कथ्य बिल्कुल सही है, जुए की जीत में भी हार है क्योंकि एक बार जब व्यक्ति को इसकी लत लग जाती है तो इससे उबार पाना स्वयं को बहुत कठिन हो जाता है। घर के घर बर्बाद हो जाते हैं। यह आज की एक समस्या है। व्यक्ति एक ही साथ ज्यादा पा लेने के चक्कर में अपने पास रही सही धन राशी को भी गँवा बैठता है। इसके परिणाम घातक होते हैं। समाज के लिए भी यह अभिशाप है। इस धन्धे की विचित्रता की ओर संकेत करते हुए चेतन का मित्र आनन्द कहता है कि इनाम का रुपया तो गधों को ही मिलता है। मुहल्ले में एक इन्स्पेक्टर साहब हैं, जिन्हें लॉटरी से रुपये मिले हैं और वे अब एक नयी बीवी लाने की बात गंभीरतापूर्वक सोच रहे हैं।[75] यहाँ 'अश्क' जी ने आनन्द के माध्यम से ऐसे जुआरियों पर छीटाकशी की है जिन्हें बिना हाथ पैर हिलाए धन राशी ऐसे तरीकों से तुरन्त प्राप्त हो जाती है। वे अपना विवेक खो बैठते हैं और अकर्मण्य होकर पशुओं की भॉति आचरण करते हैं। चेतन पर किसी भी बात का कोई प्रभाव नहीं पडता है। वह अधार्मिक और नास्तिक भी हो गया। वह तो यहाँ तक अनुभव करने लगा कि उसने जो

पूजा-पाठ करने मे जो समय गँवाया है यदि उसे वह पहेली हल करने में लगाता तो उसे पहला इनाम मिल जाता और उसकी विलायत की सैर की व्यवस्था भी हो गई होती।

'विवाह के दिन' शीर्षक एकाकी में 'अश्क' जी ने विवाह संस्था की त्रुटियो की ओर संकेत किया है और इससे जुडी समस्याओं को एकांकी के माध्यम से उभारा है। इसमे पर्दा-प्रथा पर व्यग्य किया गया है। सामाजिक व्यंग्य के माध्यम से जीवन की वास्तविकता से पलायन करनेवाले स्वप्न, युवकों की रुग्ण मानसिकता की इसमें कलई खोली गई है। प्रस्तुत एकांकी में लेखक ने आधुनिक युवकों की उस विकृत मानसिकता का पर्दाफाश किया है, जिसके कारण वे बम्बई भाग जाते है तथा अभिनेता बनकर ऐसी युवती से शादी करने का स्वप्न देखते हैं, जो नृत्य-संगीत-निपुण हों, चाहे वह गृहकार्य में शून्य ही क्यों न हो। प्रस्तुत एकांकी का पात्र परसराम एक सुशिक्षित युवक है। उसके अपने बडे-बुढ़े उसका विवाह तय कर देते है। इसके लिये वे उसकी राय लेना जरुरी नहीं मानते हैं। परसराम की माँ इस भोली-भाली बहू पाने को उत्सुक थी। लडकी खाना-पकाना, सीना-पिरोना सभी घरेलू कार्यो में पारंगत थी। सास के मतानुसार यहाँ एक बहू के यही गुण होने चाहिये , किन्तु एक स्त्री के पत्नी-रुप में और भी कर्तव्य होते हैं। ऐसे कुछ आवश्यक गुण होने चाहिये ताकि वह अपने पति के सही अर्थो में जीवन-संगिनी बन पाए। परसराम के पिता कहते हैं- 'बात कहने की नही, किन्तु परसराम की मॉ कितनी सुन्दर है, तो क्या हमारा जीवन सुख से नहीं बीता ?"[76] वैसे बाह्य सौंदर्य कोई मायने नहीं रखता है। आंतरिक सौंदर्य होना चाहिये। आंकलन केवल बाह्य रुप सौन्दर्य से किया जाएगा तो खरा नहीं होगा। परसराम जो कल्पना लोक में विचरण करने वाला एक युवक जो अपनी पत्नी को कुरुप भद्दी मान लेता है। उसके भ्रम को तोडने के लिए बहू को उसके निकट लाया जाता है और लीला अपने भाई परसराम से कहती है-'यह देखो, तुम्हारी बहू, यह असुन्दर नहीं, कुरुप नहीं शिक्षित है, गा सकती है। तुम्हें भ्रम हो गया है, तुमने शायद महरी की लड़की को देख लिया है।"[77]

'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी में 'अश्क' जी ने दहेज समस्या को उठाया है। इसमें एक सुशिक्षित विधुर नवयुवक और उसके धनलोलुप हृदयहीन माता-पिता के बीच संघर्ष का यथातथ्य चित्रण किया है। रोशन की पत्नी का अभी-अभी देहान्त हुआ है तथा बच्चे की हालत भी काफी नाजुक है और रोशन उसकी जीवन रक्षा के लिए तन-मन-धन से जुटा रहता है।[78] लेकिन विडम्बना यह है कि उसके वृद्ध माता-पिता बच्चे को रोशन की शादी में बाधक समझते हैं। द्वार पर नये रिश्ते के लिए सियालकोट से आये हुए धनी लोगों से मॉ-बाप का शगुन लेने को बेताब है। मॉ का संवाद- "वही, जो सरला के मरने पर अपनी लडकी के लिये कह रहे थे। बडे भले आदमी है। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी...."[79] इधर

पिता शगुन लेकर आते हैं, इधर रोशन बच्चे का शव लेकर कमरे से निकलता है। यह स्थल बडा ही मार्मिक बन गया है। 'पिताः (सीढियों से ही) रोशन की माँ, बधाई हो, मैं ने शगुन ले लिया (कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिये रोशन आता है)। सुरेन्द्र - माँजी, जाकर दाने लाओ और छिय का प्रबंध करो।"[80]

रोशन अपने पुत्र की नाजुक हालत देखकर जब व्याकुल हो उठता है तो सुरेन्द्र उसे समझाते हुए ईश्वरीय विश्वास की ओर मोड़ना चाहता है लेकिन रोशन कहता है कि "(भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा। उसका भरोसा नहीं क्लेस और क्रूर। उसका काम सते हुओं को और सताना है, जले हुओं को और जलाना है।"[81] माँ सुरेन्द्र से कहती है कि वह ही अपने मित्र रोशन से कहे कि वह रिश्तेवालों के पास एक दो मिनट बातें कर ले। जब सुरेन्द्र इस पर आश्चर्य प्रकट करता है तो माँ यथार्थवादी दृष्टि को प्रतिपादित करती हई कहती है-"तुम जानते हो बच्चा। दुनिया जहान का यह कायदा है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दुसरा मकान खडा होता है।"[82] यह रोशन के माता-पिता की हृदयहीनता, धन-लोलुपता और अमानवीयता का बडा ही मार्मिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। एक ओर एक पिता की आशाओं का दीपक टिमटिमा रहा है तो दूसरी एक ओर एक पिता लक्ष्मी का स्वागत की योजना बना रहा है। इनकी एकांकियों मे विरोधी तत्व होने के कारण मनोभावों का तीव्र संघर्ष उभर आया है। आपने अधिकांश एकांकियों में बाह्य संघर्ष की अपेक्षा अन्तःसंघर्ष को प्राथमिकता दी है।

'आपस का समझौता' एकांकी में डॉक्टरों की जनता को अंधाधुँध लूटने की प्रवृत्ति का उद्घाटन किया गया है। प्रहसन में एक अंक और तीन दृश्य हैं। हास्यमय प्रभाव बडी सफलता से उत्पन्न किया गया है। डॉक्टरों की बेकारी तथा रोगी को लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाने की मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। डॉ. कपूर और डॉ. वर्मा दोनों मित्र हैं। कई वर्ष हो जाने पर भी दोनों की प्रैक्टिस नहीं चलती है। एक दिन दोनों मित्र आपस में एक समझौता करते हैं - उनका यह समझौता इस प्रकार है - डॉ. वर्मा.. कपूर - आई स्पेशिलिस्ट, उनसे मैंने समझौता किया है कि वे मुझे दाँतों के रोगी भेजा करें और मैं उन्हें आँखों के मरीज भेजा करुँगा। उन रोगियों से हम जो फीस लेंगे, उसमें 25 प्रतिशत एक-दुसरे को कमीशन दे दिया करेंगे। आपस का यह समझता हममें तय हुआ है। इससे हम दोनों को दोहरा लाभ होगा। डॉ. वर्मा अपने साले परतूल को आँख दिखाने के लिये डॉ. कपूर के पास उक्त समझौते के आधार पर भेजते हैं। डॉ. कपूर उसे ऑख का कोई भयंकर रोग बताकर उसकी आँख में एक दवा डालते हैं। परतूल को उस दवा से अत्यधिक कष्ट होता है। वह डॉ. वर्मा को आकर बताता है। डॉ. वर्मा परतूल से यह सुनकर एकदम क्रोधित हो जाते हैं

और कहते हैं कि वह उस पर हरजाने का दावा करेंगे और....और....मैं उसके सब दाँत उखाड दूँगा, उसके मसूढ़ों में नासूर कर दूँगा। एकांकीकार डॉक्टरों के मनोविज्ञान का चित्रण करने में सफल रहे हैं। दोनों डॉक्टरों का समझौता ही हास्य का कारण है।

'अधिकार का रक्षक' प्रहसन का रचनाकाल सन् 1938 है। इसमें एक नेता के नीरस जीवन का चित्र खींचा गया है। वह कहता कुछ है और करता कुछ है। सेठ ऐसे ही एक नेता हैं। प्रहसनकार ने समाज के उस पहलू को उभारा है, जिनमें साधन-सम्पन्न व्यक्ति सदा अपना लाभ चाहता है। श्री सेठ नौकर-यूनियन की स्थापना करते हैं। परंतु स्वयं अपने नौकर का वेतन कई मास तक नहीं देते है। ब्राह्मण होते हुए भी हरिजनों का पक्ष लेते हैं पर जमादारिन के वेतन माँगने पर कहते हैं कि उनके पास समय नही है। हरिजन-सेवा के संबंध में श्री सेठ स्वयं कहते हैं - 'श्री सेठः मै वहाँ भी हरिजनों की सेवा करुँगा। आप अपनी हरिजन-सभा मे इस बात की घोषणा कर दें।' मजदूरो को अधिक वेतन दिया जाए, इस संबंध में असेम्बली में बिल पेश करने का वचन देते हैं - श्री सेठ - "मैं असेम्बली में आते ही एक ऐसा बिल पेश करुँगा, जिससे वेतन के बारे में मजदूरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायें और जिन लोगों ने गरीब श्रमजीवियों के वेतन तीन महिने से अधिक दबा रखे हैं, उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हें दण्ड दिया जाये। मैं असेम्बली में माँग का समर्थन करुँगा।" श्री सेठ का यह कथन उनके आचरण के विपरित है। इसीलिये सर्वथा हास्यपूर्ण लगता है।

श्री सेठ अपने को सभी के अधिकारों का रक्षक बताते हैं। अपने बच्चो से घर में उन्हें बात करने का अवकाश नहीं रहता, परंतु बाहर देश के बच्चों के सुधार के लिए वे भाषण देते हैं. घर में पत्नी को तनिक-सी बात पर झिडक देते हैं परन्तु श्रीमती सरला देवी जो महिला-समाज की अध्यक्षा हैं उनसे कहते हैं-श्री सेठ - "मैं जी जान से स्त्रियों के अधिकार की रक्षा करुँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझसे अच्छा रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों मे नजर न आयेगा।" श्री सेठ वोट लेने के लिये सदा व्यस्त रहते है। सभी के अधिकारों के रक्षक बनकर वे प्रहसन के शीर्षक को सार्थक करते हैं। श्री सेठ की व्यस्तता और खीझ हास्य उत्पन्न करती है। घर और बाहर के जीवन का असामान्य ही हास्य का कारण बना है। घर से बाहर सभी के हित और कल्याण की कामना करने वाले नेता का घरेलू जीवन कितना नीरस है, इस पर व्यंग्य भी है।

(ii) **'चरवाहे'** प्रतीकात्मक एकांकियो का संग्रह है। दूसरे संग्रह में नाटककार की वाणी ने प्रतीक योजना द्वारा प्रकट और परोक्ष दोनों ही प्रकार की स्थितियों का प्रकाशन किया है। 'चरवाहे' संग्रह के सभी एकांकियों

का आलेखन काल 1941 से 1943 के मध्य का समय है। इस संग्रह में पात्रों को ही अधिकतर प्रतीक के रुप में उपस्थित किया गया है। 'अश्क' जी के नाटकों में प्रतीकों का प्रयोग भावात्मक ग्रंथियों के उद्घाटन के लिए ही अधिकांशतः हुआ है। भावनाओं के आरोपण द्वारा सूक्ष्म मनोभाव को जड की सहायता से उद्घाटित करके पैनापन लाने और प्रभाव को घनीभूत करने की चेष्टा इन मे है। भाव, चरित्र, वातावरण या चिन्तन की अल्पतम, परन्तु पूर्ण अभिव्यंजना के लिए इन एकांकियों में प्रतीकात्मक शैली को अपनाया गया है। 'चरवाहे' संग्रह में सात एकांकियाँ संग्रहित हैं- 'चरवाहे', 'मैमुना', 'चुम्बक', 'चिलमन', 'चमत्कार', 'खिडकी', 'सूखी डाली'।

इन नाटकों में एक नवीन प्रवृत्ति सेक्स की समस्या का समावेश है। ये एकांकी अधिकतर नारी प्रधान है। 'चरवाहे', 'चुम्बक', 'चिलमन', 'खिडकी', और 'सूखी डाली' आदि में केन्द्रीय चरित्र सब नारियाँ ही हैं और उनके आस-पास विभिन्न मनोवृत्तियों के घूमते हुए पुरुष। नारी के मन की ग्रंथियों, उसके भावात्मक जगत् तथा चरित्र के गुणों की सूचना के लिए प्रतीक शैली का आश्रय लिया जाना आवश्यक था। पिछले एकांकियों की तुलना में इन एकांकियों का क्षेत्र अंतर्मुखी है। बाह्य स्थूल जगत् की समस्याओं को गौण रखकर, मानव के भावजगत् और मानसिक संघर्षो का ही विश्लेषण-उद्घाटन इन एकांकियों की मूल प्रवृत्ति है। विविध स्थितियों में पात्रों के मनोविश्लेषण द्वारा इस सत्य या यथार्थ तक पहुँचने की चेष्टा इन एकांकियों में है जो निरंतर बाह्य जगत् के स्वरुप पर आघात कर रहे हैं। इन सातों एकांकियों में समाज की ही पृष्ठभूमि में व्यक्तियों की विविध मानसिक दशाओं और प्रवृत्तियों का आलोचन है। स्थूल भौतिक समस्याओ और उसमें पिसनेवाले मानवों की ओर से नाटककार ने अपनी दृष्टि हटाकर अपना रुख व्यक्ति के सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रेम-वासना आदि की ओर किया है।

'चरवाहे' एकांकी में अपने मामा के यहाँ मामी की उपेक्षा, घृणा और लाछना मे पलकर बडी हुई युवती रत्नी की संवेदना मुखरित हुई है। यह एकांकी रत्नी नामक नारी-पात्र को केन्द्र मानकर उसके चरित्र की एक विशेष प्रवृत्ति को लेकर निर्मित हुई है। रत्नी एक ऐसी भाग्यहीन लडकी है, जो छुटपन में ही माँ की ममता से वंचित हो जाती है। पिता पुनर्विवाह कर लेता है। रत्नी पर मुसीबतों का पहाड टूट पडता है किन्तु ऐसी सौतेली मॉ की प्रताडना से बचाने के लिए उसके मामा धनीराम उसे अपने घर ले आता है। किन्तु यहॉ उसकी मामी भी उसके साथ सौतेली माँ की भाँति आचरण करती है। यद्यपि मामा उसे प्यार करता था लेकिन उसकी स्वयं की पत्नी क्रूर नारी स्वभाव के वशीभूत होकर उसे तरह-तरह से प्रताडित करती है। यहॉ मामा के घर भी उसके साथ वही सौतेला व्यवहार किया गया। शारीरिक रुप से वह अपने मामा के घर

में बंधन में है किन्तु उसकी आत्मा बाहर की स्वच्छंदता के लिए तरसती रहती है। चुँकि प्रकृति से वह स्वच्छंदमयी है, अतः उसके अंतर मे विद्रोह पनपता है। उसके घर के दूसरी ओर स्वच्छंद चरवाहों के मस्त तराने गूँजते हैं, खुले आकाश के नीचे विस्तृत प्रकृति की रंगस्थली पर वे विहार करते हैं। ये सभी कुछ उसे अपनी पारिवारिक घूटन, और परवशता के प्रति घृणा उत्पन्न करते हैं, उसको विद्रोह के लिए उकसाते हैं, प्रोत्साहित करते है। चरवाहों के उन्मुक्त गीतों को सुनकर उसके अन्तर्मन में ऐसे जीवन जीने की आकांक्षा प्रबल होती है। वह सोचती है काशः वह इस परवशता और पराधीनता से मुक्त गाती, नाचती, घूम सकती और इस प्रकार उसे एक प्रकाश दिखाई देता और वह उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होती है। प्यार और सहानुभूति की भूखी रत्नी मामी के अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करके गोविन्द के साथ भाग खडी होती है जिससे उसे प्रचुर प्यार मिला है और जिसके पौरुष के विश्वास तरु के नीचे वह सुखद छाया पा सकती है।

'अश्क' जी यहाँ प्रश्न उठाते हैं कि क्या रत्नी को ऐसे कदम उठाने के लिए उसकी परिस्थितियाँ नही उकसाती है। ऐसे में वह समाज से बगावत करने वाली पापिनी क्यों? क्या इसके लिए ऐसे समाज तथा उसमें विद्यमान लोग उत्तरदायी नहीं है? एक मुष्य स्वतंत्र ही पैदा होता है किन्तु जब उसे समाज के बंधनो द्वारा रुढ़िगत बंधनों में जकड़ दिया जाएगा, उसके क्रिया-कलापों पर पाबंदी लगा दी जाएगी तो निश्चय ही ऐसा इंसान ऐसे बंधनों को तोड़ फेंकने को उद्धत होगा। वह अपना विद्रोह अवश्य प्रकट करेगा। इसके लिए उसे जैसा हितकर होगा वैसा कदम उठाएगा। समाज ही जब अपनी मर्यादा भूला देगा तो वह मर्यादापूर्ण आचरण के लिए बाध्य क्योंकर होगा। रत्नी को जब कही से प्रेम नहीं मिलता, वह प्रेम उसे गोविन्द से मिलता है तो वह बावली हो जाती है। उसके मद्य में चूर उसे अच्छें-बूरे का भी होश नहीं रहता है और उसके साथ भाग जाने को उद्यत हो जाती है जबकि उसे ऐसे नाजुक वक्त में कभी ऐसे कदम नहीं उठाना चाहिये था। उसे अपने अधिकार और हक के लिए संघर्ष करना चाहिए था।

'**मैमुना**' में आठ-नौ साल की मैमूना के दुःखी जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है जिसे स्वयं अपनी माँ द्वारा उपेक्षा और घृणा मिलती रहती है। एकांकी में आमना नामक एक स्त्री है, जिसे साजिद की सम्पत्ति और अरशद के सौन्दर्य से प्रेम है। सम्पत्ति और सौन्दर्य के इस संघर्ष मे विजय होती है सम्पत्ति की और आमना साजिद की बन जाती है। साजिद को तो उसने केवल सम्पत्ति के लिए अपनाया था उससे वह प्यार नहीं करती है बल्कि घृणा करती है। साजिद के साथ रहते हुए उसे एक बेटी पैदा होती है, जिसका नाम है- मैमूना। इस बेटी से वह नफरत करती है। कुछ दिनों बाद साजिद की मृत्यु हो जाती है और आमना का रास्ता साफ हो जाता है। वह अरशद से विवाह कर लेती है। अब वह साजिद की सम्पत्ति और अरशद के

सौदर्य दोनों की स्वामिनी है। वह मैमूना का घृणित समझकर इसलिए उसकी उपेक्षा करती है क्योंकि इसमें वह अपने पहले पति के गुण देखती है। आमना एक ऐसी स्त्री है जो सदा दोहरा जीवन व्यतीत करती रही। अपनी वासना के वशीभूत हो साजिद और अरशद दोनों के प्रति विश्वासघात करती है। आमना का परिचय तीसरे व्यक्ति माजिद से भी होता है, जो अपनी तनख्वाह की आधी रकम आमना भाभी को तोहफों में लुटा देता था। अरशद के साथ रहते हुए आमना एक फरीद पुत्र को जन्म देती है। अरशद यद्यपि उसका प्रेमी था, किन्तु उससे भी माजिद के लिए विश्वासघात करने लगती है। अरशद इतना समझदार है कि वह जान लेता है कि आमना ने अपनी हस्ती अलग बना ली है। आमना, गरीब, बेपरवाह और आजाद अरशद को सोसायटी के अदब-कानून सिखाकर लिए फिरना चाहती है। अरशद समझ जाता है कि उसकी हैसियत एक पालतू कुत्ते के सिवा उसकी नजर में कुछ भी नहीं रह गई है। अरशद उसके रास्ते से हट जाता है। अरशद का उसके पथ को निष्कंटक छोडकर हट जाना और मैमूना को स्नेह प्रदान करना एक मनोवैज्ञानिक मोड का दिग्दर्शन कराता है।

'चुम्बक' एकांकी में भी एकांकीकार 'अश्क' जी ने सेक्स की ही समस्या को उठाया है। केन्द्र मे है गौतम और उसके इर्द-गिर्द घूमनेवाली नारियाँ हैं सरिता और गोपा। गोपा अवकाश प्राप्त सेशन जज की कन्या है जो विज्ञान की छात्रा है। गौतम आजकल से भावुक कवियों का प्रतीक है। सरित साहित्यिक अभिरुची रखने वाली है। सरिता का गौतम के साथ परिचय तब हुआ था, जब उसने अपनी पहली कविता को गौतम के पास संशोधनार्थ भेजा था। गौतम के साथ उसका परिचय पत्राचार के माध्यम से है। गौतम ने अपनी कविता के माध्यम से सरिता को मुग्ध कर प्रेम, प्रेम के लिए सिद्धांत पर चलता हुआ उसे चाहने लगता है। गोपा के प्रति भी वह वैसी ही भावना रखता है। सरिता एक बरसाती नदी की तरह स्वच्छंद उन्मुक्त और रोमांटिक युवती है। गोपा गहन गंभीर स्वभाव वाली स्त्री थी। साथ ही गोपा संयमित स्वभाव और बौद्धिक संतुलनवाली थी। गोपा को सरिता के विषय में जानकर यह लगता है कि गौतम कवि तो है ही, शिकारी भी है। गौतम सरिता के विषय में सफाई देता हुआ कहता है, 'अरे, वह तो एक पागल रुमानी लडकी है, सपनों की दुनिया में बसने वाली और मैंने उसके रोमांस को तोडना उचित नहीं समझा।"[83] सरिता गौतम को जानती समझती नहीं। इससे वह यह नहीं सोच पाएगी कि शिकारी गौतम के हाथ उसकी क्या दुर्गति हो सकती है। लेकिन गोपा अब जान गयी है कि काव्य-संसार का दुःखी, उदास, व्यथित-हृदय कवि गौतम यथार्थ जगत् का वैसा हंसमुख शिकारी है, जिसे अपने शिकार को फॅसाने में रस मिलता है , और जो अपने शिकार का तडफडाना देखकर जरा भी नही पसीजता। गौतम छिछला है, कवि होते हुए भी उसमें वह नैतिकता या स्वाभिमान नही जो अपेक्षित था परंतु वह चुम्बक अवश्य है। वह गोपा और सरिता दोनों को

आकर्षित करता है लेकिन लोह चूर्ण का एक कण होते हुए भी छिटककर सह अस्तित्व की रक्षा करनेवाली एक गोपा ही है। चुम्बक का जादू सरिता के लिए बना रह जाता है। लेकिन गोपा के लिए तो वह टूट गया है। गोपा टूटनेवाली युवती नहीं है, परन्तु उसके प्रति हुए अत्याचार उसे पुरुष जाति के प्रति घृणा और उदासी की भावना से भर देते हैं। गोपा की शक्ति, संयम, स्वाभिमान और सहनशक्ति तथा ट्रेजेडी उसे बहुत ऊँचा उठाती है। एक ओर लेखक ने नारी के असीम शक्ति रुपणी का चित्र गोपा के रुप मे प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर नारी के कोमल-भावुक रुप सरिता के रुप में प्रस्तुत किया है।

'चिलमन' एक भावना प्रधान सांकेतिक एकांकी है। इसमें कवि हरि की रुग्णा पत्नी किरण की वेदना और जीवनाकांक्षा को व्यक्त किया गया है। एकांकी नाटक का नायक हरि एक भावुक कवि है। किरण रीढ की हड्डी से बहने वाले नासूर से पीडित हरि की पत्नी है जो अपनी कष्ट-साध्य बीमारी में रस्सियों में जकड़ी, हिलने-डुलने में असमर्थ, विवशता और करुणा की मूर्ति बन गई है। उस भयंकर बीमारी के मध्य वह अपना अंत देखती है। उस भयावह मृत्यु की ओर निरंतर बढते हुए वह स्वस्थ प्रकाश के लिए छटपटाती है - वह मृत्यु नहीं जीवन चाहती है। अंधेरे कमरे की चहारदीवारी से मुक्त हो बाहर के प्रकाश, रंग और महक से अपने सूखे और टूटे जीवन को भर लेना चाहती है। वह जानती है उसका रोग भयंकर है। मृत्यु की भयावह छाया उसके चारों ओर निरंतर घूम रही हैं। और उन क्षणों में जितने अपूरित अरमान अतृप्त आकांक्षाएँ उठती हैं वे सब उसके हृदय में भीषण आन्दोलन मचाये हुए हैं। पर शारीरीक रुप से विवश उसकी चेतना स्वप्निल दृश्यों में जीवन का आभास पाने की चेष्टा करती है। हरि के घर-वाले किरण की हालत देखकर उसके तरफ से निराश हो चुके थे लेकिन हरि किरण के सिरहाने परेशान-सा बैठा रहता है। किरण प्रतिक्षण कंकाल होती जा रही है और हरि इंजेक्शन दे-देकर,प्लास्टर चढा-चढ़ाकर उसे स्वस्थ करने की कोशिश करता जाता है।

हरि की मनोवृत्ति का उद्घाटन नाटककार ने बडी कुशलता से किया है वह अपनी सूक्ष्म-पर्यवेक्षण शक्ति का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। मनोहर की ईर्ष्या ही उस सूक्ष्म सत्य का उद्घाटन करती है। हरि के मित्र मनोहर को ऐसा लगता है कि किरण की पीड़ा से हरी अपनी कविताओं के लिए प्रेरणा हासिल करता है। हरि अपनी पत्नी की सेवा करता है, परन्तु अपनी कविताओं के लिए अनुभूतियो के संग्रह की प्रेरणा से- इसीलिए वह किरण को इस विवशता में देखने को तैयार है और किरण की करुण और मार्मिक दशा से प्रेरणा लेकर वह शशि नामक दूसरी स्त्री को आकर्षित करता है। इस प्रकार हरि एक साथ दो स्त्रियों से खेल रहा है। यह सत्य है कि मनोहर भी शशि से प्रेम करता है लेकिन ईर्ष्या-भाव मे उसने सत्य के एक

सुक्ष्म धागे को पकड लिया। एक कवि का इस प्रकार अपनी संवेदनाओं को एकत्रित करना और विवशता की प्रेरणा से दूसरे को आकर्षित करने का उपक्रम करना कितना जघन्य और हृदयद्रावक है। किरण अपनी अवचेतन स्थिति में अनुभव करती है कि शशि चिलमन बनकर उसका प्रकाश ले रही है, वह उसकी रोशनी ले लेने के लिए गहरा नीला टाट रँग रही है।[84] इस बोझ को उसका कंकाल शरीर सह नहीं पाता है और किरण मर जाती है। किरण की मृत्यु हरि की आँख पर पड़ी चिलमन (पर्दे) को उतार फेंकती है। हरि निश्चय करता है कि उसे शशि के चिलमन की जरुरत नही। शशि उसकी दुनिया में कभी नहीं आ सकती।

'चिलमन' दो प्रतीक रुप में यहाँ प्रस्तुत हुई है। एक ओर तो भौतिक वस्तु के रुप में किरण के सामने वाली खिडकी पर पडी चिक है जो उसे सत्यमय प्रकाश का दर्शन नहीं करने देती और दूसरी ओर वह शशि के रुप मे - हरि के वासनात्मक आकर्षण के कारण उसकी आँख पर पडे पर्दे की भाँति पति-पत्नि के मध्य खडी है। इस तरह 'चिलमन' उस सत् और असत् के मध्य पड़ी वह प्रतीक भावना है जिसका आरोपण नाटककार ने चरित्रों की सूक्ष्मताओं को अंकित करने के लिए किया है। एक एकांकी एक ही दृश्य का है।

एकांकीकार 'अश्क' जी ने हरि नामक कवि के माध्यम से एक गंभीर सत्य और समस्या का उद्घाटन अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति के आधार पर किया है कि एक कवि या साहित्यकार ही इतना निर्मम हो जाएगा कि मरणासन्न पडे इंसान की मार्मिक दशा में रसपान करता हुआ अपने लिए साहित्यिक सामग्री एकत्रित करने में ही संलग्न रहे तो समाज के अन्य लोगों से किस प्रकार दया-भावना की आशा की जा सकती है। हरि जैसे कवि का हृदय इतना चंचल, अस्थिर नहीं होना चाहिए कि अपनी पत्नी के होते हुए भी वह दूसरी स्त्री के प्रति आकर्षित हो जाए और फिर मरणोप्रान्त शशि के प्रति विकर्षण भी दिखाई देता है। इससे तो ऐसा ज्ञात होता है कि हरि का हृदय दोलायमान है। 'अश्क' जी को खेद है कि कवि हरि अपने उत्तरदायित्व के प्रति पूर्ण सजग नहीं है। व्यक्ति के स्वार्थ के धरातल से ऊपर उठकर सोचना चाहिए। स्वार्थलिप्त होकर आचरण करने से उसके पास जो निजी पूँजी होगी उसे भी गँवा बैठेगा।

'चमत्कार' एक प्रहसन है जिसमे धार्मिक चमत्कारों के कारण समाज में परिव्याप्त अंधविश्वासों का पर्दाफाश करके यह प्रतिपादित किया है कि धर्म के नाम पर जान देने को तत्पर रहने के बावजूद भी धर्म में आम जनता की दिलचश्पी ऊपरी तौर पर ही है। एकांकी मे हास्यपूर्ण पृष्ठभूमि में हिन्दू-मुसलमान, सिख, ईसाई आदि पात्रों को लेकर धार्मिक अंधविश्वास को व्यक्त किया गया है। प्रस्तुत एकांकी आस्था और विश्वास की महत्ता को स्थापित करता है तथा धार्मिक रुढि-ग्रस्तता, छिछले ज्ञान और धर्मान्धता से

वशीभूत अधकच्चरे धर्म के हिमायती प्रतिनिधियों का आपस में व्यर्थ में झगड़ा दर्शाता है। एक चलते फिरते चालबाज पटरी के हकीम के माध्यम से व्यंग्य किया गया है और अपना उल्लू सीधा करनेवाला तथा टिकिया बॉटने की व्यावसायिक चतुराई के प्रदर्शन को एकांकी मे हास्य-व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। 'चमत्कार' एकांकी एक ओर तो सामान्य लोगों की अज्ञानपूरित छिछली धार्मिकता पर तीखा व्यंग्य है तो दूसरी ओर गढवाली दवाइयाँ बेचनेवाले की धूर्तता का मोहक चमत्कार। यह प्रहसन है किन्तु 'अश्क'जी ने इसमें हास्य-व्यंग्य के माध्यम से सत्य और यथार्थता को उपस्थित किया है।

एकांकी के माध्यम से 'अश्क'जी इस सत्य को उद्‌घाटित करते हैं कि पूरा समाज धर्मान्धता में इस कदर घिर गया है कि उसे इससे बाहर आना नितान्त आवश्यक है। धर्मान्धता की दीवारों को तोड फेंकने के लिए आस्था-विश्वास को जागृत करना निःसंदेह आज प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। धर्म के आधार पर चलकर ही समाज की उन्नति संभव है। केवल हिन्दू-मुसलमान, सिख, ईसाई आदि दायरे में बँधे रहना ही धार्मिकता नही। धार्मिक रुढियों को तोडना होगा। सामाजिक कल्याण के लिए यह आवश्यक भी है। एकांकी में 'अश्क'जी ने बडी कुशलता से व्यंग्य-हास्य के माध्यम से सत्य उद्‌घाटित किया है। वे अपने उद्देश्य में तभी पूर्णतः सफल होंगे जब हम उनकी प्रस्तुत एकांकी का तात्पर्य समझेंगे। आज इतनी शिक्षा के बावजूद लोग प्रति पग अंधविश्वासी हो रहे हैं। ग्रह-दशा आदि में अंध-विश्वास करते हैं। विवेक और तर्क बुद्धि से परख कर ही ऐसी बातों को स्वीकारनी चाहिए।

'खिड़की' एकांकी वैयक्तिक प्रेम की दृढता का प्रतिपादन करती है, जिसमें युवती नयना की हार्दिक संवेदना को चित्रित किया गया है, जो अपने एकनिष्ठ प्रेम के कारण दूर चले गए प्रेमी में निरंतर अनुरक्त बनी रहती है। वह सहज प्रकृति के एक नवयुवक को अपने प्रति पूर्ण अनुरक्त पाकर भी उसे किसी तरह स्वीकार नहीं करती। प्रेम की समस्या को लेकर लेखक ने एकांकी का प्रणयन किया है। प्रस्तुत एकांकी में नयना बदनसिंह के वचन का सहारा लिए बरसों उसकी प्रतिक्षा करती रही है। बसंत के संयोगमय दिन ही एक वचन देकर बदनसिंह चला गया था। कुंदनसिंह दूसरा पुरुष पात्र है जिसे नयना तो भाई के रुप में देखती है किन्तु कुंदन उससे सहानुभूति रखता है और उससे प्रेम भी करता है। सभी चरित्र पवित्र और निष्कलंक हैं। नयना की प्रतिक्षा सफल होती है, बरसों बाद उसी दिन बदनसिंह लौटकर आता है जिस दिन वचन दिया था। तब उदार, सहिष्णु और सरल कुंदनसिंह का प्रेम असफल हो जाता है। कुंदन के चरित्र का विकास जिस तरह से हुआ है वह अंत में उसी पर सारी सहानुभूति बरसा देने को बाध्य करता है। नयना की व्यथा व्यक्ति की होने के कारण बहुत अधिक व्यापक नहीं हो पाती, पर कुंदनसिंह का अवसादमय त्याग मन-प्राण

को भर देता है।

'खिडकी' का प्रतीक बहुत ही व्यंजनात्मक है जो एक ओर प्रतीक्षा का संकेत देता है तो दूसरी ओर हृदय की रिक्तता का। इस प्रतीक में जिस भावना का आरोपण हुआ है वह प्रारंभ से नयना के साथ चलकर अंत में कुंदनसिंह के पक्ष में संचरण कर जाती है। और इसीलिए कुंदनसिंह की ट्रेजेडी नयना की चिर-प्रतीक्षित से अधिक उभर आती है। सांकेतिक और प्रत्यक्ष दोनों ही प्रभावों की रोशनी में यह एकांकी दुखान्त की ही है।

(iii) 'पक्का गाना' इनका तीसरा एकांकी संग्रह है। यह एकांकी संग्रह उनके पूर्ववर्ती दोनों संग्रहों से नवीन और पृथक है'। 'अश्क'जी का चिन्तन, मनन और उसके द्वारा प्राप्त सत्य की अभिव्यक्ति इस संग्रह के नाटकों में है। नवीनता का आवेश, आधुनिक के प्रति लगाव और प्राचीनता का संदेश जिस संतुलित रुप में व्यंजित हुआ है, वह आज की समस्याओं की पर्तो को उधेडता व्यर्थ की बातों से कतराता सीधा मर्म तक पहुँचता है। इनमें विद्रोह की जगह सामंजस्य और संतुलन का स्वर मुखर है। युग की यथार्थता को लेते हुए उसकी समस्याओं को पूरी गहराई से पकड़ते हुए निर्माण के अंश उभरने लगते हैं, ध्वंस का बहिष्कार होता दिखाई देता है। 'अश्क'जी ने केवल कुरुपता का उद्घाटन नहीं किया, वरन् यथार्थ द्वारा उसके रुप को सजाया भी है। अस्थायित्व को मथकर और भेदकर यथार्थ के सुंदर रुप का उद्घाटन और पोषण इन एकांकियों में है। जीवन को जिस तरह लेखक ने देखा है, उससे रुप स्थिर कर चिंतन द्वारा जो सत्य उनके हाथ लगा है, वह इनमें अनायास ही व्यंजित हो उठा है। अन्तर्विरोधी धाराओं से जीवन की संपूर्णता है- यही संपूर्णता इन नाटकों के चरित्रों में भी है और घटनाओं की वास्तविकता में भी। सत् और असत् के इसी संघर्ष ने वाणी पाकर इन एकांकियों की रचना की है। यथातथ्यवादी और प्रतीकवादी शैली से हटकर ये यथार्थवादी भूमि पर हैं, जिनमें नवीनता के प्रति आशा और उचित प्राचीनता के प्रति आदर की भावना है। आधुनिकता के मोह में जो कुसंस्कार हो रहा है, गलत कदम उठाया जा रहा है उसकी ओर संकेत करते हुए, एक स्वस्थ और पूर्ण भविष्य को गढने की कामना इनमें नीहित है।

'तूफान से पहले' क्रम में सबसे पहले आने वाली एकांकी है। इसमें घीसू नामक एक ऐसे हिन्दू को उपस्थित किया गया है, जिसका पालन-पोषण न्याजमियाँ नामक उस व्यक्ति ने किया है, जो एक ऐसे दरगाह का सेवक है, जहाँ हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी वर्गो के लोग दुआ माँगने की भावना से आते थे, उसने एक गैर-मुसलमान बच्चे घीसू को पाल पोस कर बडा किया। घीसू दर्जी का काम करता है और

झगड़े-लडाई से एकदम तटस्थ होकर मेहनत मजदूरी करके गुजर-बसर करता है। अपने आचार-व्यवहार से वह किसी को कष्ट नहीं होने देना चाहता। आजादी का झंडा वह अपने घर पर इसलिए नहीं फहराता कि उससे मुसलमानों के हृदय में प्रतिक्रिया होती और वे काले झंडे फहराने लगते। उसी के मुहल्ले में कुछ भैये रहते हैं, जिनको कहीं से खबर मिली है कि उनके कुछ आदमी मुसलमानों के हाथों मारे गए हैं और वे उनकी हत्या का बदला लेना चाहते हैं। न्याजमियॉ का बेटा है हयातू, जो काले झंडे फहराता चलता है। वह कहीं से एक छुरा खरीदकर ले आया है और इन कारणों से असंहिष्णुं भैयों की नजर पर चढ गया है। भैये न्याजमियॉ के घर पर हमला करते हैं और हयातू का वध करते हैं। वे अब न्याजमियाँ की ओर बढते हैं लेकिन घीसू न्याजमियॉ की रक्षा के लिए चला आता है। वह असहिष्णु हिन्दू सांप्रदायिकता की आग में झुलस जाता है, लेकिन प्राण रहते न्याजमियॉ का वध नहीं होने देता है।

घीसू इस प्रकार साम्प्रदायिकता की प्रज्वलित अग्नि में अपना होम कर गणेश शंकर विद्यार्थी का आदर्श मूर्त करता है। मरते समय वह अपनी पत्नी को हिदायत दे जाता है कि उसकी आत्मा के संतोष के लिए वह न्याजमियाँ की बच्ची बख्शू की रक्षा अपने बच्चों की तरह करे। घीसू के महान् बलिदान और न्याज की अमानुषिक हत्या के बाद भैयों को खबर मिलती है कि जिनकी हत्या के बदल में उन्होंने अभी हत्याएँ की हैं, वे सब-के-सब जीवित हैं। अब भैये एक प्रकार से सकते में आ जाते हैं। भैयों का नेता गिरधारी अपने मन को यह कहकर झूठा संतोष देता है कि 'जो हुआ अच्छा हुआ, मनदपुरे में न सही भिंडी बाजार और रहमान गली में बीसियों भैये कत्ल हुए।'[85]

'बहनें' शीर्षक एकांकी में प्रेम और विवाह की समस्या को उपस्थित किया गया है। बहिनें आधुनिकाओं की ट्रेजेडी का एक करुण दृश्य है। पति के चुनाव संबंधी नारी की धारणाओं और आकर्षणों का विशद् खाका खींचता हुआ यह एकांकी अंत में उनके अति आधुनिकपन पर एक तीखा नश्तर लगाकर समाप्त हो जाता है। सुहास, रमा, निशा, कांति उन चार प्रवृत्तियों की द्योतक है, जो आज की नारी जीवन में पनप रही हैं। इन आधुनिकाओ के माध्यम से एकांकी की समस्या को मुखर बनाया गया है। सुहास और कांति विवाहिता है। रमा और निशा अविवाहिता हैं और दोनों सगी बहनें हैं। सुहास और कांति इनकी सहेलियॉ हैं। ये चारों दिल्ली में रहती हैं। रमा और निशा को दिल्ली में अपने योग्य मन-पसंद वर नहीं मिलता है और उनकी दिल्ली में काफी अपकीर्ति फैली हुई थी। अतः रमा, निशा को लेकर दिल्ली से इलाहाबाद आ गई। विवाह के लिए भी उन्होंने वहॉ से हटने में ही अपनी भलाई समझी। उनकी सहेलियॉ सुहास और कॉंति का वैवाहिक जीवन एक प्रकार से असफल था। सुहास अपने को ऐसी आधुनिका मानती है जिसकी

किस्मत सुहागरात को ही फूट जाती है। उसके ससुराल में पुराचीन संस्कारों को माना जाता था और दादी का शासन चलता था। सुहास के वश में यह नही था कि आसानी से वह इस प्राचीन परंपराओं में घुलमिल जाए और उसे सुखपूर्वक अंगीकार कर ले। अतः ससुराल में उस धन-सम्पत्ति की तरह थी, जिसे तिजोरी में संचित करके रख दिया गया हो।

कांति का विवाह सलूजा साहब से हुआ था जिन्हें क्लब जाने का, टेनिस खेलने का कोई शौक नही था, लेकिन कांति इन सब की आदी थी। अतः उसका भी सुखपूर्वक निर्वाह करना कठिन था। ऐसी आधुनिकाएँ विवाह को समाज के कोप से बचाने का एक अच्छा साधन मात्र समझती हैं। पति की हैसियत को कोई दर्जा नहीं देती है। केवल ढाल और चेकबुक के तौर पर उसका उपयोग करना ही उनका ध्येय होता है। विवाहं-बंधन की पवित्रता-धार्मिकता से अनजान होने के कारण ऐसी आधुनिकाओं को विवाह-संबंधों के असफल होने पर भी कोई रंज लेशमात्र भी नहीं होता है। जिन स्त्री जाति पर पूरे समाज का कल्याण निर्भर करता है यदि आधुनिक स्त्रियाँ ऐसी सोच-विचार रखेगी तो यह एक बड़ी समस्या होगी।

रमा और निशा भी ऐसे बंधन में बंधना चाहती है जो समाज के कोप से उन्हें बचा सके। ऐसे पति को पाना चाहती है जो ढाल बनकर उनकी रक्षा कर सके। रमा कहती भी है कि अब वह उन्मुक्त जीवन से ऊब चुकी है। वह आजतक ऐसे पुरुषों से संबंध रखती रही जो उसकी नजर में केवल खिलौने मात्र थे लेकिन अब वह इन खिलौनों से भी ऊब चुकी है। अब वह चाहती है कि अब वह किसी का खिलौना बन जाए। इसलिए दोनों बहिने विवाह की इच्छा से इलाहाबाद आ जाती है। दोनों बहनों को हरीश और शंशिधर जैसे ढाल बनने के लिए मिल जाते हैं। रमा हरीश की योग्यता और गुणों का बखान करते हुए कहती है - "हरीश धारा प्रवाह अंग्रेजी बोलता है, प्रथम श्रेणी में एम.ए. पास है, उसका रुप रंग भी अंग्रेजों जैसा ही है और सबसे बडी बात यह है कि वह पति की अपेक्षा पत्नी के अधिकारों पर अधिक जोर देता है। उसका विचार है कि ब्याह के बाद पत्नी को अपनी सत्ता अक्षुण्ण रखनी चाहिए। हरीश विश्वास करता है कि स्त्री और पुरुष सागर की दो लहरों के समान हैं - चाहे वे साथ-साथ मिलकर चले और चाहे विलग होकर अपनी धुन में बह जायें।"[86] "इनका सपना है कि गृहस्थी ऐसी होनी चाहिये, जिसमें न अनबन हो, न गुस्सा हो, न झिडकी हो और न गाली हो।"[87] 'उनके जीवनक्रम में पति, दखल न दें, बस मैंटलपीस की शोभा बढाए।' लेकिन, उन्हें हरीश और शशिधर नही मिलते हैं, क्योंकि उन्हें रति और रजनी पा लेती है। रमा और निशा को इससे बहुत दुःख होता है। केवल इसीलिए कि इलाहाबाद आने पर भी उन्हें वे नहीं मिले।

'पापी' शीर्षक एकांकी मे हिन्दू नारी की महानता और संबंधों की कटुता को 'अश्क'जी ने चित्रित किया है। प्रस्तुत एकांकी की कथा इस प्रकार है-शांतिलाल की पत्नी छाया यक्ष्मा से पीडित होकर निर्जीव सी खाट पर पड़ी है। शांतिलाल को अपनी माँ पर, विश्वास नहीं था कि वह छाया की उचित सेवा करेगी। उसे ऐसा लगता है कि मॉ के बुरे व्यवहार, निर्मम बर्ताव से ही ऐसी हालत हो गई है। अपनी मॉ को ही इसके लिए जिम्मेदार मानता है। वह अपनी पत्नी छाया की छोटी बहन रेखा को पत्नी की तिमारदारी के लिए बुला लेता है। लेकिन शांतिलाल और रेखा धीरे-धीरे एक-दूसरे के निकट आने लगते हैं। छाया को अपने गृहस्थ जीवन पर आशंका के बादल मॅडाराते हुए दिखाई देने लगता है। एक दिन वह अपनी बहन की बेशर्मी को अपनी आँखों से देख वह अचेत हो जाती है। अपनी पत्नी की ऐसी बुरी हालत देखकर वह अपनी माँ पर बरस पडता है कि उसके दुर्व्यवहार से ही छाया की ऐसी हालत हो गई है लेकिन मॉ से सुना नही जाता है। अपने ऊपर लगाए लाँछन के प्रत्युत्तर में हकीकत बयान कर देती है और कहती है कि शांतिलाल तुम्हीं इसके लिए जिम्मेदार हो। जिस पत्नी के जीते जी सौत लाकर बैठा दिया गया हो ुसकी हालत तो बुरी होगी।

अपनी बहन की हालत देखकर रेखा का भी सुषुप्त विवेक जाग उठता है। उसे अपनी बहन के प्रति किए गए आचरण पर पछतावा होता है। वह ठान लेती है कि उसे स्वयं पर नियंत्रण रखना चाहिए। शांतिलाल उससे कहता है कि वह रेखा के बिना जीवित नही बचेगा लेकिन रेखा की आँखे खूल चुकी थीं। वह देखती है कि एक कंकाल पर बैठकर दूसरे से जो प्रेम कर सकता है उसके लिए उसके चले जाने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। उसे ऐसा लगता है कि पुरुष पत्थर हृदय है। उसका कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। उसे यहाँ से चले जाना चाहिए ताकि शांतिलाल अपने कर्तव्य को समझ सके। इधर छाया अपनी अंतिम सांसे अपनी सास की ममतामयी गोद में ले रही है। शांतिलाल और रेखा का सब पर भेद उद्घाटित होने पर उसे घर में रहने की हिम्मत भी नहीं बची थी। अंतिम क्षणों में भी छाया पति शांतिलाल को ही याद करती रहती है। इतना होने पर भी वह जन्म-जन्मांतर तक उसी की पत्नी बनना चाहती है। वह ऐसा मानती है कि उसकी सेवा का प्रतिदान भी नहीं दे पायी और सात जन्मों तक नहीं चुका पाएगी। वह अंतिम क्षणों मे माँ से कहती है- "वे आयें तो उनके चरणों की धूल मेरे माथे पर लगा देना।" जब शांतिलाल वापिस घर पर आता है, उसे बहुत ही ग्लानि होती है। वह अनुभव करता है कि छाया देवी थी और रेखा भी देवी है; पापी वह स्वयं है जिसने इन दोनों देवियों के प्रति अक्षम्य अपराध किया।[88]

'सूखी डाली' एकांकी के माध्यम से 'अश्क'जी ने संयुक्त परिवार की समस्या को विचारणीय विषय बनाया है। दादा मूलराज अपने कुटुम्ब को एक युनिट बनाए उस महान् वट की भॉति अटल खडे है,

जिसकी लम्बी-लम्बी डालियाँ उनके आँगन में एक बडे छाते की भाँति धरती को आच्छादित किए हुए अगणित घोंसलो को अपने पत्तों में छिपाए वर्षो से तूफान और ऑधियों का सामना किए जा रही है। ग्रैजुएट बेला, जो कभी रिश्तेदारों के बीच नहीं रही दादा मूलराज के छोटे पोते नायब तहसीलदार परेश की बहू होकर उस परिवार में रहने आयी है। छोटी बहू बेला के आने से कुटुम्ब के तालाब मे इस प्रकार लहरे सी उठने लगी हैं जैसे स्थिर पानी में बडी-सी ईट गिरने से पैदा होती है। बेला ग्रेजुएट है और इससे गृहस्थी का मतलब सीमित परिवार समझती है न कि सारा कुनबा। इधर दादा मूलराज के घर मे सारा कुनबा एक विशाल वट वृक्ष की विभिन्न डालियों के जैसा रहता है। बेला के स्वातन्त्र्य-भाव को, उसके व्यक्तिवाद को इस परिवार में ठेस पहुँचती है। छोटी होने की वजह से जब सभी उसे आदेश देते हैं तो उसका अहम् भाव और भी कुंठित हो जाता है। इसपर वह परेश से अलग घर बसाने के लिए कहती है। लेकिन दादा जी के रहते यह सब कैसे हो सकता है। उनके शब्दों में - "मैं जब अपने परिवार का ध्यान रखता हूँ तो मेरे सामने वट का महान् पेड घुम जाता है। शाखाओं, पत्तों, फलों, फूल से भरा-पूरा और फिर मेरी ऑखों के सामने इस महान वृक्ष की डालियाँ टूटने लगती हैं और वह केवल ठूठा रह जाता है और मैं सिहर उठता हूँ।"[89]

दादाजी समस्या को सुलझाने के लिए सारे परिवार को इकट्ठा करके समझाने का प्रयास करते हैं और सबको छोटी बहू के प्रति अपने व्यवहार बदलने की हिदायत देते हुए कहते हैं - "बेटा यह कुटुम्ब एक महान वृक्ष है। हम सब इसकी डालियॉ हैं। डालियों से पेड है और डालियाँ छोटी हो चाहें बड़ी, सब उसकी छाया को बढ़ाती हैं। मैं नहीं चाहता, कोई डाली इससे टूटकर पृथक हो जाय। ... यदि मैंने सुन लिया - किसी ने छोटी बहु का निरादर किया है, उसकी हँसी उडाई है या उसका समय नष्ट किया है तो इस घर से मेरा नाता सदा के लिए टूट जायेगा। ...."[90] बेला परिवार की बदली हुई हालत पर हैरान है। कैसे हैं ये लोग जो पल में तोला पल में माशा हो जाते हैं।[91] वह ऊबकर परेश से कहती है- 'मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं परायों में आ गयी हूँ। कोई मुझे नहीं समझता किसी को मैं नहीं समझती। सब मुझसे ऐसा डरती हैं जैसे मुर्गी के बच्चे बाज से। कोई मुझे काम को हाथ लगाने नहीं देता। सब मेरा इस प्रकार आदर करती हैं मानो मैं ही सबसे बडी हूँ।[92] लेकिन बेला यह आदर, सत्कार, सम्मान नहीं चाहती। वह चाहती है सब के साथ मिलकर काम करना लेकिन दादाजी ने उसे काम करने की सुविधा नही दी है। बेला दादाजी से शिकायत करते हुए कहती है - "दादाजी, आप पेड़ से किसी डाली का टूटकर अलग होना पसंद नही करते, पर क्या आप यह चाहेंगे कि पेड से लगी-लगी वह डाल सूखकर मुरझा जाए...."[93]

'वेश्या' नामक एकांकी में 'अश्क' ने वासना लिप्त नारी की प्रतिक्रिया का चित्र उपस्थित किया है।

प्रस्तुत एकांकी में जवाहर नामक एक वेश्या है जिसकी मोती नाम की एक बेटी है। जवाहर अपने घर आनेवाले निरंजन नामक एक युवक को बेहद चाहती है किन्तु निरंजन उसकी बेटी मोती से प्रेम करता है। निरंजन का अपने प्रति विपरीत रुख को देखकर वह व्याकुल हो जाती है और अब वह निरंजन से बदला लेने ठान लेती है। अपनी बेटी से अपने प्रेम का मूल्य निरंजन से मॉगने के लिए कहती है और उसकी सारी सम्पत्ति को हथिया लेने के लिए अपनी बेटी को बाध्य करती है ताकि निरंजन से उसका बदला लिया जा सके। यद्यपि मोती यह समझती है कि माँ अपना बदला निरंजन से लेने के लिए यह सभी हथकंडे अपना रही है लेकिन विवश होकर चुँकि यह माँ का आदेश था अतः वह उसका कहा मानकर वैसा ही करती है जैसा कि उसकी मॉ ने निर्देशित किया था। निरंजन मोती से प्रेम करता था इसलिए वह अपनी सारी सम्पत्ति मोती के नाम लिख देता है। जवाहर को इसी की प्रतिक्षा थी। वह खुश थी कि वह जीत गई और विजय दर्प में सजी-सॅवरी निरंजन के आने की प्रतीक्षा करती है। दूसरी ओर उसकी बेटी मोती सादी सी साड़ी में निरंजन के आने की प्रतिक्षा कर रही है। वह निरंजन की गरीबी में भी उसका साथ देने को तैयार बैठी है। मोती ने जब निरंजन से उसकी सम्पत्ति की माँग की थी तो निरंजन हैरान होकर कहता है "मुझे हँसी आती है, तुम बिंल्कुल ऐसी बातें करती हो, जैसी दूसरी वेश्याएॅ। तुम प्रेम को रुपए से तौलती हो।"[94] उस समय मोती इसके प्रत्युत्तर मे कुछ भी नहीं कह पायी थी कि उसने जो कुछ भी किया वह उसकी माँ के निर्देशानुसार किया है। वह अन्य वेश्याओं से अलग है। यह आज वह बता देना चाहती है। वह उसकी गरीबी में भी उसके साथ है। उसका प्रेम सच्चा है किसी भी हाल में उस पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। चाहे गरीबी हो या चाहे अमीरी। जवाहर यह बाजी भी हार जाती है।

वैसे जवाहर भी निरंजन के धन की भूखी नहीं है। वह प्यार चाहती है। अपनी लडकी के प्रेमी निरंजन का प्रेम चाहती है। वह उसे ठुकरा देता है, तो क्रुद्ध होकर उसे दीन-हीन बना देना चाहती है। रुप और सौन्दर्य के अपमान से उसकी भावनाएँ उद्वेलित हैं। वह मोती से अपनी आंतरिक पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहती है - "मोती मैं दौलत नहीं चाहती थी, मैं भी मुहब्बत चाहती थी, लेकिन मुहब्बत मेरे भाग्य में कहाँ है?"[95] जवाहर जानती है कि उसकी अवहेलना क्यों की जाती है। अपने परिताप को व्यक्त करते हुए कहती है - 'मुरझाए फूल को अब कौन गले लगाएगा। अब इस विगत यौवना के प्रति किसका आकर्षण हो सकता है?"[96] जवाहर समझती है कि यही सीमा उसकी विफलता का कारण है।

'नया पुराना' एकांकी में सत्य और असत्य का संघर्ष है। इसका नायक देवचन्द है जो आदर्शवादी पुरुष है। लिली की माँ ने 60,000 के गहने देवचन्द के पास रखे हैं। चुँकि देवचन्द एक ईमानदार प्रतिष्ठाप्रेमी

है, अतः वह गहनों को उसकी अमानत समझकर बड़ी सावधानी से उसे संभालकर रखता है। रविदत्त दूसरा पात्र है जो असत्य का पक्षपाती और धूर्त किस्म का व्यक्ति है वह देवचन्द को जेवर उड़ा जाने की सलाह देता है। एकांकी का नायक देवचन्द एक यथार्थ नायक का प्रतिरुप है। सद् का पक्षपाती होते हुए भी एक मनुष्य की कमजोरियाँ उसमें हैं - वह देवत्व के भावों से मण्डित है परंतु देवता न होकर मानव ही है। क्योंकि रविदत्त की धूर्तता का विरोध करते हुए भी वह अपने विश्वास को डगमगाते देखता है तो उसके मन का चोर सिर उठाने लगता है। तो वह गहने वापिस कर देता है। अन्ततः देवचन्द का देवत्व विजयी होता है। इस एकांकी की मूल समस्या ईमानदारी और बेईमानी की है। एकांकी की टेकनीक में नवीनता सफल और सार्थक है। आज आदर्शवाद के प्रति जो तिरस्कार की भावना है तथा जिस यथातथ्यवाद को यथार्थ का नाम दिया जा रहा है, वह भ्रममूलक धारणा है। साठ हजार का जेवर लौटानेवाले सद्पुरुष अभी हैं। प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से मानवीयता को प्रतिष्ठित किया है और भ्रम मिटाने के लिए व्यंग्य के माध्यम से अपने मत का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है।

'कामदा' एकांकी में भी 'अश्क'जी ने आधुनिकाओं की ही समस्या को उठाया है। प्रस्तुत एकांकी में दीवान साहब कापी सम्पन्न हैं और उनकी एक पुत्री है। कामदा जो विवाह योग्य है। कामदा के लिए उसके पिता एक पढे-लिखे, योग्य सच्चरित्र युवक मुकुन्द बिहारी लाल को पसंद कर लेते हैं लेकिन कामदा को यह संबंध बिल्कुल पसंद नहीं आता क्योंकि मुकुन्द एक गरीब प्राध्यापक है जिसे कॉलेज से केवल डेढ सौ रुपया ही वेतन के रुप में मिलता है। कामदा के लिए इस धन-राशि में गुजर-बसर मुश्किल है क्योंकि वह धन-ऐश्वर्य के बीच पली-बढ़ी थी, अतः इतनी सी धन-राशि तो उसकी केवल दो दावतों में ही समाप्त हो जाएगी। दीवान साहब अपनी पुत्री कामदा को समझाते हुए कहते हैं कि- "सुघड गृहिणी हो तो धन का अभाव नही खटकता और वैवाहिक सुख केवल धन-दौलत पर अवलम्बित नहीं है।"[97] लेकिन कामदा सोचती है कि वह इतने कम वेतन वाले व्यक्ति के साथ वह सुखी नहीं रह पाएगी। कामदा एक अन्य कांत नामक एक धनी व्यक्ति से विवाह करना चाहती है, क्योकि वह कामदा की दृष्टि से सभ्य है, सुसंस्कृत है और सबसे बडी बात है कि वह धनी है। हैदराबाद में उसके कई मकान हैं, जमींदारी है और वहाँ उसकी वंश-प्रतिष्ठा भी है। कामदा को इससे बढकर और क्या चाहिए। वह मानती है कि एक कान्त ही ऐसा पुरुष है जिसमें वह सभी गुण विद्यमान हैं जो उसे चाहिए और वह नए जमाने का है क्योंकि वह देश-विदेश घुमा हुआ है। कामदा और कान्त विवाह से पहले चाहते हैं कि अपने बीच कुछ भी राज न रहने दें। अतः वे स्वयं से जुडी सभी बातें एक दूसरे को खुलकर बता देना चाहते हैं। कामदा मुकुन्द के बारे मे भी बता देती है। कान्त भी बताता है कि योरोप प्रवास के दौरान अपने स्वच्छन्दता और विलास के बारे में बताता है। कांत चाहता है कि इस पवित्र-बंधन में बँधने से पहले उन दोनों को चाहिए कि वे अपने पूर्व घटित सभी बातों को

भुलाकर नए जीवन में प्रवेश करें लेकिन एक स्त्री के वहाँ आने से उसकी सभी गढी कहानियों पर पानी फिर जाता है। क्योंकि वह स्त्री कामदा को बताती है कि वह उसकी तीसरी पत्नी है और इस तरह वह उसे भी धोखा दे रहा है। कान्ता का दोहरा रुप कामदा के समक्ष खुल जाता है। कामदा की आँखों पर पडी दमक का पर्दा हट जाता है। अब उसे साफ-साफ दिखाई देता है कि कान्त किस प्रकार से अपनी मिठी बातों से एक जाल बुन लेता जिसमें कामदा भी फँस जाती है।

'अश्क'जी के 'पक्का गाना' संग्रह पर दृष्टि डालें तो यही स्वर उद्‌भुत होता है कि उन्होंने इन एकांकियों के माध्यम से समाज के विविध अंगों पर दृष्टि डालकर वहाॅ होनेवाले मानसिक और बौद्धिक संघर्षो के बीच सत् और असत् को मुखरित किया है। जिसमें नवीनता और प्राचीनता का समावेश कर कुछ समाधान भी प्रस्तुत किए है। इन्हें प्रस्तुत करने के लिए 'अश्क'जी को कहीं भी उपदेशक का रुप नहीं लेना पडा क्योंकि यह समाधान स्वाभाविक और सहज हैं। इन एकांकियों में आदर्शवादी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। गहन समस्याओं का विश्लेषण, अन्तर्विरोधी प्रवृत्तियों के संघर्ष का अंकन आदि कुछ बातों ने उस आदर्श को इतना ग्रहण योग्य बना दिया है कि पाठक या सामाजिक प्राणी उन पर विचार करने के लिए मजबूर हो जाता है क्योंकि प्रत्येक समस्या के समाधान के साथ 'अश्क' ने छोटी-सी शंका छोडी है। विषय-वस्तु के चयन के लिए उनकी दृष्टि समाज के सभी वर्गो, व्यवसायों, व्यापारों की ओर लगभग गई है। यथार्थवादी लेखक होने के कारण वस्तु-सत्य उद्‌घाटित करने में सतर्कता और सजीवता रखते हैं।

'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' शीर्षक एकांकी संग्रह में उनके सात प्रहसनो को संग्रहित किया गया है। ये क्रमशः इस प्रकार हैं- 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ', 'कइसा साहब कैसी आया', 'बतसिया', 'सयाना मालिक', 'तौलिए', 'कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्‌घाटन', और 'मस्केबाजों का स्वर्ग'। अपने इन प्रहसनों के अन्तर्गत मानवीय भावों को आरोपित करते हुए इन्होंने शुद्ध हास्य और व्यंग्य की अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रहसनों के अन्तर्गत 'अश्क' जी केवल हास्य प्रदर्शन ही अपना लक्ष नहीं बनाते है, अपितु चरित्र-चित्रण, मानवीय भावनाओं, मनोविश्लेषणात्मक तथ्य भी प्रस्तुत करते हैं। समाज तथा उससे जुडे विविध क्षेत्रों को इन्होंने बडी ही सतर्कता और सजीवता से पकडते हैं। इन प्रहसनों के द्वारा यहाँ सामाजिक सत्य उद्‌घाटित कर रहे हैं। 'अश्क'जी एक यथार्थवादी एकांकीकार हैं, अतः उनकी सभी एकांकी नाटकों में, प्रहसनों में यथार्थबोध है। पिछले सग्रहो में भी जहाॅ उनकी दृष्टि समाज के विविध वर्गो तथा सत्-असत् का उद्‌घाटन गंभीरता से करते हैं वही प्रस्तुत संग्रह में उनकी वही दृष्टि है किन्तु यहाँ उनका माध्यम बदल गया। उन्ही सत्यों को वे हास्य-व्यंग्य के माध्यम से रोचक रुप में प्रस्तुत कर रहे हैं। अतः यहाँ 'अश्क'जी की निहित

भावों की अभिव्यक्ति अधिक सहजता से व्यक्त होती है।

'सयाना मालिक' 'अश्क'जी का प्रस्तुत प्रहसन साधारण-सा किन्तु जीवनगत समस्याओं को लेकर लिखा गया है। प्रस्तुत एकांकी में नौकर-मालिक के आपसी संबंधों और उससे जुडी समस्याओं पर छींटाकशी की गई है। प्रस्तुत एकांकी में मिसेज लीकू नौकरों में पली-बढी होने की वजह से वे उन्हीं पर पूर्ण रुप से आधारित थीं। उन्हें छोटा-सा काम भी पहाड तोड़ने के पराबर लगता था। चुँकि मिसेज लीकू काम की आदी नहीं थी, उन्हें तो बर्तन माँजने की कल्पना तक से सिहरन होने लगती थी। नौकर मिलते नहीं थे अतः नौकरों की अनुपस्थिति में उनका बुरा हाल था। संयोगवश नौकर मिल जाने पर पूरी रसोई उसके हवाले कर स्वयं आजाद होकर फिल्म देखने चली गई लेकिन लौटने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि नए जूठे बर्तनों से भरी रसोई साफ थी। मि. लीकू जब मिस्टर गुप्ता के घर इस वारदात की सूचना पुलिस को देने हेतु फोन करने पहुँचे तो मिस्टर गुप्ता और उनके साथियों की दृष्टि में हास्य का पात्र बन गए। एक सयाना मालिक में क्या-क्या गुण एवं विशेषताएँ होनी चाहिए उसकी मिस्टर लीकू को गिनती कराने लगे मिस्टर लीकू को एक पडौसी के नाते मिस्टर गुप्ता से जहाँ सहानुभूति की आशा होनी चाहिए वहाँ उनकी अनुभवहीनता का मजाक उडाया गया। मिस्टर गुप्ता का दावा है कि वह एक सयाना मालिक है क्योंकि वह नौकरों की नियुक्ति 'एम्पलायमेंट एक्सचेंज' के जरिए करता है। अपने व्यवहार हेतु इस संबंध में गुप्ता ने एक पूरी संहिता बना रखी है। संहिता में नीहित सूत्र इस प्रकार है कि नौकर रखते समय उसके नाम-पते की उचित जाँच कर ली जाए, आधा ही वेतन दिया जाए, अन्य नौकरों की संगति से दूर रखा जाए, कम से कम छुट्टी दी जाए। लेकिन गुप्ता जी का दावा तब भ्रामक सिद्ध हो जाता है जब नौकर हीरा जिसे बर्फ लेने भेजा गया था वह मिसेज गुप्ता के गहने लेकर लापता हो चुका था। मिस्टर गुप्ता के सारे प्रयास विफल हो चुके थे। 'अश्क'जी ने प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से नौकरों की ईमानदारी के प्रति अविश्वास व्यक्त किया है। पडोसियों के आपसी व्यवहार को दिखाकर 'अश्क'जी ने प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से नौकरों की ईमानदारी के प्रति अविश्वास व्यक्त किया है। पडोसियों के आपसी व्यवहार को दिखाकर 'अश्क'जी ने समाज के महत्वपूर्ण सत्य को उद्घाटित करते हैं कि आज मनुष्य अपनेपन की भावना से कोसों दूर निकल गया है। पुलसि के रवैयों को 'अश्क'जी जस्टिस महेश के वृतान्त द्वारा करते हैं। जस्टिस महेश नौकर के भाग जाने की रिपोर्ट दर्ज कराने, स्वयं का परिचय दिए बिना, एक सिपाही से थानेदार की उपस्थिति के संदर्भ में प्रश्न करने पर उस सिपाही का जवाब था - 'जो कहना है, मुझसे कह, थानेदार से क्या सगाई करनी है ?' बिना कुछ लिए वह रिपोर्ट दर्ज करने को भी तैयार नहीं था। थानेदार को जब चोरी की बात बताई गई तो थानेदार ने भी गंदा मजाक किया- "जाकर बीवी से पूछ। हम क्या कर सकते हैं?" चुँकि ये जज था अतः इन की शिकायत पर

कप्तान द्वारा दोनों सिपाही और थानेदार की सजा स्वरूप वर्दी उतार ली गई लेकिन एक आम जनता को किस नाम का आश्रय लेना होगा? यह प्रश्न उठता है अर्थात् वह न्याय से वंचित रहने पर बाध्य होगा। मिसेज लीकू जैसी पात्रा के माध्यम से 'अश्क'जी शरीर श्रम की महत्ता पर बल देते हुए मनुष्यों को आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी होने का सदेश प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से प्रेषित करते हैं। आत्मनिर्भरता के बल पर मनुष्य अपने दैनिक जीन से जुडी ऐसी कई छोटी-बडी समस्याओं से निदान पा सकता है।

प्रस्तुत रचना के माध्यम से 'अश्क'जी ने यहाँ नौकर की समस्या को दर्शाया है वहीं साथ ही पुलिस की लापरवाही और निष्क्रियता, पडोसियों में घटती अपने-पन की भावना तथा 'एम्पलायमेन्ट एक्सचेज' की कार्यक्षमता और सजगता पर भी फबती कसी है और इस तरह 'अश्क'जी ने चोरी की घटना की पुनरावृत्ति द्वारा अपने मन्तव्य को बखूबी प्रस्तुत करते हैं तथा समाज और उससे जुड़ी कई छोटी-बडी समस्याओ को हास्य और व्यंग्य पुट के साथ बड़ी सहजतापूर्वक एक-एक करके रखते गए हैं। अतः यह एक उत्कृष्ट रचना है।

'तौलिए' शीर्षक एकांकी में 'अश्क'जी ने सत्य के एक पहलू को पकड़कर सामान्य पति-पत्नी के जीवन-दृश्य की हास्यात्मक सृष्टि की गई है। प्रस्तुत एकांकी में वसंत एक फर्म का मैनेजर है और उसकी पत्नी है मधु। मधु की स्वच्छता और सफाई विषयक सनक इस सीमा तक पहुँच गई है कि उसने अपने घर के प्रत्येक सदस्य के लिए अलग-अलग तौलिया रखा है। अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग तौलिया रखा है जैसे सेविंग के बाद का तौलिया, नहाने का, हाथ-मूँह पोंछने का इत्यादि। एक तरह से पूरे घर को तौलिया बना रखा है। मधु का पति वसंत पत्नी मधु की इस सनक का प्रतिवाद करता रहता है। वसंत का कहना है कि चिन्ताओं और आपत्तियों के बंधन ही क्या कम हैं जो जीवन को शिष्टाचार की बेड़ियों से जकड दिया जाए।[98] वसंत के अनुसार सुरुचि स्वच्छता बुरी चीज नहीं है लेकिन मधु हर चीज को सनक और जिद् की सीमा तक पहुँचा देती है। इस सनक ने मधु को केवल घृणा का पाठ पढाया है - उसी के शब्दों में.. . मैं गन्दे लोगों से घृणा करती हूँ। मधु अपने पति वसंत द्वारा दी गई आलोचनाओं से व्यथित होकर कहीं चली जाने का निश्चय करती है लेकिन इस बीच वसंत को ही कार्यालय के काम से बाहर जाना पडता है और वह जिस दिन लौटने को कह गया था उस दिन लौट नहीं पाता है।

इधर मधु ऐसा समझती है कि वसंत उसकी आदतों से ऊबकर उससे नाराज होकर चला गया है। इसलिए वह अपनी ऐसी आदतों को तकल्लुफ, बनावट, नफरत तीनों को दिल से निकाल देना चाहती है।

वह अपनी दिनचर्या ही बदल लेती है। वह सोनेवाले कमरे में ही खाना खाने लगती है। अपने स्वभाव के विपरीत पलंग पर ही बैठकर अपनी सहेलियों के साथ चाय पीती है। लौटकर वसंत जब मधु की बदली आदतों को देखता है तो उसे आश्चर्य भी होता है और खुशी भी होती है। लेकिन मधु के पुराने संस्कार इतनी शीघ्रता से नहीं बदलने वाले थे। वह वसंत पर बरसती हुई कहती है- 'आप सूखे और भीगे तौलिए में भी तमीज नही कर सकते।'[99]

इस प्रकार 'अश्क'जी ने 'तौलिए' एकांकी के अन्तर्गत सांस्कारिक प्रभाव से उत्पन्न हठाग्रही मनोवृत्ति का उद्‌घाटन किया है। मधु के संस्कार उसे स्वच्छता, सफाई के आदर्श की सीमा तक पहुँचा देते हैं। वसंत अपने संस्कारों से वशीभूत उस आदर्श को नहीं निभा पाता है। अपने संस्कारों से युक्त मधु की सनक के साथ वह संतुलन नहीं स्थापित कर पाता है। वसंत के चले जाने पर मधु में जो परिवर्तन आता है, वह आत्मलोचन का परिणाम है जिसमें मधु अपनी सनक की हदों को देखती है जिसके फलस्वरुप वसंत हीन-भावना से चीढ़ता कुढ़ता रहता है और अंत में वसंत के आ जाने के बाद मधु की वही सनक, वे ही संस्कार फिर जाग उठते हैं। 'अश्क'जी ने प्रस्तुत एकांकी में वसंत के माध्यम से एक महत्वपूर्ण बात कही है कि जीवन का भेद बाह्य तड़क-भडक में नहीं अंतर की दृढता में है। यदि हमारी प्रतिरोधी शक्ति, हमारी Power of Resistance कायम है।[100]

'घपले' शीर्षक एकांकी रेडियो स्टेशन के कार्यक्रम पर आधारित है। प्रसारण के समय होनेवाली गडबडियाँ इसमें दिखाई गयी हैं। वस्तुतः यह रेडियो स्टेशन का मनोरंजक चित्र प्रस्तुत करता है। इस छोटे से यंत्र के पीछे जो दूर-दराज की खबरें, भाषण वार्ताएँ और गाने सुनाता है, काम करने वाले इंसान है मशीनें नहीं। यद्यपि वे माइकों, टर्न टेबलों, ट्रांसमीटरों और रेकार्ड भरनेवाली मशीनों के साथ चौबीस घण्टे काम करते हुए मशीनें बन जाते हैं लेकिन इसके बावजूद वो इंसान हैं। उनके दिल और दिमाग हैं, जब-जब चिन्तायें और परेशानियॉं इन इंसाननुमा मशीनों को घेरती हैं तो उनके दिल-दिमाग काम करना छोड देते हैं और घपले होते हैं। प्रस्तुत एकांकी में यही गड़बडियॉं 'अश्क'जी पाल, मिश्र, त्रिपाठी, कल्याणी आदि पात्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं और यह स्वाभाविक है लेकिन हम इसके पीछे छिपे कारणों को जाने बगैर अपनी नाराजगी दिखाते है। 'घपले' शीर्षक एकांकी में लेखक ने रेडियो के पीछे काम करनेवाले इन्हीं इसानों और मशीनों की बदहवासियों की झलकियॉं प्रस्तुत है।

प्रस्तुत एकाकी में श्री कैलाश कँवल का नाटक जिसे श्रीपाल द्वारा रेडियो पर प्रसारित किया जाता

है उस नाटक के अन्तर्गत जो भाषण विमला को प्रस्तुत करना है उस भाषण वार्ता में भी लेखक ने विमला के माध्यम से ऐसे कई प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित किए हैं। विमला के भाषण का शीर्षक - 'सरकारी नौकरियों में नारियों का हिस्सा' है।[101] आज जब देश की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण स्त्रियॉ घर की चार दीवारी को छोडकर दफ्तरों में जाने को विवश हुई हैं यह देखना आवश्यक है कि पुरुषों की तुलना में उनकी स्थिति कैसी है? क्या उन्हें वही विशेषाधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हैं जो पुरुषों को? क्या किसी एक काम के लिए उन्हें उतना ही वेतन मिलता है जितना पुरुषों को? और क्या नौकरी करने वाली औरत को माँ बनने की पूरी सुविधा प्राप्त है? दफ़्तरों में काम करने वाली कुँवारियों को ही बेहतर समझा जाए। यह कहॉ का न्याय है। कई महत्वपूर्ण सवाल हमारे समक्ष लेखक ने बडी ही सहजता और स्वाभाविकता के साथ रख दिए हैं जिनका हल हमें स्वयं ढूंढना होगा।

'कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन' शीर्षक एकांकी में उद्घाटन की औपचारिकता पर व्यंग्य किया है। प्रस्तुत एकांकी में कस्बे के उत्साही युवकों ने क्रिकेट क्लब खोला है जिसे कार्य रुप में परिणत करने के लिए उन्हें धन की आवश्यकता थी। उन्हें चंदे के रुप में कोई मोटी रकम प्राप्त करने की लालसा थी। अतः वे किसी धनी-मानी व्यक्ति की तलाश में थे जिसके हाथों वे क्रिकेट क्लब का उद्घाटन करवाना चाहते थे ताकि उससे बदले में चन्दा वसूल सके। उसी कस्बे में एक धनी-मानी भानामल रहता है जिसकी डेयरी फार्म है। भानामल स्वार्थी प्रकृति का व्यक्ति था और ख्याति प्राप्ति का लोभी था। इधर क्लब के सदस्य धन के लोभी थे ही अतः तय हुआ कि उद्घाटन भानामल के कर-कमलों से सम्पन्न किया जाए। भानामल उद्गाटन के समय भाषण देता है जिसमें अपनी डेयरी फार्म को ही मुद्दा बनाकर उसी से संबंधित प्रचार भाषण देता है। डेयरी फार्म का इतिहास बताते हुए वह साधिकार कहता है कि 'बिना स्वस्थ शरीर के बिना कोई खेल नहीं खेला जा सकता है और शरीर स्वस्थ होता है शुद्ध घी, दूध से, जो लाला भानामल की डेयरी में मिलता है।'

इस तरह प्रस्तुत एकांकी में उद्घाटन समारोह की औपचारिकताओं पर व्यंग्य किया गया है। उद्घाटन का आयोजन केवल लोभ पर आधारित होता है। क्लब के सदस्यों को धन का लोभ था इसलिए उन्होंने भानामल जैसे व्यक्ति को चुना और भानामल ख्याति प्राप्ति का लोभी था इसलिए उसने ऐसे मौके को हाथ से जाने नहीं दिया। भानामल का भाषण बिल्कुल निरर्थक था। अतः लेखक ने हमारी सार्वजनिक संस्थाओं की दशा को देखकर खोखली औपचारिकता को एकांकी का व्यंग्य विषय बनाया है। ऐसी संस्थाएँ केवल औपचारिकताओं पर खडी हैं। इस तरह से लेखक ने निरर्थक व्याख्यानों पर उद्घाटन की परंपराओं

पर ख्याति प्राप्ति के इच्छित व्यक्तियो पर एकांकी के माध्यम से व्यंग्य किया है।

'अश्क' ने सामयिक-यथार्थ की विकृतियों की कटु आलोचना अपनी एकांकियों के माध्यम से की है और बुराईयो को बदलने की प्रेरणा भी जगायी है। लेकिन वह कहीं उपदेशक बनकर नही आते। अश्क की विशेषताएँ हैं-उनके मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा उनकी सांकेतिकता, जिसका हिन्दी नाटकों में समारम्भ करने का श्रेय भी उनको ही है।[102] और फिर उनके नाटकों में मिलने वाले पैने व्यंग्य। हमारे समस्या नाटककारों में एक अश्क ही ऐसे हैं, जिनके व्यंग्य पर हम नाज कर सकते हैं। इस मानी मे उनका स्थान बहुत ऊपर हो जाता है। 'अश्क' को सामयिक-यथार्थ की बुराई करते समय उपदेशक इसलिए भी नही बनना पडता कि वे परिस्थिति-विश्लेषण के द्वारा समस्या का निरुपण करते है। समस्या-निरुपण के लिए अपेक्षित परिस्थिति की संयोजना के लिए उनको बहुत श्रम भी नहीं करना पडता। यह इसलिए कि उनका अपना जीवन ही ऐसा है, जिसके आवरण को जरा सा हटा देने से ही वह परिस्थिति सामने आ जाती है, जिसकी समस्या की प्रस्तुति निमित्त अपेक्षा है। माथुरजी ने ठीक ही कहा है कि 'अश्क' को मध्यम वर्ग की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के विश्लेषण में लम्बे भाषणों का सहारा नहीं लेना पडता, वे परिस्थिति-विशेष के ऊपर से पर्दा उतार कर रख देते हैं।[103] 'अश्क'जी के आगे सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है- समस्या की प्रस्तुति की और समस्या को वे परिस्थिति की योजना, सांकेतिकता और चरित्र के निदर्शन के द्वारा उभारा करते हैं। स्वभावतः कथा की अपेक्षा उनको एक निश्चित सीमा तक ही हो सकती है। इस विषय में स्ट्रिंडबर्ग शायद उनके आदर्श रहे हैं।

श्री उदयशंकर भट्ट :

आज के युग प्रवर्तक एकांकीकारों तथा आधुनिक एकांकी साहित्य के उन्नायकों में एक प्रसिद्ध नाम श्री उदयशंकर भट्ट का भी है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। एकांकी-साहित्य की रचना में उन्होंने मूलतः यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। उनकी एकांकियों में विषय-चयन का क्षेत्र राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक है। परंपरित शैली से हटकर यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाते हुए भट्टजी ने एकांकी साहित्य को नया शिल्प व नया स्वर प्रदान किया है। आपने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रतीकात्मक, समस्या प्रधान रहस्यपूर्ण आदि विविध प्रकार की एकांकियों को प्रस्तुत करते हुए उनके द्वारा राष्ट्रीय जागरण, जनजीवन के संघर्ष एवं सामाजिक गतिविधियों को मुखरित करते हैं। अतः समकालीन मानव-जीवन की यथार्थता को उद्घाटित करनेवाले एक सफल द्रष्टा के रुप में सामने आते हैं।

भट्ट जी ने सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विशेष अध्ययन करके 'आदिम युग और अन्य एकांकी' संग्रह में नवीन गवेषणात्मक एकांकियों को जन्म दिया है। इनमें प्रारंभिक आर्य संस्कृति, मध्यकालीन सांस्कृतिक अभिरुचि चित्रित है। उन्होंने जीवन तथा समाज की उथल-पुथल, सामयिक समस्याओं और आकुल अभिव्यक्ति के सुन्दर और सफल चित्र अंकित किए हैं और सामाजिक एकांकियों में मनुष्य की विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त किया गया है। सभी प्रवृत्तियों का वास्तव और अवास्तव रुप में प्रस्फुटन हुआ है। सुधारवादी और समस्यापूरक दृष्टिकोण से कुछ एकांकी लिखे हैं। प्रत्येक नाटक एक समस्या का समाधान करते हुए विषमता को कलात्मकता प्रदान करता है। भट्टजी इनके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक चित्रण के साथ-साथ समाज की ऐसी समस्याओं को लिया है जो मानव-जीवन और उसके परिवार की सुख-शांति को भंग करनेवाली होती है। इनके एकांकी ने आज के व्यक्ति की हठ धर्मी, एकांकी दृष्टिकोण और संकुचित विचारधारा पर परोक्ष रुप से व्यंग्य किया है। अतः आप बदलती हुई मान्यताओं का अत्यंत सजीव और युगानुरुप चित्रण करने में सफल रहे हैं। आपका एकांकी साहित्य समाज को समुन्नत करने की दिशा में निरंतर अग्रसर दिखाई देता है।

(i) आपके एकांकी संग्रह '**अभिनव एकांकी**' में छः एकांकी संकलित हैं - 'दुर्गा', 'नेता','उन्नीस सौ पैंतीस', 'वर निर्वाचन', 'एक ही कब्र में सेठ तथा लाभचंद्र'। ऐतिहासिक परिवेश पर आधारित '**दुर्गा**' सन् 1934 में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। सामंती समाज की बुराईयों से उत्पन्न व्यक्तिगत एवं सामाजिक संघर्ष को लेखक ने उजागर किया है। दुर्गा के वृद्ध पिता विजयसिंह अफीम का व्यसनी है। दुर्जनसिंह के पिता ने अपने बेटे के लिए दुर्गा का हाथ माँगा तो विजयसिंह ने उसका अपमान करते हुए इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। दुर्जनसिंह अपमान का बदला लेने के लिए दुर्गा को अपनी बाँदी बनाने का निर्णय करता है। एक बार अफीम का व्यसनी विजयसिंह अफीम न मिलने पर तडपता है। दुर्गा, पिता की ऐसी दयनीय स्थिति देखकर असमंजस में पड जाती है। एक और अपने शील की रक्षा का प्रश्न है, तो दूसरी और पिता के प्राण की रक्षा का। अपने कर्त्तव्य-पालन को अधिक महत्व देते हुए वह दुर्जन के सामने अपने आप को समर्पित करती है। वृद्ध पिता बेटी के इस बलिदान से प्रभावित होकर दुर्जन को अफीम वापस लौटाकर बेटी की मुक्ति की प्रार्थना करता है। अंत में दुर्जन का हृदय-परिवर्तन दिखलाकर वह प्रतिशोध की भावना को त्याग कर दुर्गा से विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है। इस प्रकार एकाकी का विषय सुखान्त एवं सुधारवादी है। इस प्रकार दुर्गा सामन्ती समाज की विकृति के साथ भारतीय सांस्कृतिक गौरव को प्रतिपादित करती है।

'नेता' एकांकी समकालीन युग के तथाकथित समाज-सुधारकों के दोहरे व्यक्तित्व को उद्घाटित करने वाली एक व्यंग्यप्रधान एकांकी है। सत्येन्द्रजी के मतानुसार यह एकांकी चरित्र-प्रधान न होकर टाइप-प्रधान है, विशेष कोटि के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाला।[104] आज के हमारे नेता बडे वाक्-पटु हैं, लेकिन उनकी कथनी और करनी में जमीन-आसमान का अंतर होता है। 'नेता' एकांकी का प्रमुख पात्र पुरुषोत्तमजी अपने नाम के अनुसार बातों द्वारा अपने आप को एक उत्तम पुरुष अर्थात् श्रेष्ठ नेता एवं समाज सुधारक सिद्ध करने का यत्न करते हैं। वे परम्परागत वर्ण-व्यवस्था की आलोचना करते हुए वर्ण-विहीन समाज रचना के पक्षपाती हैं लेकिन जब उनका भतीजा चाचा के आदर्श विचार के अनुसार मनोरमा से विवाह करके व्यवहार में परिणत करता है, तब पुरुषोत्तमजी का मुखौटा खुल जाता है। अपने भतीजे मोहन के इस सुधारवादी कदम को वे अस्वीकृत करते हुए कहते हैं कि "यह समाज सुधार नहीं, समाज की हत्या है, संस्कृति का पतन है।"[105] इस प्रकार एकांकीकार ने तथाकथित समाज-सुधारकों के दोहरे व्यक्तित्व पर कटु व्यंग्य किया है। यह भारतीय समाज का दुर्भाग्य है कि आदर्श नेता ही समाजसुधार की दिशा में एक छोटा-सा कदम भी बढ़ाते नहीं हैं। अतः सदियों से सामाजिक रुढ़ियाँ अपने विकृतियों के साथ ज्यों की त्यों आज भी जीवित है।

'उन्नीस सौ पैंतीस' साधारण एकांकी है। पुराने विज्ञापन को नया समझकर नौकरी के लिए प्रार्थना पत्र भेजने वाले और तत्पश्चात तत्सम्बंधी स्वप्न देखनेवाले बेकार युवक का हास्यात्मक चित्र एकांकी में प्रस्तुत किया गया है। एक दृश्य में इसका कथानक इस प्रकार है- सुरेन्द्र नाम ग्रेजुएट को किसी माँग का विज्ञापन मिल जाता है। वह तुरंत प्रार्थना पत्र भेज देता है। वह समझता है कि अब समस्त दरिद्रता दूर हो जायेगी। मुझे नौकरी अवश्य मिलेगी। इस प्रकार कल्पना लोक में वह हवाई किले बनाता है। अपनी माँ और पत्नी को इसकी सूचना देकर प्रसन्न करता है किन्तु इसी प्रसन्नलोक में बिजली की तरह घहराता हुआ गिरता है यह सम्वाद कि वह विज्ञापन तो उन्नीस सौ पैंतीस का है। यद्यपि सुरेन्द्र की यह भावना कि प्रार्थना पत्र भेजते ही नौकरी मिल जायेगी पूर्ण रुप से हास्यास्पद प्रतीत होती है।

'वर निर्वाचन' एकांकी आधुनिक शिक्षित ऐश्वर्य लोलुप किन्तु उथली अर्थात् चंचल वृत्ति की नारियों पर व्यग्य है। यह मानव मनोविज्ञान का एक सुन्दर एवं सजीव उदाहरण है। प्रत्येक सुशिक्षित एवं अभिजात्य वर्गीय पिता की यह अभिलाषा होती है कि उसकी बेटी की शादी किसी बडे अफसर के साथ हो जाये। इसी मनोवृत्ति का यथातथ्य विश्लेषण चौधरी साहब के चरित्र के माध्यम से किया है। चौधरी साहब के यहाँ एक इंग्लैण्ड रिटर्न सिटी मजिस्ट्रेट आनेवाले हैं तथा पुत्री को यह हिदायत दे रखी है कि अतिथि की

अधिक से अधिक सेवासत्कार की जाये। आगन्तुक आते हैं तथा चौधरी साहब की हिदायत के मुताबिक पुत्री उसका केवल स्वागत ही नहीं करती, अपितु उससे प्रेम भी करने लगती है। अन्ततः पता लगता है कि वह उसके पिता का मुवक्किल है। इस प्रकार इसमें आधुनिक शिक्षित समाज की मनोवृत्ति का उपहास प्रस्तुत है।

'सेठ लाभचन्द्र' का वस्तु-निरुपण एक वर्ग विशेष की लाक्षणिकता को उजागर करती है। समाज का व्यापारी वर्ग अर्थोपार्जन को जीवन में सर्वाधिक महत्व देता है। अर्थ-संग्रह ही मानों इनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। लेकिन वर्ग-विशेष की धन-लोलुपता आज आम-मनुष्य की पहचान बन गई है। भौतिकवादी जीवन ने जन-साधारण की मनोजगत को स्वकेन्द्री एवं संकीर्ण बना दिया है। प्रस्तुत एकांकी में एक सूदखोर कंजूस और धन लोलुप सेठ की मनोवृत्ति का विश्लेषण व्यंग्यात्मक शैली में किया गया है। सेठ भौतिकवादी जीवन दृष्टि का अनुयायी एवं पूँजी बढ़ाने के लिए भरसक प्रयत्नशील रहता है। धर्म के नाम पर पैसा तो इकट्ठा कर लेता है, किन्तु किसी भी प्रकार का धार्मिक कार्य नहीं करता है। नसीमबख्श की मजबूरी का फायदा उठाकर उसके कडे हजम कर लेना चाहता है और इसी प्रकार के अन्य कार्यो से संकेत मिलता है कि सेठ की मनोदशा भौतिकवादी है। सेठ के अन्तर्द्वन्द्व का एक उदाहरण - "इधर मैंने बडी भूल की। महादीन को पचास रुपये दे देता तो उसकी औरत शायद बच जाती। बड़ा बुरा किया, ... व्यापार तो व्यापार है।... दया और व्यापार की तो दुश्मनी है।"[106] इस उद्धवरण से सेठ के हृदय की विकलतापूर्ण आंतरिक संघर्ष चित्रित किया गया है। वह चाहता है कि उसे जरुरती लोगों की सहायता करनी चाहिए लेकिन उसकी आर्थिक लिप्सा मार्ग में बाधक हो जाती है। इस धन-लोलुपता का लेखक व्यंग्यात्मक शैली में महादीन पाण्डे के मुख से पर्दाफाश कराके यह प्रतिष्ठित करता है कि धन की लिप्सा ने मानवीय हृदय में जंग लगाकर उसे इतना मैला कर दिया है कि मानवता, दया और त्याग का तो कोई स्थान ही नहीं है। सूदखोर सेठ की स्वार्थपरता और पैशाचिक प्रवृत्ति के माध्यम से आधुनिक परिवेश मे परिव्याप्त अमानवीयता पर करारी चोट की गयी है। "मनुष्य इतना नीच है, स्वार्थ है, पतित है कि वह एक पैसे की मदद नहीं कर सकता। सेठ, मेरी स्त्री बिना इलाज के भले ही मर जाये। बिना औषधि के उसके प्राण निकल जाये, लेकिन तुम पाँचसौ की चीज तीन सौ में रखकर ऊपर एक पैसा भी देने को तैयार नहीं। यह हत्या है, दिन दहाडे डाका है। तुम्हें भले ही चकमा देकर लूट ले, पर तुम मानवता, कृपा, दया और धर्म के नाम पर किसी की सहायता नहीं कर सकते।"[107]

(ii) **'स्त्री का हृदय'** एकांकी सग्रह में 'स्त्री का हृदय', 'विष की पुडिया', 'असली-नकली', 'दस

हजार', 'बडे आदमी की मृत्यु', 'जवानी', तथा 'मुंशी अनोखेलाल' एकांकी संग्रहीत हैं। प्रस्तुत एकांकी संग्रह में नाटककार ने पिछड़ी हुई मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। 'जवानी' एकांकी के अतिरिक्त अन्य सभी एकांकी यथार्थवादी है। **'स्त्री का हृदय'** एकांकी में लेखक ने भारतीय नारी के उदात्त चरित्र को केन्द्रीय रुप दिया है। जगदीश राय की पत्नी अंजना पति के कठोर दुर्व्यवहार से पीड़ित है। वह तीन महिने से पति की मार से टूटे हुए अपने पैर के इलाज के लिए अस्पताल में थी। बेटा यशवंत भी पिता से नफरत करने लगता है। अंजना के भाई ने जीजाजी के विरुद्ध थाने में अपील की। परिणामस्वरुप जगदीशराय को सजा हो जाती है। अंजना की बेटी शोभा पिता के प्रति स्नेह रखते हुए घर के लोगों के प्रति अपनी नाराजगी प्रकट करती है- 'जब पिताजी कमाते थे तब सबको अच्छे लगते थे, यदि आपकी रक्षा के लिए उनकी नौकरी छुट गई, उन्हें व्यसन लग गया, तो वे कडवे हो गये...." गुरु नारायण नामक जेलर को अपनी बेटी के लिए दामाद के रुप में यशवन्त पसन्द आ जाता है। उनकी मदद से जगदीशराय का बेटा जेलर बन जाता है लेकिन दुर्भाग्यवश उसी जेल का जेलर बनता है जिस जेल में उसके पिता को रखा जाता है। अपने बेटे के प्रति स्नेह उमडने पर जगदीशराय यशवन्त से मिलने का यत्न करता है, लेकिन इन सम्बन्धों से अनजान पुलिस जगदीशरायको बेरहमी से पीटते हैं। अंजना इस दृश्य को देख नहीं पाती है। वह सब-कुछ भूलाकर पति की रक्षा करती है। इस प्रकार लेखक ने नारी के गौरवमय रुप की रक्षा की है। प्रस्तुत एकांकी में आधुनिक स्त्री-पुरुष के आडम्बरपूर्ण संबंध को प्रदर्शित किया है। एक ओर तो भारतीय नारी अपने पति को धन के अभाव में तनिक-सी बात पर त्याग देती है, उसका साला उसे सजा दिलाकर प्रसन्न हो जाता है, किन्तु दूसरी और वही स्त्री जिसने अपने पति को छोड़ दिया है - उसके जेल जाने से विक्षुब्ध हो उठती है।

'दस हजार' एकांकी का विषय-वस्तु 'सेठ लाभचंद्र' एकांकी से मिलता-जुलता है। सेठ विसाखाराम एक धनी वणिक होने के साथ-साथ पाषाण हृदय पति और पिता है। एक दिन सेठ पैसे की वसुली के लिए अपने पुत्र को बाहर भेजता है तभी दुर्भाग्यवश एक पठान द्वारा पुत्र का अपहरण हो जाता है। बेटे की मुक्ति के लिए दस हजार रुपये की मॉग की गयी। सेठ इस माँग से अत्यंत व्यथित हो उठता है। बेटे के प्रति रोष व्यक्त करता है, पत्नी को भला-बुरा कहता है। अंततः पत्नी के विलापयुक्त आग्रह और मुनीम की सलाह मानकर बगैर मन से तय रकम देने के लिए तैयार हो जाता है। एक ओर माँ का पुत्र-प्रेम और दूसरी ओर कठोर पिता का धन-प्रेम है। अतुल संपत्ति के बावजूद भी पति की कृपणवृत्ति के कारण पत्नी न तो भौतिक जीवन का सुख भोग पायी थी और न ही आध्यात्मिक अनुभूति की प्यास को बुझा पाई थी। लेकिन आज बेटे के प्रति पति की निर्ममता ने उसे विचलित कर दिया था। पति को कोसते हुए कहती है- "कमाया तो क्या फायदा न तीरथ, न जप तप, न धर्म। कभी हरिद्वार भी न ले गये। मैं तो तुम्हारा पैसा जानती ही नही। चार

कोठियाँ है और हम इसी गली में पड़े सड रहे हैं। आज तीन-चार लाख रुपये के मालिक हो। एक पैसा भी दान नहीं किया। ऐसा रुपया किस काम का।"[108] इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से भट्टजी ने मानव-प्रेम से अधिक आधुनिक मनुष्य का संपत्ति के प्रति प्रेम पर और भौतिकवादी जीवन-दृष्टि पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रहार किया है।

'विष की पुड़िया' एक करुण एकांकी है। लेखक ने सौतेली माँ द्वारा बेटी पर किये सितम और अत्याचारों का प्रभावशाली अंकन किया है। अंबिकाप्रसाद की बेटी सुखिया सौतेली माँ के अत्याचारों का शिकार बनकर अनेक प्रकार के कष्ट और पीड़ा सहती है। अंत में विषाक्त दूध पीलाकर बेटी की हत्या की जाती है। इस प्रकार यह यथार्थवादी करुण एकांकी है। **'असली-नकली'** एकांकी में रंगमंच के कलाकार के दयनी जीवन की तस्वीर प्रस्तुत है। एक निर्धन कलाकार नाटक में एक ऐसे चरित्र का अभिनय करता है जो धनी और विलासी हो। अभिनय करते हुए जब उसे नायिका को चुंबन का दृश्य अभिनीत करना है उसी समय पत्नी प्रेक्षक-गृह में अपना रोष प्रकट करती हुई कलाकार की असलियत प्रकट कर देती है। नाटक के कलाकार की दीन-हीन दशा का यथार्थ चित्रण यहाँ प्रस्तुत है।

'जवानी' प्रतीक रुपक है जिसके विविध पात्र विभिन्न अपदार्थ जगत् के तत्वों के रुपक हैं। आगन्तुक विचारक का, स्त्री स्मृति का और युवती जवानी का प्रतीक है। कल्याण करने हेतु विचारक का सत्कार किया जाता है। नाटककार ने कैदी के माध्यम से विचारक, स्मृति और जवानी का जीवन में महत्व और आवश्यकता को दिखाया है। हिन्दी-साहित्य में भट्टजी का प्रतीक रुपक 'जवानी' अपने श्रेष्ठतम रुप में है।

भट्टजी ने प्रस्तुत संग्रह 'स्त्री का हृदय' में आधुनिक युग के मानव की विभिन्न कृत्रिम वृत्तियों पर व्यंग्य का कठोर प्रहार किया है। प्रो. रामचरण महेन्द्र के शब्दों में – "इन एकांकियों में अनुभूति के उन चित्रों को प्रौढ़ से प्रौढतर बना दिया है जिसमें कृत्रिमता की ओर संकेत नाट्यकार के यथार्थवाद का साधन है।"

(iii) **'समस्या का अंत'** एकांकी संग्रह में – 'समस्या का अंत', 'गिरती दीवारें', 'पिशाचों का नाच', 'बीमार का इलाज', 'आत्मदान', 'जीवन', 'वापसी', 'मंदिर के द्वार पर' तथा 'दो अतिथि' एकांकी संकलित हैं।

भट्ट जी की **'समस्या का अंत'** एकांकी ऐतिहासिक घटना पर आधारित है, जिसमें वाम रथों एवं मद्रकों की पारस्परिक दुश्मनी एवं उनके बीच घटित एक घटना का प्रसंग है - मुख्य सूत्र मद्रकगण के सेनानायक 'श्रुतबुद्धि' और वामरथगण की कन्या 'माणविका' के प्रेम का है। दोनों गणों में शत्रुता है। श्रुतबुद्धि प्रेम से अभिभूत माणविका को मद्रकगण में ले आता है और उससे विवाह करता है। वामरथगण इसे अपने गण का अपमान समझकर माणविका के अपहरण से संतप्त होकर मद्रकों पर आक्रमण करते हैं , किन्तु युद्ध के आरंभ होते ही 'माणविका' बीच में आकर युद्ध रोकने की याचना करती है। विफल होने पर अपना सिर काटकर वहीं मर जाती है। इस बलिदान से युद्ध समाप्त हो जाता है, दोनों गण परस्पर मित्र हो जाते हैं। समस्त एकांकी प्रेम की उस शक्ति को स्पष्ट करती है जो भेद की दीवारों का उल्लंघन करके मेल का पोषण करती है और इसी कसोटी पर युद्ध और भेद भिन्नता का तिरस्कार करता है। जातीय मान-अपमान और ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम की महानता के समक्ष तुच्छ हो जाते हैं।

'गिरती दीवारें' भट्टजी की एक प्रतीक रचना है। इसमें पुरानी मर्यादा की टेक निभानेवाले एक ऐसे कुलीन परिवार की कथा आयी है, जिसके अपने ही आचार-नियम हैं। राय साहब उस परिवार का कुलपति है। वह जिस कमरे में बैठक बनाये हुए है, उसमें उसके पूर्वजों के स्मृति-चिन्ह हैं। उस कमरे में प्रवेश करने वाले के लिये यह पाबंदी है कि वह बड़े अदब से तीन बार सलाम करे, धीरे बोले। उस कमरे में कोई स्त्री प्रवेश नहीं कर सकती।[109] कुलपति और उसके परिवार के सदस्यों के लिए कड़ा बंधन है कि वे पैदल बाहर नहीं निकल सकते। ये नियम ऐसे हैं, जिनका पालन कुल को करना ही होगा। राय साहब का छोटा बेटा प्रद्युम्न कुमार सरकारी नौकरी में आता है और उसके बाद नयी रोशनी की किरणें उस कुल में भी प्रवेश करती है। प्रद्युम्न की बेटी ईसाई मिस साहबा से पढती है, अपने पुराने ढंग के कपडों को छोडकर अंग्रेजों के बच्चों जैसे कपडे पहनती है। स्वयं प्रद्युम्न पैदल सफर करना शुरु करता है। एक दिन तो बुजुर्गो के उस कमरे में मिस साहबा भी चली जाती है। रायसाहब को लगता है कि उसके वंश की मर्यादा उसकी आँखों के सामने ही टूट रही है। वह इधर बुरे-बुरे सपने भी देखने लगा है। राम जाने क्या होता है और अंत में एक और भी दिन आता है जब वंश की मर्यादा की गिरती दीवारों के नीचे उसका भौतिक शरीर भी पिस जाता है।

नाटककार इस प्रतीक के द्वारा यह बताना चाहते हैं कि समय करवट ले रहा है अर्थात् तेजी से परिवर्तित हो रहा है। अब अंधविश्वासों की दीवारें भहरा कर गिरने ही वाली हैं। जो समय रहते समय की नब्ज नहीं पहचान सकेगा, वह पिस कर मरेगा। कहना नहीं होगा कि जीवन मूल्यों के परिवर्तन का नक्शा नाटककार के सामने बडा स्पष्ट है और उसी के अनुरुप उस विषय में उसकी आस्था अडिग है।

'पिशाचों का नाच' शीर्षक एकांकी में अंध-साम्प्रदायिकता की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। किसी गॉव में मुसलमान गुंडे अंध-साम्प्रदायकिता के आवेश में आकर उत्पात मचाते हैं। उस गाँव में आततायियों के अत्याचार के कारण एक भी वयस्क हिन्दू स्वस्थ नहीं बचा, एक भी ऐसी स्त्री नहीं, जो अनाचार का शिकार न हुई हो और एक भी बालक ऐसा नहीं है जो अक्षत हो। हिन्दू स्त्रियों को उठाकर मुसलमान गुंडे ले गये हैं। ऐसी अपहृत महिलाओं मे से कुछ का उद्धार करने का साहसपूर्ण कर्तव्य कुछ नवयुवक करते हैं। गाँव के आगे आज प्रश्न खड़ा है कि मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट इन नारियों को समाज में स्वीकार किया जाय या नहीं। हिन्दू रुढ़ि के पक्षधर वीरु का कहना है कि हिन्दू धर्म और समाज में विधर्मियों द्वारा दूषित इन नारियों के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। माणिक्य और अनील जैसे नवीन विचार वाले युवकों के सामने सुषमा का सीधा सवाल है - 'क्या यह तुम्हारा और तुम्हारे समाज का दोष नही है कि तुम और हिन्दू समाज के लोग गुंडो से हमारी रक्षा नहीं कर सके?[110] शुभदा ने तो और भी ऊँचाई पर जाकर कहा है-'पाप' इच्छा से होता है। अनजान में बलात्कार से किया या कराया गया पाप, पाप नहीं होता।'[111]

'बीमार का इलाज' एकांकी में आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। लेखक ने अप्रत्यक्ष रुप से आज के व्यक्ति की हठधर्मी, एकांगी दृष्टिकोण और संकुचित विचारधारा पर तीखा व्यंग्य किया है। कांति का मित्र विनोद ग्रीष्मावकाश व्यतीत करने के लिए कांति के घर आया हुआ है किन्तु दुर्भाग्यवश वह ज्वर से पीडित हो जाता है। अतएव उसके इलाज के लिए घर के सभी सदस्य अपनी-अपनी चलाते हैं। कांति के पिता चन्द्रकांत एलोपैथिक में विश्वास करते हैं, उन्हीं का इलाज करायेंगे। कांति की माँ वैद्य में विश्वास रखती है और पूजा तथा मंत्र में, नौकर सुखिया झाड-फूँक में, पुत्र कांति होम्योपैथी में- सब विनोद की भलाई चाहते हैं और सभी अपने-अपने चिकित्सकों को लाते हैं। इस प्रकार चिकित्सा की अनेक प्रणालियों के कारण घर में एक विषम और जटिल स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चन्द्रकांत और उनकी पत्नी का हठ तो लेखक ने व्यापक रुप से प्रस्तुत किया है। ऐसे संघर्षमय वातावरण में पीड़ित व्यक्ति को भागने के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता। अतः अंत में विनोद चुपचाप भाग निकलता है और कांति द्वारा लाये हुए डाक्टर का कथन यथार्थ सिद्ध होता है- "मिस्टर काति मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम पडते हैं।" अतः 'बीमार का इलाज' विभिन्न प्रकार के चिकित्सकों पर जनता की आस्था, विभिन्न दृष्टिकोणों का संघर्ष, देश की अज्ञानता, प्राचीन रुढ़ियाँ, झाड-फूँक इत्यादि पर व्यंग्य है।

'आत्मदान' एकांकी में एक ऐसे दम्पत्ति की, जो अपने अधिकारों को स्वच्छंद भोग के लिए सुरक्षित

रखना चाहते हैं, समस्या को प्रस्तुत किया गया है। विश्वेश्वर शहर का धनी रईस है। उसकी पत्नी सरला पढी-लिखी, सभ्य नारी है। विश्वेश्वर का मयूरी नामक एक 'सोसायटी गर्ल' से परिचय है, जो नृत्य-कला को अपनी कुशलता के कारण ख्यात है। मयूरी यह जानती है कि शादी और प्रेम अलग-अलग चीजें हैं। उसके मतानुसार शादी में दो आदमियों का, गृहस्थी के लिए एक प्रकार का ठीका अनुबंध है। यदि विवाह के बाद पुरुष किसी से मित्रता बनाये रख सकता है तो स्त्री भी क़िसी पुरुष को अपना मित्र बना सकती है। इसमें रुकावट क्योंकर हो?[112] विश्वेश्वर मयूरी से इस विषय में पूर्ण सहमत है। वह भी मानता है कि जीवन बधन के लिए नहीं है। आँखे क्या एक ही चीज को देखने के लिए है? उसने अपनी पत्नी सरला को स्वच्छंदता दे रखी है और स्वयं भी बँध कर रहना पसंद नहीं करता। सरला क्लब जाती है, सैर सपाटे करती है, मि. माथुर जैसे अपने मित्रों के साथ टेनिस खेलती है। फिर भी सच्चाई यह है कि विश्वेश्वर सरला की इस स्वच्छंदता से बहुत संतुष्ट नहीं है। उसे शिकायत हो जाती है कि सरला अपना सारा उत्साह, सारी प्रसन्नता और मर्मभेदी मुस्कान क्लब के लोगों में बॉट आती है। विश्वेश्वर के पल्ले पड़ता है उसका सिरदर्द, ऋतु की परेशानी, रात का उनीदापन। फिर भी वह सरला के मार्ग में बाधा नहीं बनता। अपनी व्यथा आप ही झेलता है। सरला क उसने जब यह आजादी दे रखी है तो न्याय यही है कि वह भी मयूरी और विश्वेश्वर की घनिष्ठता पर अपत्ति न करे। आखिर वह भी मनुष्य है। उसे भी मनोरंजन चाहिए, रस चाहिए, चहल-पहल, हॅसी-खुशी, प्रेम का आदान-प्रदान चाहिए।[113]

ऐसे कहने को विश्वेश्वर सरला के प्रति उदार है, लेकिन उसका सरला के प्रति जो प्रेम है, वह एकाधिकार चाहता है, उससे पति का अधिकार खोजता है। इधर सरला है, जो उससे कहती है-"तो क्या तुम चाहते हो कि मैं इस घर में रात दिन पड़ी रहूँ? मैंने तुम्हारी बेदाम की दासी बनने के लिए इतना व्यर्थ नहीं पढ़ा-लिखा है। मेरे भी कुछ अधिकार है। मैं उसकी रक्षा करुँगी। अब वह समय चला गया जब पढी-लिखी स्त्रियाँ पति को परमेश्वर मानकर उसकी सभी उचित-अनुचित बातें सहें। स्थिति यह है कि विश्वेश्वर मयूरी को छोडना नहीं चाहता और सरला भी पढ़ी-लिखी आधुनिका होने के कारण अपने पति-परमेश्वर के पैरों की जूती नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में दोनों के रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं। विश्वेश्वर और सरला शादी के कारण एक प्रकार के बंधन में हैं। इस बंधन का कसाव कितना हो-इसका निर्धारण यदि हो सके तो पति-पत्नि अपने-अपने किनारे लगे। यही अनुभव करके विश्वेश्वर सरला को सुझाता है कि "यह ठीक है कि विवाह ने दोनों को बाँध रखा है। लेकिन यह बंधन ठीक वैसा ही है, जैसे एक ही निश्चित दिशा की ओर जानेवाले दो मुसाफिर एक गाडी मे, एक बर्थ पर आकर बैठ गये हों। रास्ता काटने के लिए दोनों आपस मे बातें कर लेते हैं। एक-दूसरे से बॉटकर खा-पी भी लेते हैं, सो भी जाते हैं। पर दोनों का हृदय रुपी सामान

जुदा-जुदा है। उसमें हाथ नही लगाया जा सकता। हॉ, आवश्यकता पडने पर, बीमारी-परेशानी में चाहें तो एक दूसरे की सहायता भी कर लें। बस।"[114]

'वापसी' एक भावप्रधान एकांकी है। आधुनिक युग में धन की महत्ता सर्वोपरि हो गई है। आधुनिक मानव-जीवन के बदले हुए जीवन-दृष्टिकोण को उजागर करनेवाली यह प्रमुख एकांकी है। धन-प्राप्ति की लालसा में मनुष्य अंध होकर आपसी रिश्ते, भाईचारा और कर्तव्यबोध से च्युत हो जाता है। प्रस्तुत एकांकी का विषय-वस्तु इस प्रकार है- दीनानाथ के भाई रायसाहब बर्मा से अत्यधिक सम्पत्ति सहित अपने देश भारत आये हैं। भारतवर्ष में रहनेवाले अपने कुटुम्बी (भाई) अंबिका के यहाँ ठहरे हैं। सरोजिनी उनकी पत्नी की छोटी बहिन है और चंद्रिका उनकी पहली पत्नी से उत्पन्न पुत्री। कृपानाथ रायसाहब के साले हैं। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि रायसाहब अब इस संसार में अधिक दिन नहीं रहेंगे किन्तु उनके स्वास्थ्य की किसी को तनिक भी चिन्ता नहीं, कोई भी उनकी चिकित्सा कराने का प्रयत्न नहीं करता। सभी उनकी सम्पत्ति पर अपना आधिपत्य चाहते हैं, जिसके फलस्वरुप आपस में षडयंत्र रचते हैं और एक-दूसरे को अपना शत्रु समझते हैं। रायसाहब का पड़ोसी सिद्धेश्वर उन्हें परामर्श भी देता है कि "भाईयों, मनुष्य से बढकर रुपया नहीं है।" पर कौन उस परामर्श को सुनता है। वे सब स्वार्थ एवं धन के मद में ऐसे वशीभूत हो जाते हैं कि रायसाहब का निरीक्षण करने हेतु आये हुए डाक्टर को यह कहकर वापिस कर देते हैं कि अब आपकी आवश्यकता नहीं, काम तो प्रायः समाप्त हो गया। अंत में जब अंबिका और दीनानाथ रायसाहब का बॉक्स खोलते हैं तभी वे (रायसाहब) आँखे खोल देते हैं - अपने प्रति किये गये व्यवहार से वे एकदम विक्षिप्त हो उठते हैं, क्षोभ से वे बेचैन हो जाते हैं और पुनः बर्मा जाने को तैयार हो जाते हैं, क्योंकि वे अपने कुटुम्बियों की स्वार्थवृत्ति और वास्तविकता से परिचित हो गये हैं। आज का मानव मानवता से हटकर पशुता पर उतर आया है। लेखक ने स्वार्थी और धन-लोलुप व्यक्ति के विकास के लिए प्रमुख पात्र की मृत्यु की कल्पना करके इस प्रसंग को और भी यथार्थ बना दिया है।

'मंदिर के द्वार पर' शीर्षक एकांकी एक सामाजिक एकाकी है। आज के वैज्ञानिक युग में भी भारतीय समाज अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक रुढियों को गले लगाकर जी रहा है। छुआछूत और वर्गभेद जैसी सामाजिक विकृतियों ने हिन्दू-समाज को खोखला और विघटित कर दिया है। समाज के नव-निर्माण के लिए इन विकृतियों से समाज को मुक्त करना चाहिए। भट्टजी ने तत्सम्बंधी अपने विचारों को 'मंदिर के द्वार पर' नाम से प्रस्तुत किया है जिसकी कथा-वस्तु इस प्रकार है - छमिया का बेटा हरि तथा उसकी बिरादरी को लोगों ने मिलकर मुस्लिम आक्रमण से हिन्दू मंदिर की रक्षा की। लेकिन मंदिर के पुजारी

की नजरों में ऐसे सच्चे श्रद्धालु और अपनी जान की बाजी लगानेवाले अछूत हरि का कोई महत्व नहीं है। मंदिर में शराबी, चोर, जुआरी, गरीबों का शोषण करनेवाले सेठ-साहूकारों का अबाध प्रवेश है। लेकिन ईश्वर के प्रति अनन्य श्रद्धा जतानेवाले हरिजन मंदिर में ईश्वर-दर्शन के अधिकार से वंचित रहते हैं। पूजा के इच्छा से मंदिर में प्रवेश करने का यत्न करनेवाले हरि पूजारी द्वारा पीटा जाता है। मंदिर की रक्षा करते हुये हरि को मुसलमानों के प्रहार से उतनी चोट नहीं आयी थी जितनी पूजारी के डंडे से हरि को चोट आई। एकांकी के अंत में पूजारी को अपनी गलती का एहसास होता है। प्रस्तुत एकांकी समाज को विघटित करनेवाले तत्वों को उजागर करती है।

'दो अतिथि' में आर्य-समाज के उपदेशकों के भोजन करने के ढंग का व्यंग्यात्मक चित्रण है। दो आर्य-समाजी एक स्टेशन मास्टर के असमय में अतिथि बनते हैं। दोनों के कहने और करने में बहुत अंतर है। दोनों भोजन करने में पेटू प्रतीत होते हैं। उनमें से एक स्टेशन मास्टर अपने एवं पत्नी के लिए दूध लाते हैं, उसे भी पी जाता है। दुबारा दूध लाते हैं उसे दूसरा पी जाता है। पति-पत्नी इस सत्कार में भूखे ही सो जाते हैं। स्वयं नाटककार के शब्दों में यह एक व्यंग्य प्रहसन है जिसमें तथाकथित उपदेशक तथा प्रचारक वर्ग की लोभवृत्ति-जन्य लाचारी को व्यंग्यात्मक प्रकरण का रुप दे दिया है।

(iv) **'धूमशिखा'** एकांकी संग्रह में – 'धूमशिखा', 'नया नाटक', 'नए मेहमान', 'अंधकार की और....?', 'अघटित', 'मनुष्य के रुप' आदि एकांकियाँ संकलित हैं। प्रस्तुत संग्रह में नाटककार ने निष्पक्ष तथा तटस्थ भाव से समाज और साहित्य को परखा है। भट्टजी ने जीवन के पोष्य तत्वों को खोजकर समाज के व्यक्तियों के सम्मुख रखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार एक सभ्य, संस्कृत परिवार एवं समाज की स्थापना करना चाहता है। प्रस्तुत एकांकी में सामाजिक, पारिवारिक और राजनैतिक जीवन का चित्रण है। इन एकांकियों की समस्याएँ नवीनतम, संघर्षपूर्ण और यथार्थवादी हैं।

प्रथम एकांकी **'धूमशिखा'** है जिसमें मंदाकिनी विपीन और साधना ये तीन मुख्य हैं। कथा का आरंभ 'मंदाकिनी' के घर से होता है। मंदाकिनी अत्यंत रुग्ण अवस्था में चारपाई पर लेटी हुई है। उसकी छोटी बहन साधना उसकी सेवा कर रही है। साधना उसे विपीन नामक व्यक्ति का पत्र लाकर देती है, जिसे पढकर मंदाकिनी कुछ भावावेश में आ जाती है, परन्तु शीघ्र ही वह पुनः निराशा में डूब जाती है और तभी विपीन नामक व्यक्ति घर में प्रवेश करता है। मंदाकिनी प्रथमतः तो विपीन से बोलना भी उचित नहीं समझती क्योंकि वह उसका प्रेमी ही है जिसने उसे धोखा दिया और मंदाकिनी की अनुजा कमला से विवाह कर लिया

था। अब कमला की मृत्यु होने के उपरान्त वह उसके पास आता है। इधर विपीन बाबू कमला को दोषी ठहरा कर स्वयं निर्दोष बनता है, किन्तु सब व्यर्थ है, यद्यपि वह मंदाकिनी को नाना भाँति से समझाता है, उसके भ्रम और संदेह को दूर करना चाहता है, वह अपने पापों के लिए प्रायश्चित भी करता है। मदाकिनी को भी सत्य का पता उसकी सखी से मिल जाता है, फिर भी वह कहती है कि उसका सौन्दर्य नष्ट हो चुका है। वह क्षय रोग से पीडित है। वह उस कंकाल का क्या करेगा। विपिन कहता है कि वह उसे मसूरी ले जायेगा, स्वयं उसकी सेवा करेगा। इस प्रकार उसे बचा लेगा। मंदाकिनी प्रस्तुत-सी हो जाती है, परन्तु तुरन्त ही विपिन के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है और उसे कभी न आने की आज्ञा भी दे देती है। अंत में विपिन निराश होकर लौट जाता है।

इस प्रकार नाटक की कथा मानव-मन में पनपनेवाले संदेह तथा उससे उत्पन्न होने वाले परिणामों द्वारा किन-किन विकृतियों का जन्म होता है आदि का चित्रण है। नाटककार ने पुरुष की भ्रमर-वृत्ति की ओर भी संकेत किया है।

'विस्फोट' नामक एकांकी में आज के विद्वत समाज पर व्यंग्य है। मानव की यह मूलभूत त्रुटि ही है कि व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। महान् व्यक्ति जो भी कार्य करते है चाहे वह सामाजिक, पारिवारिक किसी भी दृष्टिकोण से महत्व न रखते हों, परन्तु आलोचक वर्ग उस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। सम्पादक वर्ग इस प्रकार की रचनाओ को अपने पत्र में प्रकाशित करके अपना गौरव समझते हैं, इन्हीं बालों को प्रस्तुत एकांकी में चित्रित किया गया है। नगेश एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने तीस वर्ष से साहित्य साधना की, जिसके परिणामस्वरुप उनकी इतनी प्रतिष्ठा जम जाती है कि प्रत्ये आलोचक चाहे उसे कविता का अर्थ समझ में न आवे, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। यही बात वे अपने मित्र से कहते हैं तथा उसे सिद्ध करने के लिए निरर्थक तुकबंदी का निर्माण कर 'साधना' नाम की पत्रिका में छपने के लिए भेज देते हैं। इधर नाटक के आरंभ में कवि-गोष्ठी का आयोजन अपरा देवी नामक महिला के घर होता है। इन्हीं के गणमान्य प्रायः सभी वेदों के आलोचक वहॉ उपस्थित होते हैं। सिद्धश्वर नामक व्यक्ति साधना में छपी उस कविता का अर्थ पूछता है। सभी आलोचक अपने अपने वाद का प्रतिपादन उस कविता में करते हैं। इसी विषय को लेकर उनमें हाथापाई की नौबत आ जाती है। तभी साधना के संपादक का प्रवेश होता है। वह नगेश कवि द्वारा प्राप्त पत्र से उस रहस्य का उद्घाटन करते हैं। भेद खुलने पर सभी आश्चर्य एवं लज्जा के भाव में डूब जाते हैं। अंत में जलपान के पश्चात् एकांकी समाप्त हो जाता है। इस प्रकार की कथा विद्वानों में व्याप्त थोथी व्यक्तित्व की विडम्बना को चित्रित करती है। इसके साथ ही कवि गोष्ठियों में परस्पर व्यवहार के प्रति भी

नाटककार ने तीखा व्यंग्य चित्रित किया है।

'नया नाटक' की कथा एक ऐसे व्यक्ति (लेखक) की कथा से सम्बन्धित है जो साहित्य सृजन के द्वारा ही अपनी आजीविका चलाता है। इसमें साहित्यकार की मुसीबतों की कहानी कही गयी है और चलती-फिरती कुछेक समस्याओं की प्रस्तुति हुई है। इस एकांकी में जिस नाटककार की कहानी कही गयी है, उसकी मुसीबत है कि उसको लोग रात-दिन घेरे रहते हैं। किसी को उसकी रचना अपने पत्र में प्रकाशनार्थ चाहिए तो किसी को नौकरी के लिए सिफारिशी चिट्ठी। इससे साहित्य-सृजन के लिए उसे इतमीनान नही मिल पाता। इधर पत्नी है, जो चाहती है कि वह गृहस्थी के काम में हाथ बटाये। लोगों की भीड के छॅटने पर जो थोड़ा समय उसे साहित्य-देवता की सेवा के लिए मिल पाता है तो मकान-मालिक के भाई का दामाद है। इससे किराये के न बढ़ने की हालत में वह मकान खाली तो करा ही लेगा, चाहेगा तो पुलिस की हिरासत में भी पहुँचा देगा। भाड़ा भी गुजरे महीनों से ही बढाना होगा। इस तरह एक नयी मुसीबत नाटककार के सामने मुँह बाये खडी है। मकान-मालिक के साथ नाटककार का झगड़ा होता है। नाटककार उसे धमकी देता है कि वह उसका भंडाफोड़ अखबारों में करेगा, उस पर नाटक रचेगा। भला इससे अधिक उसके वश में हो भी क्या सकता है। बाजार का भाव रोज सुरसा के मुँह की तरह बढ़ता जा रहा है। कॉलेजवाले नाटककार को 12½ प्रतिशत की दर से मँहगाई का भत्ता देते हैं। लेकिन मँहगाई क्या सचमुच साढे बारह प्रतिशत की दर से ही बढ़ी है? नाटककार देख रहा है कि पूँजीपतियों ने साधारण लोगों का जीना मुहाल कर दिया है। वह कहता है– 'जीना दूभर कर दिया है दुष्टों ने। मनुष्यता रह ही नहीं गयी है। सारा संसार पूँजीपति अजगर के मूँह में धीरे-धीरे घुस रहा है, निरुपाय, निर्बल, असहाय।'[115]

'नये मेहमान' की कथा के द्वारा 'मान-न-मान, मैं तेरा मेहमान' बननेवाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति के प्रति करारा व्यंग्य है। राजनाथ मध्यम श्रेणी के परिवार का स्वामी है। अत्यधिक गर्मी के कारण उन्हें और भी कष्ट का सामना करना पडता है। राजनाथ की पत्नी रेवती पन्द्रह दिन से शिरस वेदना से पीडित है। राजनाथ एवं रेवती अपने निर्वाह के लिए विचार करते हैं तभी दो अनजाने व्यक्ति बीकानेर से यहाँ आते हैं। किन्तु उन्हें किसी ओर स्थान पर जाना था – वे राजनाथ से कोई-न-कोई परिचय निकालना चाहते है। परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती। अंत में राजनाथ स्वयं ही किसी वैद्य का नाम लेता है जिसके यहॉ वास्तव में वे व्यक्ति आये हुए थे। एक ओर राजनाथ का पुत्र उन्हें पहुँचाने जाता है तो दूसरी ओर रेवती का भाई घर ढूँढता हुआ आ जाता है। उसकी सारी वेदना समाप्त हो जाती है। वह सभी चिन्ताओं को छोडकर अपने भाई के लिए भोजन बनाती है। राजनाथ के पूछने पर कि पहले आनेवाले मेहमानों और इन मेहमानों में क्या

अंतर है, रेवती कहती है कि यहाँ अपनत्व का भाव है।

इस प्रकार एकांकी की कथा व्यक्ति के अपने तथा पराये भाव पर भी प्रकाश डालती है। मानव अनेक कठिनाइयों के विद्यमान होने पर भी, जिसे अपना समझता है उसके लिए सहर्ष सर्वस्व देने को उद्यत रहता है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान समय में बढ़ती हुई मॅंहगाई के कारण मध्यमवर्ग के निर्वाह की समस्या पर प्रकाश डालती है। व्यर्थ ही अतिथि बन जाने वाले व्यक्तियों पर अच्छा-खासा व्यंग्य है।

'अंधकार और....' एकांकी की कथा मानव हृदय के दो चित्रों को लेकर चलती है। एक ओर मानव अपने गुणों के कारण देवता से भी श्रेष्ठ बन जाता है तो दूसरी ओर अपने दुर्गुणों के कारण वह पशु से भी बदतर हो जाता है। कैप्टन महेन्द्र को गोविन्द नाम के निर्दोष व्यक्ति पर संदेह होता है कि वह उसकी बहन रमा को कुदृष्टि से देखता है। गोविन्द रमा की सखी उमा के पति है जो कि महेन्द्र के नगर के किसी कॉलेज में प्रोफेसर हैं, कुछ दिन के लिए रमा के घर ठहर जाते हैं। एक दिन रमा के साथ हँसते हुए देखकर महेन्द्र का संदेह विश्वास में परिवर्तित हो जाता है। इसके अतिरिक्त महेन्द्र का मित्र हरीन्द्र जो स्वयं रमा से विवाह करने का इच्छुक है, उसे भड़काता है। महेन्द्र और हरीन्द्र शिकार खेलने के लिए गोविन्द को वन में ले जाते हैं और शेर के माँद से बाहर आने पर मचान से गोविन्द को ढकेल देते हैं। परिणामस्वरुप शेर गोविन्द को अपना भोजन बना लेता है, परन्तु घर आकर महेन्द्र को रमा से वास्तविकता का पता चलता है। गोविन्द को निर्दोष समझकर वह पश्चाताप करता है। पाप का निवारण करने हेतु वह गोविन्द के माता-पिता से क्षमा माँगता है। गोविन्द के पिता सबकुछ सुनने के पश्चात् भी उसे पुत्रवत् प्यार करते हैं, उसे सदैव के लिए क्षमा कर देते हैं किन्तु गोविन्द की माँ और पत्नी इस दुःखद समाचार को सुनकर मूर्च्छित हो जाती है।

इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी की कथा मानव हृदय की उदारता तथा स्वार्थ के ही कारण होने वाली तुच्छता को लेकर चली है। गोविन्द का पिता महान् आदर्श प्रस्तुत करता है। उसका पुत्र स्नेह विशाल है। वह अपने पुत्र को भी प्यार करता है और उसके हत्यारे को भी उसी प्रकार स्नेहकरता है। दूसरी ओर कैप्टन महेन्द्र हैं जो छोटे-से संदेह के कारण गोविन्द की हत्या कर देता है। हरीन्द्र भी अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए गोविन्द को अपने मार्ग की बाधा समझकर महेन्द्र को उत्तेजित करता है। इस प्रकार आज का मानव निर्दोष व्यक्ति पर केवल भ्रमवश या आवेश में आकर अनेक प्रकार के अत्याचार करता है। समाज में सत्य, चरित्रता आदि के नाम पर पाप, अत्याचार, अनैतिकता, आदि का बोलबाला है। भट्टजी ने इन सभी समस्याओं को अपने कांकी का विषय बनाया है।

'अघटित' नामक एकांकी की कथा का संबंध राजा योगेन्द्रसिंह तथा उनके दीवान ललितमोहन की कथा से संबंधित है। भारत में रियासतों के विलीनीकरण से पूर्व का चित्र है। भारत सरकार द्वारा भेजे गए विलीनीकरण के सिद्धान्त को सभी रियासतें स्वीकार कर लेती हैं। महाराज योगेन्द्रसिंह विचारमग्न हो जाते हैं कि अब क्या किया जाये? रियासत के चले जाने के उपरान्त उनके सम्मुख कितनी बाधाएँ आएँगी, यही विचार उन्हे व्याकुल किये हुए है। एक ओर वे दीवान ललित मोहन को पचास लाख रुपया निकलवाने का आदेश देते हैं, दूसरी ओर दीवान ललित मोहन महाराज योगेन्द्रसिंह से घृणा करता है। उनके कुल की कुमारी कन्या का महाराज ने शील भंग किया था। उसने भी महाराज की पुत्री का शील भंग करने की प्रतिज्ञा करके कोषाध्यक्ष से चाबियाँ ले लीं और सारा धन अपनी पत्नी के नाम करवा दिया। पत्नी को उसके पिता के घर भेजकर स्वयं राजकुमारी से विवाह करने का प्रयत्न करता है। महाराज के पूछने पर कि चाबियाँ कहाँ हैं, वह उत्तर देता है कि वे तो केन्द्रीय सचिवालय में जमा कर दी गई हैं। आपको कोष से धन नहीं मिल सकता। वह राजा को इस शर्त पर कि यदि वह राजकुमारी को भेज दे, बीस लाख रुपये दे देता है। महाराज के जाने के बाद एक काँग्रेसी सज्जन ललित मोहन से किसी अन्य की भूमि पर अपना आधिपत्य कराने के हेतु सहायता माँगने आता है। ललित मोहन उसकी सहायता करने का वचन देता है। उसके जाने के पश्चात् राजकुमारी ललित मोहन के पास आती है। वह पहले तो क्रुद्ध होती है, किन्तु अंत में विवश होकर अपना समर्पण कर देती है। तभी योगेन्द्रसिंह आकर कहते हैं – 'ललित मोहन, सारा रुपया केन्द्रीय सचिवालय में जमा करा दो, मुझे कुछ नहीं चाहिये।' इसी समय ललित मोहन की पत्नी अपना उत्तराधिकार पत्र फेंककर कहती है - 'मैं केवल तुमको चाहती हूँ, धन को नहीं।' ललित मोहन का मन भी उन घटनाओं को देखकर परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार इसमें उच्चाधिकारियों द्वारा जनता पर कियेगये अत्याचारों का प्रदर्शन करती है। देशभक्त बननेवाले व्यक्तियों के ढोंग पर भी व्यंग्य है। पुरुष नारी को केवल उपभोग की वस्तु समझता है।

अतः प्रस्तुत एकांकी संग्रह में समाज के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है, और कुछ में मानव जाति की विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन हुआ है। सभी एकांकियो की रचना किसी-न-किसी उद्देश्य को लेकर की गई है। आधुनिक समाज में व्याप्त विभिन्न रुढियों, दुर्बलताओं की स्वाभाविक किन्तु कटु आलोचना की गई है। धूमशिखा के एकांकी नाटकों में विशेष रुप से भट्टजी की आत्मानुभूति की पुकार है।

इस प्रकार भट्टजी के सामाजिक नाटकों से अभिप्राय उन एकांकियों से है, जिनमें वर्तमान जीवन में उठनेवाली विविध समस्याओं तथा उनसे संघर्षो, कुरीतियों, धर्माडम्बरो, धर्म पर होने वाले अनाचार

और व्यभिचार, अंध-विश्वास तथा आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण है। 'धूमशिखा', 'समस्या का अंत', 'आज का आदमी' आदि एकांकियों की समस्या आधुनिक युग की अत्यंत प्रमुख समस्या है।

(V) **'आज का आदमी'** एकांकी संग्रह में समाज के विभिन्न रुपों का यथार्थ एवं सजीव चित्रण है। प्रस्तुत एकांकी संग्रह में जीवन संघर्ष की प्रेरणा की अपेक्षा सामाजिक आचार-विचार पारिवारिक समस्यायें, सामाजिकता, कृत्रिम उथलापन, समाज के दुराग्रह आदि का चित्रण है।

'आज का आदमी' एकांकी लेखक ने पूँजीपतियों के कथनी और करनी के अंतर का चित्रण किया है। धनवान, समाज-सुधारक के रुप में बडी-बडी बातें करता है। उसमें उसका स्वार्थ नीहित रहता है। अपने भौतिक सुख के लिए मिथ्याडंबर का ढोंग करता है। कथासार इस प्रकार है - सेठ धनपतराय अपने धन के कारण समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में स्थान रखते हैं। वह वास्तविक रुप से अपने स्वार्थ सिद्धि में लीन रहते हैं, किन्तु समाज में मान एवं प्रतिष्ठा के लिए, यश के लिए दान आदि देते हैं। स्वामी संत आदि के द्वारा धर्म उपदेश दिलवाते हैं। सेठ साधुओं के सम्मुख अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति का प्रतीत होता है, किन्तु दूसरे क्षण अपने व्यापार की उन्नति के लिए रिश्वत देता है ताकि इन्कमटैक्स से बच जाए। स्वयं बड़े-बडे अफसरों की चाटुकारी करता है, किन्तु दूसरों को उपदेश देता है "यह चरित्र है हमारे देश का पूरा पैसा लेंगे पर काम से जी चुरावेंगे।" एक ओर धनपतराय निम्न श्रेणी के व्यक्तियों की भलाई के लिए प्रचार करता है, किन्तु दूसरी ओर अपने नौकर, मुंशी आदि के रुपये देने में भी आना-कानी करता है। यही नहीं, अपनी ऐश्वर्य-लोलुपता की पूर्ति के लिए ही वह स्त्रियों को अपने यहाँ रखता है। अंत में उसकी इन वृत्तियों को देखकर स्वामीजी का मन चीत्कार कर उठता है। वह विरक्त भाव दिखाते हुए चले जाते हैं और अंत में उनके ये शब्द – 'पहले अपने को पहचानो, अपनी आत्मा की आवाज सुनो धनपत, आत्मा की आवाज। तभी देश का और अपना कल्याण कर सकोगे। शिक्षा और विवेक को मिला दो, जीवन को एक रस बनाओ।" इस प्रकार भट्टजी ने आधुनिक पूँजीपति जो समाज सुधारक का रुप धारण करते हैं, पर कठोर एवं तीखा व्यंग्य है। आज के सुधारक, सेठ एवं अन्य व्यक्तियों के आदर्श और कर्म में अत्यंत भेद है। अर्थात् आधुनिक मानव के दोहरे व्यक्तित्व पर व्यंग्य है।

'मन का रहस्य' एकाकी में चित्रित किया गया है कि आज यदि मानव सत्य का आसरा लेता है, उस पर अन्य व्यक्ति अनेक प्रकार के लांछन लगाते हैं। दामोदर एक सम्पन्न परिवार का सदस्य है। वह अपने कार्य की अनुसार ही सम्पत्ति लेता है। असत्य, रिश्वत आदि को वह बुरी निगाह से देखता है। छल द्वारा धन

कमाना पाप समझता है। अतः दामोदर अपने दरिद्र पंडित की कन्या के विवाह में भी सहायता देता है, किन्तु उसीके मित्र के लड़के ने उस पर मुकदमा दायर करवा दिया। वह सत्य का आग्रही होने के कारण मुकदमा हार जाता है। उसके बँगले की कुडकी होने की नौबत आ जाती है। किन्तु सदैव सहायता करने के कारण ईश्वर उसकी सहायता करता है। वृद्ध पंडित की कन्या का विवाह करने के उपरांत मृत्यु के समय वृद्ध पंडित उसे आशीर्वाद देता है कि दामोदर का ईश्वर भला करे। अंत में उसका मित्र आकर उससे क्षमा माँगता है। इस प्रकार दामोदर की मान-प्रतिष्ठा नष्ट होते-होते बच जाती है।

प्रस्तुत एकांकी में नाटककार ने आज के मानव के दो रुप प्रस्तुत किये हैं – एक वह जो मानवता से अभिभूत है, अपनी हानि उठाकर भी वह दूसरों का भला चाहता है, किन्तु दूसरा वर्ग उन व्यक्तियों का है जो अपने स्वार्थ के लिए, भौतिक सुख के लिए दूसरों की अवन्नति चाहता है। छल-छद्म एवं कपट जिनके अस्त्र हैं भीतर से वे कुछ और हैं बाहर से कुछ और। इस प्रकार आधुनिक मानव की मानसिक वृत्तियों का यथार्थ-चित्रण है। प्रस्तुत एकांकी के द्वारा जीवन में नैतिक मूल्यो की महत्ता और उसके प्रति आस्था प्रतिपादित करने का एकांकीकार का स्तुत्य प्रयास है। मानव-जीवन का व्यवहार मन से प्रेरित रहता है। अतः मन मनुष्य के लिए मित्रवत् कार्य करता है।

'**सत्य का मंदिर**' एकांकी में आज के मानव समाज की विकृतियों पर कठोर प्रहार है। उस पर सदैव उसका संशयी मनरुपी अंकुश दुर्भावनाओं और कुँठाओं का प्रहार करता रहता है। वह सत्य की डींग हाँकने के साथ-साथ असत्य का प्रतिष्ठापन करता है। – छल-कपट मानो उसके अस्त्र हैं, जिनके द्वारा वह विजय प्राप्त करता है। कथा इस प्रकार है – नगर में एक सिद्ध मुनि आकर सत्य का प्रचार करते हैं। उस समय जनता उनका अपमान करती है, अतः वह किसी अन्य स्थान पर चले जाते हैं। बस इसी को मूलाधार मानकर कुछ उपदेशक उनकी महिमा का गान करते हैं, उनके नाम पर सत्य-मंदिर की स्थापना करते हैं। नगर के धनवान वयक्तियों से धन एकत्रित करते हैं और इस प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। अंत में उन महात्मा के नाम पर मंदिर की स्थापना होती है तभी वे प्रकट हो जाते हैं और वे जनता को कहते हैं - 'मेरे नाम पर इतना वैभव-विशाल मंदिर सत्य के प्रचार के लिए। सत्य का प्रचार क्या मंदिरों से होता है? सत्य का संबंध आत्मा से है। नेक नामों से है। जीवों पर दया करने से है। मन, वाणी, कर्म के एकत्व से है.. । 'मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामूहिक विकास के लिए हमारे यहॉ कतिपय नैतिक मूल्यों की महत्ता प्रतिपादित हुई है। ऐसे नैतिक मूल्यों में से एक है - सत्य का पालन करना। आज के मनुष्य में इन मूल्यों के स्थूल रुप को अधिक महत्व देकर कई प्रकार के संघर्षो को न्यौता दिया है। इस एकांकी में लेखक ने ऐसे मूल्यों के सूक्ष्म स्वरुप

की महत्ता को समझाया है।

'तीमारदारी' में एक मध्यम श्रेणी के परिवार का चित्र है। घर का स्वामी अस्वस्थ है, उसका ऑपरेशन हुआ है। डॉक्टर ने पूर्णरुप से आराम करने के लिए कहा है। उसे देखने के लिये परिवार केअन्य व्यक्ति आते हैं, किन्तु उस व्यक्ति के प्रति सहानुभूति प्रकट करने की अपेक्षा अपना कार्य करते हैं। अस्वस्थ के पास ही ऊँचे स्वर में चीखते हैं, आपस में झगडते हैं। अंत में परिवार का वही अस्वस्थ वृद्ध इस शोर से तग आकर चिकित्सालय में जाने की प्रार्थना करता हुआ इस लोक से विदा ले लेता है।

इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में मध्यम अनपढ़ परिवार के व्यक्तियों की स्वार्थ परता, हृदयहीनता आदि का सजीव एवं यथार्थ चित्रण भट्टजी ने किया है। आधुनिक युग के परिवार की विषमताएँ इतनी अधिक हो गई हैं कि सहज ही उनका निवारण करना असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन अवश्य है। संक्षेप रुप में यह एक व्यंग्यात्मक एकांकी है जो मूढता, स्वार्थपरता आदि के वातावरण के व्यक्त करने के साथ-साथ हमारे परिवार की जीवित समस्या को सामने लाता है। घर में किसी के बीमार हो जाने पर आने-जाने वालों के व्यवहार से जो विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है उसका चित्रण इसमें है।

'कुंदन और तुलसी' नामक एकांकी में हमारे समाज के युवकों के चरित्र के प्रति व्यंग्य है। वह अपनी काम-भावना को शांत करने के लिए अनेक कन्याओं का जीवन नष्ट कर देता है। इसी प्रकार एक युवक कुंदन और तुलसी की एकमात्र कन्या से विवाह करता है। विवाह के पश्चात् कुंदन और तुलसी को उसके कुकर्मो का पता चलता है। फिर अंत में वह अपनी नई सास से साढे तीन-सौ रुपये लेकर उनकी कन्या को अपमानित कर स्वयं किसी अन्य लडकी को लेकर भाग जाता है। कन्या पक्ष के व्यक्ति बहुत पश्चाताप करते हैं, पर सब व्यर्थ। प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से भट्टजी ने आधुनिक समाज और उसमें व्याप्त कलुषित वृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है। आज का समाज कितना घिनौना होता जा रहा है अर्थात् पतन के रास्ते पर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। आज मानव शिक्षा के नाम पर कोरे भाषण, उपदेश, प्रचार किये जाते हैं। सहायता, सहानुभूति के नाम पर केवल छला जाता है। बुरे से बुरे कृत्य करता हुआ भी मानव हिचकिचाता नहीं है। यह आज की कितनी बडी त्रासदी है, विडम्बना है। अतः मानव-मन की विभिन्न कुवृत्तियों का भट्टजी ने वास्तविक चित्र अंकित किया है।

'पर्दे के पीछे' भट्ट जी के नवीनतम सामाजिक एकांकियों का संग्रह है, जिसमें आठ नए एकांकी

संकलित है। प्रस्तुत एकांकियों में आधुनिक समाज की नई-नई समस्याओं का यथा-समाज में आज के नवयुवक-युवतियों का पारस्परिक विडम्बनापूर्ण सम्बंध, युवती की आत्मनिर्भरता की भावना और युवक के प्रति उदासीन भाव, आत्म-प्रवर्चना, अर्थप्रधान संस्कृति के नए आदर्श एवं मूल्य आदि का व्यंग्यात्मक एवं संकेतात्मक चित्रण किया है। शिवदानसिंह चौहान के अनुसार – "प्रस्तुत संग्रह में वर्तमान समाज की सच्ची और क्रूर वास्तविकता को उघाड़कर रखा गया है। इसीलिए उनकी कला का अन्तःस्वर और उनमें व्यक्त क्षोभ और वेदना नैतिक हैं।"[116]

'नई बात' एकांकी में आज के सामाजिक जीवन में एक कवि की स्थिति एवं अर्थ-प्रधान प्रदर्शन प्रिय सभ्यता पर कटु आलोचना है। आधुनिक युग में व्यक्ति का सम्मान केवन उसकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर है, उसकी सांस्कृतिक एवं बौद्धिक योग्यता पर नहीं। एकांकी की कथा इस प्रकार है – 'किशोरीलाल एक ऊँचे पद पर आसीन सरकारी अफसर हैं जो कि पूर्णतः अंग्रेजी शासन के नौकरशाही साँचे में ढले हुए हैं। उनकी दृष्टि में उसी व्यक्ति का मूल्य है, उसी के प्रति सम्मान है जिसके पास भौतिक प्रदर्शन के लिए बहुत साधन है, जो रुपये को पानी के सदृश बहाकर, दूसरे पर टीप-टाप कर अपनी प्रशंसा चाहता है। किशोरीलाल की ऐश्वर्य-विलासमयी पत्नी सुनंदा भी उन्ही के विचारों से सहमत है। उसमें अपने से निम्न वर्ग के मनुष्यों को मनुष्य न समझने का अहंकार और भी दुर्विनीत है। ऐसे विचारो से युक्त दम्पत्ति के मन मे कवि कलाकार की जाति नीच और निकम्मों की जाति है। समाज के सही मार्ग पर लगाने, जनरुचि का परिष्कार करनेवाले कवि तिरस्कृत रहते हैं। सरकारी अफसर किशोरीलाल के शब्दों में – "मैं कविता को लग्जरी मानता हूँ और कवि को व्यर्थ का मनुष्य । इसके अलावा हिन्दी में कवि है कहाँ और हिन्दी में भी क्या है ?"[117]

ऐसे ही एक अभावे कवि विश्वभूषण की पत्नी कुंतल दैवयोग से सुनंदा की सखी, पीहर की पडोसिन और सहपाठिन है। वह अपने निर्धन पति और उजडी गृहस्थी का रोना लेकर सुनंदा के पास दफ्तर में विश्वभूषण की नौकरी की व्यवस्था के कारण एक याचक के रुप में आती है। किन्तु सुनन्दा अपने ऐश्वर्य के वैभव में डूबी हुई विश्वभूषण के प्रति अपनी भर्त्सना और कुंतल के प्रति करुणा का भाव प्रदर्शित करती है। उसी समय सुनन्दा के पति एक दूसरे उच्चाधिकारी अफसर रघुवंश के साथ घर आता है। कुंतल का परिचय मिलने के उपरांत दोनों मित्रों में कवि की सामाजिक अनुपयोगिता को लेकर विवाद छिड जाता है। इस विषय में किशोरीलाल और रघुवंश के विचार एक-दूसरे से पूर्णतः भिन्न हैं। इसी बीच कुंतल अपने स्वाभिमानी पति को वहाँ बुला लेती है। उसके आते ही वाद-विवाद का स्वर तीव्र हो जाता है। यद्यपि

विश्वभूषण के तर्क अधिक अर्थगर्भित और संगतपूर्ण हैं, उसकी आत्म-सम्मान की धारणा भी अफसरी दम्भ से श्रेष्ठ है और उसकी उपेक्षा की दृष्टि के सामने पडकर इन अधिकारियों का व्यक्तित्व केंचूए की तरह तिलमिला-कर सिकुड़ जाता है - किन्तु फिर भी इस जगह एक अस्वाभाविक घटना घटित होती है - तर्क से हृदय परिवर्तन का कुछ ऐसा अकल्पनीय चमत्कार हो जाता है कि किशोरीलाल और सुनन्दा दोनों ही समाज में कवि की सर्वोच्च महत्ता स्वीकार कर लेते हैं और सभी केवल दिग्भ्रान्त, व्यक्तित्वहीन श्रीमती चोपडा के अतिरिक्त कवि का स्तुति-गान आरंभ कर देते हैं। किशोरीलाल की पत्नी सुनन्दा तो उनकी शिष्या तक होना चाहती है और उनके जीवन-निर्वाह के लिए आर्थिक सहायता करती है, किन्तु कवि उन नोटों को, विपुल धनराशि को भिखारियों में वितरित कर देता है। उसकी दृष्टि में निर्धनों को आर्थिक सहायता देना ही रुपये का सदुपयोग है। विश्वभूषण स्वयं भूखा रहकर अन्य व्यक्तियों को भोजन कराने में अधिक आत्मसंतोष का अनुभव करता है। थोडे से विवाद के उपरान्त किशोरीलाल, सुनन्दा, रघुवंश, कुन्तल आदि इन रुपयों के ऐसे सदुपयोग की कल्पना करके गद्‌गद्‌ और आत्मविभोर हो उठते हैं, और बाहर से आनेवाले कवि के जयकारों के साथ पटाक्षेप हो जाता है।

प्रस्तुत एकांकी में एकांकीकार का लक्ष्य घोर-भौतिक सांसारिकता पर मानववादकी विजय कर कवि-जीवन की महत्ता चित्रित करना है। आधुनिक युग में मिथ्याडम्बर पर तीखा व्यंग्य है, आज का मानव पूँजी के मद में सांस्कृतिक एवं बौद्धिक मूल्यों को नगण्य समझने लगा है। इसी पतन की ओर लेखक ने संकेत किया है।

'बाबूजी' शीर्षक एकांकी में पीड़ित और वयोवृद्ध बाबूजी ने अत्यंत कठिन परिश्रम करने के उपरांत अपने पुत्रों को प्यार से पाला, शिक्षित और विवाहीत किया और परिवार के लिए एक बड़ा मकान बनवाया, किन्तु अपने प्रति कि गए सभी उपकारों को भूलकर उनके पुत्र बाबूजी का तिरस्कार करते हैं। सर्वप्रथम उनका ज्येष्ठ पुत्र भोलानाथ अपने कमरे से निकाल देता है जिसमें वे अपने जीवन के अंतिम दिन काटना चाहते थे। फिर दूसरा, तीसरा और चौथा पुत्र अपनी-अपनी नई गृहस्थियों को जमाने के लिए अधिक स्थान पाने की स्पर्धा से एक कमरे से, ऊपर से नीचे की मंजिल में और अंत में घर से बाहर ही निकाल कर नीम के पेड के नीचे उनकी खाट पहुँचा देते हैं। अपनी इस अनुश्रुत पितृभक्ति का औचित्य प्रामाणित करने के हेतु भोलानाथ विज्ञान का आश्रय लेता है कि "नीम के पेड के नीचे रहना स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा है।" किन्तु केदार को इतना भी व्यावहारिक ज्ञान नहीं है। वह बाबुजी को श्मशान घाट पहुँचाने की आसन्न समस्या का समाधान सोचता हुआ कहता है – 'सबसे बडा फायदा तो यह है कि उन्हें अब आगे जाने में

ज्यादा सहुलियत होगी।"[118] इस प्रकार अपने वृद्ध और पीड़ित पिता को मरने के लिए नीम की छाया में प्यासा डाल दिया। इस दृश्य को देखकर (पिता-पुत्र सम्बंध की ऐसी अकृतज्ञ परिस्थिति पर) भारतीय अन्तःकरण के प्रतीक रामू और चुनिया घर के नौकर चुपचाप अश्रु बहाते हैं। उनके दिल में इस नीचता को देखकर ग्लानि और वेदना भर जाती है।

आधुनिक युग में मानवीय संबंधों की टूटन और उसकी पीडा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत है। स्वार्थ में अंध पुत्र स्वयं पिता की उपेक्षा और पिता के प्रति अत्यंत निर्मम होते हुए दिखला कर लेखक ने आधुनिक मानव-समाज के प्रति व्यंग्य किया है।

'स्वतंत्रता का युग' एकांकी में प्रोफेसर जयन्त की पत्नी मीना, जो प्रेम की पवित्रता और अपने शिशु की मातृवत्सलता को ठुकराकर समाज की मृगतृष्णा के पीछे अपना सर्वस्व लुटाकर दौड रही है। पहले तो वह अपने पति को धोखे में रखती है, किन्तु जब वास्तविक बात जयंत को मालूम हो जाती है कि उसके प्रेमियों में कई सेठ हैं जो उसे रेसकोर्स, सौन्दर्य प्रतियोगिता आदि के अखाडों में उतारकर अपना स्वार्थ पूरा कर रहे हैं, तो वह अपने पति जयंत को वाग्बाणों से छेदती है। विवाह संबंध के विषय में वह पुराने मूल्यों को धिक्कारती है। भट्टजी ने एकांकी में पति-पत्नी के वार्तालाप का एक मार्मिक अंश प्रस्तुत किया है – 'मीना - क्या घर में पिसते रहना जिन्दगी है - आज नारी का दृष्टिकोण बदल गया है, वह शादी को अब एक कांट्रैक्ट मानती है, जब तक भी निभे।

जयंत - शायद तुमने अनुभव नहीं किया कि कांट्रैक्ट में व्यावहारिकता है, हार्दिकता नहीं, शरीर है, प्राण नहीं।

मीना - यदि तुम मेरे पति हो तो मैं तुम्हें सबकुछ नहीं दे सकती। मेरी इच्छायें हैं, मेरा शौक है। मैं मजबूर नही हूँ कि एक ही दुकान से हमेशा खरीदती रहूँ। तुमने मुझे अपरुप भी कर दिया है। मेरी इच्छाओं को भी कुचल डाला है।"[119]

इस प्रकार मध्यम परिवार की साधारण स्त्री होते हुये भी उसकी मित्र-मंडली बढ़ी-चढी है। उसे अपने बीमार शिशु की जो उसका प्यार पाने के लिये व्याकुल है, कोई परवाह नहीं है, अपने पति का कोई ध्यान नहीं है। घर गृहस्थी का ध्यान न करती हुई अपने एक धनी मित्र के साथ मसूरी जाने के लिए तैयार हो जाती है। अपने पति के मना करने पर यह उत्तर देती है–"मैं तो फैमिली-प्लेनिंग के पक्ष में हूँ। मुझे नहीं चाहिये यह चिलपिल तुम्हारी। हाँ। नहीं तो अरे। तुम चुप हो? गंभीर हो गये। क्या बात है? तुम चिन्ता मत करो। मैं रेस में जीतकर सरला का रुपया चुका दूँगी'। .... मैं खुद घोड़े रखूँगी और रेस कराऊंगी। इधर मेरा

ख्याल है, ब्यूटी कांटैस्ट मे भी चुन ली जाऊँगी। मैं ने तुम्हें बताया नहीं की ब्यूटी-एसोसिएशन वाले मेरे पीछे पड रहे हैं।"[120] इस प्रकार कहती हुई अपने एकमात्र पुत्र को ज्वर से कराहता हुआ छोडकर भ्रमण करने चली जाती है। एक सुखी परिवार विच्छिन्न हो जाता है।

प्रस्तुत एकांकी में भट्टजी ने स्वच्छन्दता-प्रिय पाश्चात्य जगत् में व्याप्त उन्मुक्त प्रेम, सौन्दर्य प्रतियोगिता, फैमिली-प्लेनिगं, रेसकोर्स आदि में रुचि रखनेवाली एक आधुनिक नारी का चित्रण अंकित किया है। आधुनिक समाज ऐसी नारियों के घृणित, क्षोभ और ग्लानि से पूर्ण वृत्ति के परिणाम स्वरुप पतन के गर्त में गिर रहा है। एकांकी का मुख्य प्रतिपाद्य है - जिस प्रकार पुरुष के प्रति नारी का उपेक्षा भाव स्वाभाविक और अहितकर है उसी प्रकार उसकी स्वच्छन्दता प्रियता भी नारी-जीवन को पूर्णतः नष्ट कर देती है। आज के सभ्य समाज की एक झॉकी प्रस्तुत है। आधुनिकता और स्वतंत्रता की दौड में मनुष्य भावशून्य और भोगवादी होता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभाव के चित्र यहाँ प्रस्तुत हैं।

'बार्गेन' एकांकी का नायक कैलाश एक अंग्रेजी समाचार पत्र का संपादक है। वह दो युवतियों कुंती और सरोज से एक साथ प्रेम का संबंध स्थापित कर गर्भ धारण करती है। इधर सरोज ने अभी प्रेम की गली में पैर ही रखा है। कैलाश भ्रमर-वृत्ति साथ-साथ एक ओर तो विवाह का कट्टर विरोधी है किन्तु दूसरी ओर सरोज को जीतने के लिये उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है। इधर कुछ घटनाओं के घटित होने के कारण कुंती को अपने गर्भ का पता चलता है और वह भी कैलाश को विवाह करने के लिये बाधित करती है। कैलाश डाक्टर की सहायता से गर्भपात कराने के लिये कहता है, किन्तु इस बीच कुंती की बात सरोज पर और सरोज की बात कुंती पर प्रकट हो जाती है और दोनों उस धोखेबाज क्रूर कैलाश को अपने अन्तःकरण से धिक्कारती हैं। कैलाश के पिता भी अपने साधु पुत्र की अन्यत्र व्यवस्था करने में तल्लीन हो जाते हैं।

जहॉ प्रेम का स्वतंत्रता के नाम पर मिथ्याचरण, धोखाधडी का अभिनय हो वहाँ पर तथा स्वतंत्रता की भ्रांत धारणा से उत्पन्न उच्छृंखलता के कारण युवती अपने लिये अनेक कठिनाईयों को उत्पन्न कर लेती है। 'बार्गेन' में भट्टजी ने बुर्जुआ-प्रेम के अभिनय के पीछे छिपे यथार्थ को उद्घाटित किया है। उच्चवर्ग से एक स्तर नीचे, बुद्धिजीवियों मे व्यक्ति-स्वातंत्र्य की धर्म-ध्वजा फहराकर भारत की जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के नाम पर अविवाहित होने के संकल्प बनते हैं, किन्तु साथ ही गर्भ-निरोध की विधियों का प्रयोग करते हुए एक साथ ही अनेक स्त्रियों या पुरुषों से अनियंत्रित प्रेम-अभिनय तथा यौन सम्बंध आदि भी चलते है। मूल भावना यह है कि उच्छृंखल प्रेम का आनन्द तो भरपूर मिले, किन्तु कोई दायित्व न उठाना पडे.....[121]

प्रस्तुत एकांकी में नाटककार ने यह बताने की कोशिश की है कि – नैतिक संबंध टूट जायें तो कैसा भ्रष्टाचार, स्वच्छन्दता, वैषम्य और प्रवंचना फैल सकती है - इसका व्यंग्यपूर्ण चित्र अंकित किया है। आधुनिक समाज में भौतिक मूल्यों को महत्वहीन कर दिया गया है। भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभाव को यहाँ दर्शाया है।

'पर्दे के पीछे' एकांकी में बडे-बडे पूँजीपति इनकमटैक्स बचाने के लिए क्या-क्या काम करते हैं। सेठ छीतरमल सजातीय सेठों की तरह इनकमटैक्स वालों को धोखा देने के लिये अपनी बहियाँ बदलवाता है, समाचारपत्रों में अपने दान-पुण्यों की प्रशस्तियाँ छपवाने के लिए परिन्दों का अस्पताल खुलवाता है और कांग्रेसी नेताओं को चंदे की भारी पूँजी देकर पुलिस और कानून की पकड से मुक्ति पा दरिद्रों का निर्ममता से शोषण करता है, चोरबाजार चलाता है और न मालूम क्या-क्या कर्म करता है, जिससे उसकी तिजोरी में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो जाती है। दूसरी ओर मध्यवर्ग और निम्नवर्ग पिसता जा रहा है - मँहगाई और शोषण से व्यथित है। मध्यवर्ग को नवीन ढंग से लूटना ही धर्म रह गया है। प्रस्तुत एकांकी में हमारे समाज की, दूषित व्यवस्था चित्रित की गई है। कुछ राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की भी पोल खोल दी गई है। सर्वोदय समाज, देशभक्ति, स्वदेशी प्रचारों में वास्तविकता का अभाव है। पूँजीपति सेठ के ये वचन कटु सत्य और व्यंग्य से परिपूर्ण हैं।

'मायोपिया' एकांकी की नायिका प्रोफेसर सुधी भी आधुनिक नारी का प्रतीक है। वह युवक के प्रति उपेक्षापूर्ण बाह्याडम्बर का नाट्य करती है। पहले वह तारक नामक युवक के प्रेम को निष्ठुरता के साथ तिरस्कृत कर देती है क्योंकि आरंभ में वह एक साधारण कोटि का व्यक्ति था, किन्तु कुछ समय उपरांत जब पन्द्रह सौ रुपये मासिक की आय पाकर अनामा से पाणिग्रहण संस्कार की विधि पूर्ण कर लेता है तब वह अपनी भूल पर अत्यंत व्याकुल हो उठती है। उसका हृदय ग्लानि, द्वेष से भर उठता है और उसके मन में पुरुष-द्रोह की अग्नि और भी भीषण रुप धारण कर लेती है। दूसरी ओर जब सुधी की शिष्या चंद्रिका अपने सहयोग एवं सेवा से केशव के मन पर अपना अधिकार कर लेती है तब सुधी के मन की ईर्ष्याग्नि अपना भयंकर रुप और भी भीषण कर जाती है। साथ ही यह अनुताप सुधी के हृदय को ओर भी खरोंचने लगता है कि उसका दूसरा प्रेमी भी हाथ से छूट गया। केशव का पहली बार अपमान कर सुधी पछताती है। वह अपने को अपूर्ण और अधूरी पाती है।

'गृहदशा' नामक एकांकी में नारी-मनो-विज्ञान, छोटी-छोटी बातों पर झगडे बहस तथा उससे होनेवाली हानियों का दिग्दर्शन कराया गया है। गिरधारी और रमा दोनो को विधाता ने एक-दूसरे के उपयुक्त

ही गढ़ा है - रमा अपनी पुत्री का विवाह अपने पडोसी के पुत्र से करना चाहती है, किन्तु बातों-ही-बातों में दोनों की गर्मागर्म बातचीत हो जाती है। वाग्युद्ध आरंभ हो जाता है। इसी प्रकार गिरधारी और कृष्ण मनोहर जो क्रमशः कन्या और वर-पक्ष के पिता हैं, व्यर्थ की बात पर झगड़ पडते हैं और निश्चित विवाह संबंध पूर्णतः टूट जाता है। इसके साथ कन्या के माता-पिता धन-हीन हैं, साथ ही व्यवहार कौशल से पूर्णतः अनभिज्ञ। कन्या के विवाह के लिए जिधर भी बातचीत करते हैं वहाँ तक पहुँचने से पूर्व ही किसी अकथ्य बात से वह संबंध टूट जाता है। प्रस्तुत एकांकी अत्यंत मार्मिक नाटक है। आधुनिक समाज में आज भी ऐसे पिछड़े अदूरदर्शी विवाहित दम्पत्ति दृष्टिगत होते हैं जो अपने वर्तमान तक ही देखते हैं और परिणामस्वरुप अपनी हानि कर लेते हैं, जिसे कुटिल गृहदशा का कुप्रभाव समजा जा सकता है।

'अपनी–अपनी खाट पर' हास्य प्रधान एकांकी है जिसमे नशे की मानसिक स्थिति का मनोरंजक चित्र अंकित है। इसमें मुख्यतः दो ही पात्र हैं - उमाकान्त और रमाकान्त। उमाकान्त की पत्नी द्वारा कही हुई बात से दोनों मित्रों के विचार-प्रवाह को एक नवीन मोड़ मिल जाता है। दोनों मित्र भाँग छानकर उसे पीने के पश्चात् अपनी-अपनी खाट पर प्रायः मूर्छित अवस्था में पड़े हैं और दोनों विचार विवेक और चेतना के बंधनों को तोड़कर तीव्रगति से जगत् और जीवन के प्रत्येक पहलू पर टीका-टिप्पणी करते हैं। शिवदानसिंह चौहान के शब्दों में -- "इसमें कहीं पूर्वविरचित हास-परिहास का व्यंग्य-विनोद नहीं है, लेकिन चेतना के बंधन ढीले होने पर विचार-पट पर आई हुई हर वस्तु के विकृत चित्रों के टुकडों को जोड़-संजोकर जो सहज हास का उद्रेक करनेवाला एक सम्पूर्ण चित्र बनाया जा सकता है। एक ओर तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनो मित्र भाँग की झोंक में अनर्गल बक रहे हैं, लेकिन उनकी बातें बेसिरपैर की नहीं है, उनके भीतर आजकल के अनेक साहित्यिक प्रवादों और फैशनों की व्यंग्यपूर्ण आलोचना है।"

प्रस्तुत संग्रह में भट्टजी ने विषय और विचार-वस्तु की संयोजना द्वारा जीवन की अनेक मार्मिक झाँकियॉ प्रस्तुत की हैं। इन एकांकियों में अकृत्रिम खुला वातावरण, वास्तविक समस्याओं और उनसे उत्पन्न बाह्य और आंतरिक जीवन के वास्तविक वैषम्य संघर्ष और नैतिक वेदन के निर्भ्रान्त चित्र चित्रित किये हैं। आधुनिक युग की समस्याओं के प्रति कठोर व्यंग्य एवं भर्त्सना के साथ-साथ भट्टजी ने सहानुभूति भी प्रदर्शित की है।

अंत में कहा जा सकता है कि आधुनिक एकांकीकारों में भट्टजी ही ऐसे प्रतिभाशाली कलाकार हैं जिन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं के साथ-साथ गाँधीवाद से प्रेरित होते हुए भी सामाजिक आचार-विचार, रुढिवादी

रीति-रिवाजों का खण्डन, समाज के कृत्रिम रहन-सहन का उथलापन, समाज की जीर्णता, दकियानूसीपन, समाज के दुराग्रह आदि अनेक समस्याओं को अपने एकांकियों का प्रतिपाद्य बनाया। मध्यवर्ग के पारिवारिक जीवन पर एक तीखा व्यंग्य आपकी अनेक रचनाओं में मिलता है। 'पर्दे के पीछे' आदि अन्य एकांकी संग्रहों के एकांकी व्यंग्य-प्रधान हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र के विचार दृष्टव्य हैं - "चिन्तन या अनुभव से परिपुष्ट भट्टजी की जीवन दृष्टि अब प्राचीन और नवीन, प्रवृत्ति और निवृत्ति, अनुशासन और स्वच्छन्दता में सहज ही संतुलन कर लेती है और इस युग की समस्याओं के मर्म तक पहुँचकर व्यंग्य के द्वारा उनके समाधान की ओर संकेत करती हैं। उनका व्यंग्य केवल काटकर ही नहीं रह जाता, उसमें जोडने की भी क्षमता है। दूसरे शब्दों में वह केवल निषेधात्मक ही नहीं है, रचनात्मक भी है। उसमें केवल भर्त्सना-मात्र नहीं है, सहानुभूति भी है।" युग धर्म से प्रेरित भट्टजी की एकांकियाँ प्रायः इसी जीवन की समस्याओ पर प्रकाश डालती हैं। ... हमारे आज के परिवर्तन-शील समाज की ऊपरी सतह में जो ढंग है वह भले ही हमें कुछ हास्यास्पद लगे, लेकिन विश्लेषण से उसमें नीहित व्यथा अनुभूत होती है।... ऊपर से हँसी या व्यंग्य लेकिन नीचे एक हल्की निराशा यही इनकी व्याख्या है।"[122]

भट्टजी की लेखनी में मनोभाव सरलता से स्पष्ट होते हैं। पात्रों के अनुरुप भाषा की सृष्टि में तो वे सिद्धहस्त हैं। घटनाओं में कौतुहल चाहे न हो, किन्तु स्वाभाविकता के साथ जीवन के चित्रों को स्पष्ट करने में भट्टजी ने विशेष सफलता प्राप्त की है। उनकी दृष्टि व्यक्तिवाद तक ही सीमित नहीं, वरन् वे मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज के भयानक हिंसात्मक स्वरुप को अपनी शक्तिशालिनी लेखनी से कोमल बनाकर धुने हुए कपास-सा निर्मल और भव्य स्वरुप दे देते हैं।"[123] आपके एकांकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पौराणिक और सामाजिक प्राचीन शिल्प-विद्या (तंत्र) के विरुद्ध जीवन और आधुनिक समाज के यथार्थवादी चित्र हैं। आधुनिक समाज की समस्याओं पर प्रकाश डालना आपकी एकांकी-कला का प्रमुख उद्देश्य है। हिन्दी को भाव-नाट्य उनकी अनुपम देन है। सन् 35 से 40 के बीच लिखे हुए दुर्गा, नेता, समस्या का अंत तथा मनु और मानव प्रमुख एकांकी हैं। इन एकांकियों में उन्होंने सर्वथा नूतन आदर्श प्रस्तुत किया है।

श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र :

हिन्दी के प्रमुख समस्यामूलक एकांकीकारों में मिश्र जी का नाम प्रसिद्ध है। इनके एकांकी नाटकों में समस्या प्रमुख होती है चाहे वह वैयक्तिक हो या समष्टिगत। उस समस्या की धुरी पर ही लेखक अपनी विचारधारा के अनुसार उस समस्या का समाधान प्रस्तुत करने के लिए कथानक की सृष्टि और विकास के साथ ही पात्रो के विकास दिशा का भी निर्देशन करता है। मिश्रजी ने वर्तमान समस्याओं का समाधान वौद्धिक समझौते के रुप में किया है। स्वयं बुद्धिवादी होने की बात की पुष्टि करते हुए उन्होने लिखा है कि–

"लेखक की सबसे बड़ी चीज उसकी भावुकता नहीं, उसकी ईमानदारी है। वह साधक है, दलाल नहीं।"[124] लेखक के इस कथन तथा उसके एकांकी-साहित्य के अवलोकन से यह तथ्य सहज ही प्रामाणित हो जाता है कि कल्पना के द्वारा 'नये जगत के निर्माण' का उद्देश्य न रखकर जीवन के यथातथ्य चित्रण को ही उन्होंने महत्वपूर्ण माना है। रुप विधान या रचनाशिल्प की दृष्टि से तथा विषयवस्तु की दृष्टि से, दोनों ही दृष्टियों से मिश्र जी ने पाश्चात्य अनुकरण किया है।

इस तरह एकांकीकार श्री मिश्रजी रचनाकार के रुप में विषय से समस्याप्रधान और शिल्प से क्रांतिकारी हैं। उनका दृष्टिकोण पाश्चात्य साहित्यकारों के निकट होते हुए भी मौलिकता से परिपूर्ण है। यह निजत्व अथवा मौलिकता ही उन्हें कुछ समस्याओं के समाधान जो एकांकियों के अन्तर्गत चित्रित की हैं, उन समस्याओं के समाधान में गांधीवादी दृष्टिकोण अर्थात् गांधीयमत का आधार प्रस्तुत किया है। उनके नाट्य-साहित्य में बलवती विचारधारा, भारतीयता के प्रति रुझान, एक वेदना मिश्रित तिलमिलाहट, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, समाज तथा परिस्थितियों के प्रति मार्मिक किन्तु गंभीर व्यंग्य उपलब्ध हैं।[125] इस प्रकार उनके नाटकों की भांति एकांकियों में भी बुद्धिवाद की प्रधानता रही है। भारतीय संस्कृति और ऐतिहासिक परंपरा उनके एकांकियों का आधार है ,किन्तु फिर भी उन्होंने जीवन की वास्तविकता का तिरस्कार नही किया है। वे आध्यात्मिकता और भौतिकता को साथ लेकर समन्वयवादी आकांक्षा में विश्वास रखते हैं। आपने पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित एकांकी लिखकर समसामयिक सामाजिक परिव्याप्त विद्रुपताओं का मनोविज्ञान के माध्यम से यथातथ्य चित्रण किया है।

मिश्र जी की पौराणिक एकांकियों में 'अशोकवन', 'भगवान मनु', 'विधायक पराशर' और 'याज्ञवल्क्य' आदि प्रमुख हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र जी की **'अशोक-वन'** एकांकी रामायण की घटना पर आधारित है। मिश्र जी युग-परिवर्तन करने के पक्षपाती हैं। अतः आपने रामायण युग के कुछ पात्रों को नवीन रुप प्रदान किया। रावण पंचवटी से सीता को हरण कर लाता है, वह उन्हें अशोक वन में रखता है और नाना प्रकार के प्रलोभन देकर उन्हें अंकशायिनी बनाने का प्रयास करता है, परन्तु रावण को सफलता नहीं मिलती। इसका कथानक अत्यंत संक्षिप्त है। रावण जानकी जी को हरण करके अशोक वन में रखता है। वह उन्हें अशोक वृक्ष के नीचे इसलिए रखता है कि उसके पत्तों की शय्या तथा पवन के स्पर्श से उनके हृदय मे पुरुष के प्रेम में शिथिल होने की आकांक्षा जागृत हो जाय। वह चित्रांगदा को सीता का श्रृंगार कराने को भेजता है। चित्रांगदा को जानकी जी को बेटी कहना पडता है। रावण अशोक वन में पहुँचकर सीता को आकर्षित करने के लिए अपने गुणों

और शौर्य का बखान करता है किन्तु सीता के तर्क उसे परास्त कर देते हैं। कथावस्तु का प्रारंभ बडा स्वाभाविक और आकर्षक है। चित्रांगदा के आने की सूचना से सीता के मुख से निकल जाता है- "कोई नया छल नया जाल ?" चित्रांगदा का सीता को बेटी कहना बड़ी मार्मिक स्थिति उत्पन्न कर देता है। कथानक की समाप्ति भी अचानक होकर बहुत आकर्षणमय हो गयी है। सीता के अकाट्य उत्तरों से रावण विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। सीता का अंतिम वाक्य "यह अशोक वन इस विस्मय को कभी मिटने न देगा, राक्षसराज।"

प्रस्तुत एकांकी में रावण, जानकी, चित्रांगदा, मंदोदरी और सुनन्दा पाँच प्रमुख पात्र हैं। इन पात्रों का चरित्र मिश्र जी ने नवीन पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। अब तक वाल्मीकि आदि सभी ने रावण की विद्वता और प्रताप को स्वीकार किया है किन्तु उसकी सच्चरित्रता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। किन्तु मिश्र जी का रावण प्रतापी और विद्वान होने के साथ-साथ शीलवान और सच्चरित्र भी है, उसके इन गुणों पर भी अनेकानेक जातियों की नारियाँ स्वयं उसकी कामना करती हैं। रावण स्वयं कहता है कि वह किसी ऐसी स्त्री को ग्रहण नही करता जिस पर उसके हृदय में अनुराग की लालिमा न छा जाये। चित्रांगदा, मन्दोदरी, जानकी आदि पात्रों का चरित्र अत्यधिक आदर्शपूर्ण है। तीनों देवियाँ पतिव्रता की चरमसीमा हैं। चित्रांगदा पति की इच्छा को पूरा करना अपना धर्म समझती है। मन्दोदरी रावण की सच्ची सहचरी और मंत्रणा देने वाली है। वह सीता को लौटा देने का प्रस्ताव करती है। सीता विरहिणी और चरित्र की दृढता लिए हुए हमारे सामने आती है। सीता सुनन्दा को सखी और बहन कहकर सामाजिक विषमता पर आघात् करती है। रावण उनके सामने नाना प्रकार के प्रलोभन रखता है, किन्तु अपने शील के कारण वे तर्कों से रावण पर सीधी चोटें करके उसे निरुत्तर बना देती है। मंदोदरी नीति-निपुण और समझदार नारी पात्र है। वह सीता को लौटा देने के लिए रावण से कहती है। सुनन्दा एक दासी है। उसके चरित्र में दासी जनित भय और हीनता की भावना मिलती है।

'भगवान-मनु' एकांकी में मानव-सृष्टि के प्रणेता सूर्य-पुत्र मनु की पौराणिक कथावस्तु का आधार लिया गया है। कामना रहित होकर मनु घोर तपश्चर्या करते हैं। तपश्चर्या से ब्रह्मदेव प्रसन्न होकर वरदान माँगने के लिए कहते हैं। मनु स्वयं के लिए न तो मोक्ष माँगते हैं न समृद्धि-प्रतीक इन्द्रासन। आग्रह करने पर मनु लोक की रक्षा का सामर्थ्य और सेवा का पद माँगते हैं। ब्रह्मदेव मनु को इच्छित वरदान तो देते हैं साथ ही मछली बनकर मनु को मनोभावों की परीक्षा भी लेते हैं। मनु की दया और लोक-रक्षा के भाव को समझकर उन्हें आनेवाले प्रलय के लिये मछली के रुप में ब्रह्मदेव उन्हे आगाह करतेहुए कतिपय सुचना देते हैं – प्रलय काल में भी मनु स्वरक्षा की याचना न करके सृष्टि की रक्षा की प्रार्थना करते हैं। प्रलय से चिंतित मनु, भावी प्रजा के प्रजापति बनने के अपने दृढ संकल्प का स्मरण करते हैं। मनु का परिचय कामगोत्रबाला

श्रद्धा से होता है। श्रद्धा सृष्टि के लिए देवलोक छोडकर मनु को सहकार और समर्पण देती है। देवलोक से भिन्न एकनिष्ठ प्रेम के बीज श्रद्धा और मनु द्वारा परस्पर सहयोग से प्रतिपादित होताहै। मनु श्रद्धा के सहयोग से प्रथम अग्नि होम करते हैं। मनु अपने आवाहन से ब्रह्म के मानस पुत्र वशिष्ठ को यज्ञ का साक्षी बनाते हैं। वे वशिष्ठ के द्वारा भावी संतान के रुप में पुत्र-दर्शन के लिए यज्ञ का विधान करवाते हैं। वशिष्ठ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ के फलस्वरुप श्रद्धा की कामना के अनुसार कन्या की प्राप्ति होती है। वशिष्ठ विपरीत परिणाम से दुःखी होकर अपने तपोबल से कन्या को पुत्र में परिणत करते हैं। श्रद्धा वरदान अनुरुप अन्य दस पुत्रों को जन्म देती है। वशिष्ठ प्रजा के योग-क्षेम, लोकव्यवहार और अभ्युदय की व्यवस्था के लिए वेद-रुप स्मृति का नया आवर्तन करने का उपदेश मनु को देते हैं। मनु अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के नियम और विधि-विधान को लेकर मनु-संहिता का प्रवर्त्तन होता है।

'विधायक पराशर' नामक एकांकी वशिष्ठ और विश्वामित्र के द्वन्द्व की पौराणिक कहानी पर आधारित है। आरंभ में पराशर राक्षस-यज्ञ करते दिखाए गए हैं। राक्षस-कुल के रक्षक ऋषि पुलस्त्य जब उन्हें राक्षसों का संहार करने से रोकते हैं तो उत्तर में वे कहते हैं "मेरी प्रतिज्ञा है कि धरती पर एक भी राक्षस न रहने दूँगा। कहाँ थे आप सब जब मेरे पिता को.... उनके सभी भाईयों को राक्षस खा गए?"[126] पुलस्त्य उन्हें शांत करते हैं और यह बताते हैं कि उनके पिता का वध विश्वामित्र के कपट से हुआ था। उसी समय वशिष्ठ यह प्रकट करते हैं कि विश्वामित्र ने उनका भी वध करने का प्रयत्न किया था, किन्तु इन सब अपराधों के लिए वे उन्हें क्षमा कर चुके हैं। वशिष्ठ द्वारा यह रहस्योद्घाटन होने पर पराशर ऐसे स्थान पर तपस्या करने का प्रण करते हैं जहाँ विश्वामित्र भी न पहुँच सके। पराशर के चले जाने पर उनकी माता अद्वश्यन्ती विकल हो उठती हैं। उन्हें सांत्वना देते हुए वशिष्ठ यह समझाते हैं कि पराशर अपनी तपस्यापूर्ण कर संसार से अज्ञान का अंधकार मिटाने में समर्थ होगा। पराशर की घोर तपस्या के फलस्वरुप उन्हें यह वरदान मिलता है कि उनका पुत्र जन्म से ही वेद का अधिकारी होगा। तपस्या के सफल होने पर पराशर वापस लौटते हैं। यमुना-तट पर उनकी भेंट धीवर-कन्या सत्यवती से होती है। दैवी-विधान के वशीभूत हो पराशर उससे समागम करते हैं और इस प्रकार व्यास का जन्म होता है।

'याज्ञवल्क्य' एकांकी में लेखक ने उपनिषद् परंपरा के प्रसिद्ध ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्य के जीवन-चरित्र का चित्रण किया है। आरंभ में याज्ञवल्क्य और उनके गुरु वैशम्पायन के बीच उत्पन्न मतभेद में दोनों और से सुन्दर तर्क प्रयुक्त किये जाते हैं। याज्ञवल्क्य यह दावा करते हैं कि वह अकेले ब्रह्महत्या निवारण का महाव्रत करने में समर्थ हैं। गुरु वैशम्पायन उनके इस अहकार को अहितकर बतलाते हुए कहते हैं कि यजुर्वेद

विधान में विश्वास न होने के कारण तुम मेरे शिष्य नही रह सकते। याज्ञवल्क्य इस प्रण के साथ कि वह शुक्ल यजुर्वेद का प्रवर्तन करेंगे आश्रम का त्याग करते हैं। उनके साथ वैशम्पायन की पुत्री मैत्रेयी भी जो याज्ञवल्क्य के गुणों पर पहले से ही मोहित है, आश्रम का त्याग करतीहै। आश्रम में याज्ञवल्क्य विदेह जनक द्वारा आयोजित ब्रह्मवादियों की सभा में पहुँचते हैं जहाँ शास्त्रार्थ में उन्हें युग का सबसे बडा ब्रह्मवादी घोषित किया जाता है। याज्ञवल्क्य से पराजित होकर गार्गी भी उनसे प्रणय-भिक्षा माँगती है। अंत मे अर्जुन के वंशज परंतप शतानीक संन्यास की दीक्षा ग्रहण करने के लिए याज्ञवल्क्य के पास आते हैं। याज्ञवल्क्य संयास की दीक्षा देने के निमित्त स्वयं गृहस्थ जीवन त्यागना आवश्यक बताते है। संयास लेने से पूर्व याज्ञवल्क्य महर्षि मंडली में मनुस्मृति के आधार पर तीन अध्याय और 1012 श्लोक की स्वरचित संहिता प्रस्तुत करते हैं।

याज्ञवल्क्य के रुप में लेखक जो चरित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं वह आरंभ से ही अपने ज्ञान और तप के अहंकार में आबद्ध दिखायी देता है। इस आचरण की पुष्टि में याज्ञवल्क्य का कथन है 'जीवन मात्र का धर्म अहंकार है। जिस मन में, बुद्धि में अहंकार नहीं उस जीवित से अच्छा है मृतक।"[127] उनके इस अहंकारी आचरण से दुःखी होकर गुरु वैशम्पायन के इस कथन से उनका चरित्र और भी स्पष्ट हो जाता है 'मेरे अन्तेवासी इन सभी ब्राह्मण कुमारों को निस्तेज कह कर ..... अपने को सूर्य और इन्हें नक्षत्र बनाकर... तुमने इनका घोर अपमान किया है। तेरे जैसे उद्धत शिष्य से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। याज्ञवल्क्य अहंकारी होते हुए भी एक महान् तत्ववेत्ता, वेदों में पारंगत विद्वान एवं स्मृति के रचयिता स्मृतिकार दिखाये गए हैं। मिश्रजी की मान्यता है कि पौराणिकता साहित्य को संजीवनी शक्ति प्रदान करती है और पौराणिकता के जीवित रहने का अर्थ होता है जाति का जीवित रहना।[128] प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से मिश्रजी ने समसामयिक समाज एवं जीवन की विषम स्थिति मे लुप्त प्राय मल्यों से विक्षुब्ध होकर भारतीय संस्कृति के भव्य एवं उदात्त रुप को चित्रित करने का प्रयास किया है।

पौराणिक एकांकियो में उन्होंने जीवन के निमित्त भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक पक्ष को इस रुप में अभिव्यक्त किया है कि उसके मूलभूत तत्व सामने आ सकें और मिश्रजी की दृष्टि में भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरुप, भौतिकता और आध्यात्मिकता, भोग और तप के समन्वय में नीहित है।[129]

मिश्र जी के ऐतिहासिक एकांकियों के अन्तर्गत 'कौटिल्य', 'आचार्य शंकर', 'देवगिरि में ग्रहण', 'स्वर्ग में विप्लव", 'देश के शत्रु', 'भविष्य का गर्व', 'कावेरी में कमल', 'कौशाम्बी', 'विदिशा', 'दश्वाश्वमेघ'

आदि प्रमुख हैं।

'कौटिल्य' एकांकी में भारतवर्ष को एक शासन सूत्र में बाँधने वाले चन्द्रगुप्त मौर्य और अर्थशास्त्र के लेखक विष्णुगुप्त के जीवन-झाँकी को प्रस्तुत किया गया है। आरंभ में मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और उनकी यवन रानी हेम माला विषकन्या के संसर्ग से सेनापति पर्वतक की मृत्यु से दुःखी दिखायी देते हैं। नंदराज के ब्राह्मण-मत्री राक्षस के षडयंत्र से ही विषकन्या चन्द्रगुप्त को समाप्त करने के उद्देश्य से भेजी जाती है किन्तु आचार्य विष्णुगुप्त उसे पर्वतक के पास भेजते हैं जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। इस अपराध में राक्षस मंत्री भी बंदी बना लिया जाता है। आचार्य विष्णुगुप्त राक्षस मंत्री की प्रतिभा और योग्यता की प्रशंसा करते हैं और यह रहस्योदघाटन करते हैं कि उनके जीवन का उद्देश्य तभी पूर्ण होगा जब वह उसे चन्द्रगुप्त का मंत्री बना देंगे। आचार्य विष्णुगुप्त अपनी बुद्धि और राजनैतिक सूझ-बूझ से राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाने में सफल होते हैं। विषकन्या वसंत सेना आचार्य से अपनी शरण में रखने की याचना करती है। अंत में आचार्य विष्णुगुप्त व्यवहारशास्त्र और अर्थशास्त्र की रचना करने का प्रण करते हैं और एकांकी समाप्त होता है।

मिश्रजी ने आचार्य विष्णुगुप्त का चरित्र ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत किया है। इस देश में यवन सेना का आक्रमण होने पर किस प्रकार अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ और व्यावहारिक ज्ञान से उन्होंने एकता की भावना जाग्रत की इसका सुंदर चित्रण किया गया है। विष्णुगुप्त के संवादों के द्वारा भारतीय सिद्धांतों का भी प्रतिपादन हुआ है। यथा-

"विष्णुगुप्त - हमारे धर्म में पत्नी की जगह पति के बायें हैं.... जिधर उसका हृदय होता है।..."[130]

x x x

"विष्णुगुप्त - फिर भी हमें कर्म करना है, फल की चिन्ता से छूटकर...."[131]

प्रस्तुत एकांकी में मौर्यकाल से सम्बंधित तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का समुचित ज्ञान प्राप्त होता है। मेगस्थनीज के संवाद से यह स्पष्ट हो जाता है- "सभी गॉव एक से हैं। अतिथि की सेवा का लाभ सभी चाहते हैं। अपराध यहाँ राजधानी में भले मिले वहॉ कहीं नहीं है। दूसरे का धन लोहा और दूसरे की स्त्री सबके लिये माता है।" एकांकी के माध्यम से मिश्रजी ने भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन राष्ट्रीय गौरव को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया है तथा चाणक्य को असाधारण प्रतिभा, सफल राजनीतिक दृष्टि, व्यावहारिक ज्ञान आदि का यथातथ्य चित्रण करते हुए यह प्रदर्शित किया गया है कि इन्होंने ही आचार्य विष्णुगुप्त के नाम से व्यवहार शास्त्र और अर्थशास्त्र की रचना

की थी।

'आचार्य शंकर' :

अद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक स्वामी शंकराचार्य की अलौकिक प्रतिभा और देश में व्याप्त विभिन्न मतों में सांस्कृतिक एकता के संगठनकर्ता के रुप में आपकी यश-कीर्ति अविस्मरणीय है। प्रस्तुत 'आचार्य शंकर' शीर्षक एकांकी में मिश्रजी ने उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का नाटकीय चित्रण प्रस्तुत किया है। एकांकी के प्रारंभ में आचार्य शंकर की माता देवी विशिष्ठा और केरल राज्य के मंत्री के बीच में होनेवाले वार्तालाप से हमें यह सूचना मिलती है कि आठ वर्ष की अल्पावस्था मे ही शंकर संयास ले रहे हैं जिससे वह अत्यधिक दुखी है। इतनी कम अवस्था में ही शंकर को चारों वेद कंठस्थ थे जिससे समूचे केरल और दक्षिण पथ में दूर-दूर तक उनकी कीर्तिक फैल चुकी थी। केरल राज्य के मंत्री शंकर को केरल महाराज शेखर की ओर से निमंत्रित करते हैं और उनकी ओर से भेंट स्वरुप पाँच सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएँ अर्पित करते हैं जिन्हें वह अस्वीकार कर देते हैं। इसी अवसर पर स्वय महाराज शेखर आचार्य शंकर के दर्शनार्थ उपस्थित होते हैं। महाराज शेखर के सम्मुख अपने संयास ग्रहण करने के उद्देश्य के सम्बंध में आचार्य शंकर कहते हैं कि इस देश और धर्म की रक्षा केवल अद्वैत दर्शन से ही संभव है।

गृह-त्याग कर आचार्य शंकर प्रयाग के त्रिवेणी तट पर पहुँचते हैं, जहाँ भगवान कुमारिल को तुषानल में दग्ध होते दिखाया गया है। देश में धार्मिक एकता स्थापित करने के सम्बंध में आचार्य शंकर उनसे विचार-विमर्श करते हुए अपने ब्रह्म-सूत्रों के भाष्य पर वार्तिक लिखने की प्रार्थना करते हैं। भगवान कुमारिल उन्हें मीमांसक मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ पराजित कर संयासी बनाने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। आचार्य शंकर मण्डन मिश्र के पास पहुँचते हैं और उनकी पत्नी देवी भारती को मध्यस्थ बनाकर उनसे शास्त्रार्थ करते हैं। शास्त्रार्थ में शंकर की विजय होती है और वे मण्डन मिश्र से पूर्व निश्चय के अनुसार संयास की दीक्षा लेने का आग्रह करते हैं। इस पर देवी भारती अपने को पति का आधा अंग बतलाते हुए स्वयं शास्त्रार्थ करने को प्रस्तुत होती है। देवी भारती शास्त्रार्थ के लिए कामशास्त्र का विषय चुनती है जिसके उत्तर में आचार्य शंकर अपने को जन्म का संयासी बताते हुए एक मास की अवधि की याचना करते हैं। दृश्य परिवर्तन के साथ हमें पात्रों के कथोपकथनों द्वारा यह सूचना मिलती है कि शास्त्रार्थ में देवी भारती की भी पराजय हुई । दूसरी ओर घर में वृद्धा माँ देवी विशिष्ठा के प्राण आचार्य शंकर की प्रतीक्षा में अटके दिखाए गए हैं। शंकर का आगमन होता है और वृद्धा माँ शरीर त्याग करती है। संयासी होकर शंकर माता को दाह-कर्म कैसे कर सकते हैं, इस प्रश्न को लेकर सजातीय उन्हें किसी प्रकार से सहयोग नही देते। विवश होकर शंकर घर के

द्वार पर ही चिता तैयार कर माता का अंतिम संस्कार करते हैं। अंत मे आचार्य शंकर समूचे देश को श्रृंगेरी, गोवर्धन, शारदा और ज्योति नाम से चार भागों मे विभाजित कर चार मठों की स्थापना करते हैं।

प्रस्तुत एकांकी में मिश्रजी ने देश के एक अलौकिक व्यक्तित्व के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं को अत्यंत कुशलतापूर्वक संजोया है। आचार्य शंकर ने इस भूमि में सांस्कृतिक अखण्डता की जिस ज्योति को प्रज्वलित किया उसके लिए यह देश सदैव उनका यश-गान गाता रहेगा। एकांकी में एक स्थल पर देश में फैले हुए परस्पर विरोधी अनेक धर्मो के प्रचार से दुखी होकर आचार्य शंकर कहते हैं, "सिंधु की भूमि की आज क्या दशा है। बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, कापालिक और तांत्रिक कहाँ है आज वहॉ। पश्चिम की मरु-भूमि का यवन सबको निगलता चला आ रहा है। हमें अब अपना घर संभालना है, नहीं तो हमारी भी वही दशा होगी।" उक्त वाक्य के द्वारा मिश्रजी ने हमारा ध्यान आज भी उसी प्रकार खडी समस्या की ओर इंगित किया है तथा सांस्कृतिक एकता और अक्षुण्णता बनाये रखने का मार्ग प्रशस्त किया है।

'देवगिरि में ग्रहण' नामक ऐतिहासिक एकांकी में मिश्र जी ने अभिव्यक्त किया है कि देवगिरी के राजा रामदेवराव के समय में अलाउद्दीन ने किस प्रकार देवगिरी नगर मे प्रवेश कर अनाचार और अत्याचार शुरु कर दिया था , तब मंत्री ने किस प्रकार संधि करके तथा पर्याप्त धन देकर देवगिरि को अलाउद्दीन के अत्याचार से बचाया था। इसी तरह उनकी अन्य एकांकी **'स्वर्ग में विप्लव'** में महात्मा गाँधी के समय की स्थिति का चित्रण किया गया है। आष्टी-चिमूर काण्ड के उपरांत देश में जो घोर दमन हुआ उसमें सैनिकों ने स्त्रियों के साथा बलात्कार का जघन्य अपराध किया था। इस बात की सूचना जब महात्मा गॉधी को दी गई तो उन्होंने निर्देश दिया था कि स्त्रियों को प्राणों की आहुति देकर भी अपने सतीत्व की रक्षा करनी चाहिए थी। इस तथ्य की सपुष्टि के निमित्त उन्होंने सीता का उदाहरण ग्रहण करके नारी जगत को प्रेरित किया। फलतः मिश्रजी ने गाँधीवादी जीवन-दर्शन पर आधृत इस एकांकी में नारी स्वातंत्र्य, मानव समानता और सतीत्व की रक्षा आदि की प्रतिस्थापना की है। **'भविष्य का गर्व'** नामक एकांकी में आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों को प्रतिपादित करते हुए 150 ई. से पूर्व पुष्यमित्र के समय की धार्मिक स्थिति का चित्रण करते हुए यह बताया गया है कि उस समय किस प्रकार बौद्ध धर्म का पतन तथा ब्राह्मण धर्म का उत्थान एक विशेष पद्धति पर हुआ था। साथ ही समसामयिक वैविध्यपूर्ण विवाह पद्धतियों का भी चित्रण हुआ है।

'कावेरी में कमल' नामक एकांकी में भी हमारी प्राचीन सभ्यता पर रोमक सभ्यता के प्रभाव तथा मिश्र-विवाह से उद्‌भूत समस्याओं पर विचार किया गया है। इसमें चौल नरेश करिकाल के समय की घटना

को आधार बनाया गया है। करिकाल ने समुद्रतट पर कावेरीपत्तनम् नामक एक आदर्श शहर की स्थापना की थी और वहाँ व्यापार करने के लिए रोमक एवं यवनों को आमंत्रित किया था। धीरे-धीरे यवन और युवतियाँ यहाँ के युवकों से विवाह करने लगी और उनसे कई मिश्र जातियों का विकास हुआ। इस मिश्र विवाह किस तरह यहाँ भोग-विलास की प्रवृत्ति बढती चली गई और इस प्रवृत्ति ने किस प्रकार यहाँ की संस्कृति का विनाश किया, इसी तथ्य का यथातथ्य चित्रण इस एकांकी में हुआ है।

इस प्रकार मिश्र जी सांस्कृतिक गौरव और राष्ट्रीय नव-निर्माण की चेतना से परिचालित होकर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं पौराणिक नाट्यरचना की ओर प्रवृत्त हुए एवं इस क्षेत्र में उन्होंने अपने को विशिष्ट स्थान का अधिकारी बनाया है। डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद ने उन्हें "राष्ट्रवादी साहित्य का पुरस्कर्ता" भारतीय जीवन दर्शन का उन्नायक एवं पुनरुत्थान के प्रतिनिधि नाटककार के रुप मे मानकर उन्हें प्रसाद के समक्ष ही ला खड़ा किया वरन् युग प्रवर्तक नाटककार भी सिद्ध किया।[132] राष्ट्रीय चेतना एवं भारतीय अतीत के गौरव गान का जो उपक्रम भारतेन्दु के एकांकियों से आरंभ हुआ, वह प्रसाद की नाट्यधारा से पुष्ट एवं परिवर्तित होकर मिश्रजी के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटकों में भी समान रुप से लक्षित हुई है। मिश्रजी ने तत्कालीन विनाशोन्मुख परिस्थितियो में अपनी दृष्टि भारतीय संस्कृति के उन पृष्ठों की ओर उन्मुक्त की है, जिससे आकुल जनजीवन में परिव्याप्त हिंसा, भेद-भाव, अराजकता और संघर्ष को दूर कर उनमें सत्य, अहिंसा, संयम, शांति और लोकमंगल की भावना आदि को उद्‌बुद्ध किया जा सके।[133]

मिश्रजी ने सामाजिक एकांकियों की रचना भी की है। हिन्दी में यथार्थवादी और सामाजिक समस्या नाटकों के प्रवर्तक के रुप में मिश्र जी का नाम विशेष रुप से लिखा जाता है। इनमें से 'प्रलय के पंख पर', 'बालू से तेल', 'मेंड तोड दी', 'गंगा की लहरें', 'धरती के नीचे', 'चकाचौंध', 'एक दिन', 'नारी का रंग', 'विषपान', 'भूमि का भोग', 'बलहीन' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

'प्रलय के पंख पर' एकांकी में केशवचन्द्र और दयाराम की दो पीढियों के विचारों के संघर्ष की कथा कही गई है। दयाराम नए विचारों का एक क्रातिकारी युवक है। दुनिया के विषय में उसके अपने सपने हैं, जिनको साकार करने के उद्देश्य से उसने कॉलेज के लड़के-लडकियों के सहयोग से एक क्रांतिकारी दल खडा कर रखा है। अपने दल का वह नेता है और मंजुला उसकी कॉमरेड, सहयोगिनी है। पिता केशवचन्द्र को कॉलेज की बिगडी हुई लडकियों का इस तरह आवारा मर्दो के साथ उठना-बैठना और वह भी रात में एकांत में गवारा नहीं होता। वह आपत्ति करते हुए कहता है कि उसका घर कोई सराय नहीं है कि ऐसे-तैसे

लोग उसमें लंगर डाल डाले रहें। वह गृहस्वामी, अभिभावक के अधिकार का प्रयोग कर अपने बेटे को राह पर लाना चाहता है। लेकिन बेटा विद्रोह कर उठता है। बेटे का यह विद्रोह इतना तीखा हो जाता है कि वह यहाँ तक कह देता है कि वह केशवचन्द्र का इस बात के लिए तनिक भी एहसान नहीं मानेगा कि उसने उसे जन्म दिया है। विद्रोही क्रांतिकारी पुत्र का कहना है कि वह तो कभी पिता से यह कहने नहीं गया था कि वह उसको जन्म दे। दयाराम तो पिता की सत्ता ही मिटाना चाहता है। उसकी समाज व्यवस्था में पिता की कोई हस्ती नहीं रहेगी– स्थिति होगी बस माँ की, वैसे ही जैसे पशु समाज में आज भी होता है। बछड़ा गाय का कहा जाता है, किस साँड से पैदा हुआ यह कौन जानता है। दयाराम पिता से लडकर उस घर का परित्याग कर देता है , जो उसके पिता के अभिमान का आधार है। पिता भी उसे जाने से रोकता नहीं। लेकिन उसी समय प्रबल आँधी और तूफान का झोंका उठता है और केशवचन्द्र का वात्सल्य सारी अर्गलाओं को तोडकर बेटे को खोजने के लिए निकल पड़ता है।

अंत में पिता के वात्सल्य को देखकर विद्रोही पुत्र पितृ-चरणों में प्रणत होता है और पिता भी स्वीकार करता है दयाराम और मंजुला के परस्पर संबंध में कहीं कोई पाप नहीं है। यदि कहीं कोई पाप हो भी तो उसकी परंपरा आदिम पुरुष और आदिम नारी के इतिहास के सात ही चली आ रही है और उसके लिए दयाराम अथवा मंजुला को दोषी नहीं ठंहराया जा सकता है। पिता की शिक्षा है कि दयाराम और मंजुला को दंपत्ति के रुप में रहना चाहिए , कॉमरेड़ मित्र के रुप में नहीं। यह इसलिए कि मित्र रुप में या तो दो पुरुष साथ रह सकते हैं, या दो नारियाँ।

'बालू से तेल' एकांकी नाटक 'प्रलय के पंख पर' में संग्रहीत द्वितीय एकांकी है। एकांकी की कथा इस प्रकार है - जगदीश अपने एकमात्र पुत्र रंजन की मृत्यु से अत्यंत दुःखी है। उसकी पत्नी विमला दुख से व्याकुल होकर शीशे में लगे हुए रंजन के चित्र को अपने सर पर पटक लेती है जिससे शीशे के अनेक टुकड़े उसके मुँह पर गड़ जाते हैं। विमला को जितना दुःख अपने पुत्र की मृत्यु से है उससे कहीं अधिक अपने देवर भोलानाथ की बातों से है, जो रंजन की मृत्यु का कारण विमला की असावधानी बतलाता है। भोलानाथ अपने बडे भाई जगदीश से आंतरिक द्वेष रखता है। यहाँ तक कि रंजन की मृत्यु के दिन भी वह कपडों में इत्र छिड़ककर बडे भाई के घर जाता है और उसी दिन अपने घरमें उत्सव मनाता है। उसकी पत्नी किशोरी इसका विरोध करती है, परन्तु भोलानाथ उसकी उपेक्षा कर देता है। दूसरी ओर जगदीश की मृत्यु मे अपने पूर्व जन्म के कर्मो का फल देखता है और भोलानाथ की मंगल-कामना के लिए अपनी पत्नी को भी प्रेरित करता है। इतना ही नहीं वह अपनी पत्नी को सावधान कर देता है कि भोलानाथ के आने पर वह उससे कोई

ऐसी बात न कहे जिससे उसे चोट पहुँचे। भोलानाथ की माँ और उसकी पत्नी किशोरी नौकर के साथ पैदल ही घर से चल देती है। मार्ग में अत्यधिक थक जाने के कारण जगदीश के घर पहुँचते ही माँ बेहोश होकर गिर पड़ती है। किशोरी की आवाज सुनकर जगदीश दरवाजे से माँ को उठा ले जाते है। थोडी देर बाद माँ को होश आता है। जगदीश विमला को माँ की सेवा के लिए छोडकर बाहर आता है जहाँ उसे अंधेरे में भोलानाथ खडा दिखाई देता है। भोलानाथ अपने बडे भाई जगदीश के पैरों पर गिरकर क्षमा याचना करता है और जगदीश उसे क्षमा कर देता है। भोलानाथ के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है और वह काँपते हुए स्वर में जगदीश से कहता है, "मै अब तक बालू से तेल निकालता रहा। कितना मूर्ख था मैं?"

एकांकी के अंत में दुर्भावनाओं पर सद्भावनाओं की विजय प्रदर्शित कर सत्य, प्रेम आदि की स्थापना की गई है। भोलानाथ जो जगदीश से इतना द्वेष रखता था, अंत में उनके गुणों से प्रभावित होकर क्षमा माँगता है और पश्चात्ताप तथा आत्मग्लानि द्वारा अपने हृदय की कालिमा दूर करता है।

'मेंड़ तोड़ दी' 'प्रलय के पंख पर' एकांकी नाट्य संग्रह में संग्रहित अन्य एकांकी है। इसका कथानक ग्रामीण किसानों के जीवन से संबद्ध है। देहातों में किसानों के झगड़े का मुख्य कारण मेंड होती है। इसी प्रकार की एक घटना को लेकर इस एकांकी की रचना की गई है. इसमें रघुनाथ गाँव का ऐसा किसान होता है जो अपने शारीरिक बल के सहारे सबसे लडने को तैयार रहता है। उसके खेत के बाद भोला चौधरी का खेत है। रघुनाथ, भोला के खेत की मेंड तोड़कर अपने खेत की सीमा बढा लेता है। भोला धार्मिक प्रवृत्ति का होने के कारण स्वयं कुछ नहीं करता किंतु उसका पुत्र बनवारी इसका विरोध करता है। रघुनाथ अपने तीन भाई तथा अन्य आदमियों को लेकर उसे मारकर गिरा देता है। भोला अपने घायल पुत्र को सरकारी अस्पताल ले जाता है जहाँ उपचार आदि में वह बच जाता है। गाँव के अन्य लोग जो रघुनाथ से डरते थे, उसके इस कार्य से क्षुब्ध होकर उसके विरुद्ध मुकद्दमे में गवाही देने को तैयार हो जाते हैं। रघुनाथ अपने को बचाने के लिए डॉक्टर को घुस देने का प्रयत्न करता है, किंतु उसे सफलता नहीं मिलती। उसके ऊपर मुकदमा चलता है। रघुनाथ अपने बचने का अन्य कोई उपाय न देखकर भोला के पैरों पड कर क्षमा याचना करता है। भोला का हृदय द्रवित हो उठता है, किन्तु गाँव वालों से राय लिये बिना वह उसे क्षमा कर सकने में असमर्थता प्रगट करता है। वह किसी प्रकार का प्रतिशोध नहीं लेना चाहता और पंचों की राय के अनुसार कार्य करने तैयार हो जाता है। अंत में गाँव में स्थित मंदिर में पंचायत के सामने रघुनाथ भोला से क्षमा याचना करता है। भोला उसे क्षमा करते हुए कहता है कि वह यह नहीं चाहता कि उसकी मृत्यु के बाद कोई यह कहे कि उसने रघुनाथ को जेल भिजवाया था। इस प्रकार अदालती न्याय की अपेक्षा दैवी और पंचायती न्याय

में विश्वास करके भोला रघुनाथ को क्षमा कर देता है। प्रस्तुत एकांकी का कथानक अत्यंत सजीव और स्वाभाविक है। एकांकी पढ़ने से गाँव का वास्तविक चित्र आँखों के सामने घूम जाता है।

'गंगा की लहरें' शीर्षक एकांकी 'प्रलय के पंख पर' में संग्रहीत अन्य एकांकी है। इसमें श्रीचंद शिक्षित और चरित्रवान युवक है। यमुना नामक लडकी की उसके भावी शराबी पति से रक्षा करने के विचार से वह उसे लेकर भाग जाता है। यमुना, श्रीचंद से प्रेम करती है और उसके साथ रहते हुए अपने प्रेम का प्रतिदान चाहती है। उसकी हर सांस मे, हर चेष्टा में, हर बार के देखने और बोलने में हर क्षण निमंत्रण का भाव बना रहता है। श्रीचद विवाह से पूर्व सयोग को पाप समझता है। अतः वह यमुना के इन वासनात्मक भावों की उपेक्षा करता है। यमुना अपनी इच्छा पूरी न होती देख न्यायालय में यह कहती है कि श्रीचंद उसे बलपूर्वक भगा ले गया था। डाक्टर अपनी परीक्षा में यमुना को नाबालिक घोषित करते है। इस प्रकार नाबालिग लडकी को भगाने के अभियोग में श्रीचंद को सात वर्ष कारावास का दण्ड मिलता है।

कारावास से छूटने पर श्रीचंद किसी न किसी प्रकार यमुना से मिलने के लिए विकल रहता है। वह उससे मिलकर उसके इस परिवर्तन की वास्तविकता जानना चाहता है। श्रीचंद को विदित होता है कि यमुना का विवाह हो गया है और वह उसके मित्र रामधन के घर की समीप कही रहती है। रामधन,श्रीचंद को अपने घर में आश्रय देता है। इस बीच एक दिन यमुना का शराबी पति नशे में चूर घर आता है। यमुना उसकी दशा देख भय से रामधन के घर भाग आती है। रामधन को अपने घर में श्रीचंद से बातें करते देखकर उसको बडा आश्चर्य होता है और वह घबराकर गिर पडती है। रामधन के पूछने पर यमुना उसे बताती है कि उसका पति शराब पीकर आया है और उसी के डर से वह भाग आयी है। वह कहती है कि विवाह के पूर्व से ही उसे मालूम हो गया था कि उसका पति शराबी है और इसीलिए वह श्रीचंद के साथ भागी थी। वह यह भी स्वीकार करती है कि श्रीचंद पूर्णतः निर्दोष है। वह श्रीचंद से कहती है कि मै अब भी तुम्हें हृदय से प्यार करती हूँ और तुम मुझे इस शराबी पति से छुटकारा दिला सकते हो।

'एक दिन' मिश्र जी की सर्वोत्तम एकांकी है। एकांकी का प्रारंभ देहात के एक गॉव में राजनाथ के मकान में पिता-पुत्र के वार्तालाप से होता है। राजनाथ वंश की मर्यादा और भारतीय आदर्श पर सर्वस्व अर्पित कर देने को तैयार रहते हैं। मोहन उनका पुत्र और शीला पुत्री हैं। मोहन अपनी बहन शीला की शादी धनी परिवार के अपने मित्र निरंजन के साथ करना चाहता है। निरंजन इसी विचार से गॉव में लडकी देखने आता है। राजनाथ इसे अपनी मर्यादा और परंपरा से विरुद्ध बताते हुए इसका विरोध करते हैं, किन्तु मोहन

इसके पक्ष में कहता है कि आजकल कोई भी शिक्षित लडका लडकी को देखे बिना शादी नहीं करता। राजनाथ आधुनिक सभ्यता और रीति-रिवाजों को पूर्णतया अभारतीय बताते हुए इसे देश की उन्नति में बाधक सिद्ध करते हैं। वह मोहन से कहते हैं कि विवाह से पूर्व जो लडका स्वयं लडकी देखना चाहता है, वह पसन्द करने का अधिकार केवल अपना मानता है, कन्या का नहीं।

अंत मे राजनाथ शीला को निरंजन से बातें करने की आज्ञा प्रदान करते हैं। शीला कहती है कि वह आज निरंजन से बातें कर उसे इस योग्य न रखेगी कि वह फिर कभी किसी के साथ ऐसा व्यवहार करने का साहस कर सके। शीला अपने तर्को और भारतीय आदर्शो द्वारा निरंजन को पराजित करती है। वह निरंजन से कहती है, "आप की अवस्था का पुरुष जब मेरे आयु की लड़की के पास जाता है, अंधा हो जाता है... और कही लड़की संयोग से सुंदरी हुई तो वह उन्मत्त हो उठता है। अंधा क्या देखेगा? उन्मत्त क्या समझेगा? इसलिए अपने आप न देखकर दूसरे से दिखा लेना आप जैसों के हित की बात है। आप को साहस कैसे हुआ कि यहाँ तक चले आये मुझे देखने के लिए?" शीला निरंजन के व्यक्तित्व और उसकी विचारधारा की उसके सम्मुख अत्यंत कठोर शब्दों में आलोचना करती है। निरंजन शीला के तर्को का उत्तर नहीं दे पाता और पराजित हकर अपनी दुर्बलताएँ स्वीकार करता है। शीला उससे कहती है कि इस देश में कन्या के प्रार्थी पुरुष होते रहे हैं, अतः उसे भी उसके पिता की स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिए। अंत में निरंजन शीला से कहता है, "इस एक दिन में मेरा सारा जीवन समा गया, इसके पहले जो कुछ था और बाद में जो कुछ होगा।"

लक्ष्मी नारायण मिश्र जी ने अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एकांकियों की रचनाएॅ की हैं। मैंने यहॉ उनकी 15 प्रमुख एकांकियों का परिचयप्रदान करने का प्रयत्न किया है। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र जी की एकांकी-कला की यह विशेषता है कि साधारण के भीतर भी तत्व पर विशेष बल देते हैं। उनके एकांकियों मे नीहित सांस्कृतिक अनुभव, मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि, बुद्धिवाद का प्रयोग और स्वाभाविकता है। अतः उन पर आकार-प्रकार, भाषण-संवाद, व्यंग्य आदि दृष्टि से कुछ प्रभाव इब्सन आदि का अवश्य है, किन्तु उनके नाटकों की आत्मा भारतीय है और शैली में उनका अपना निजी व्यक्तित्व है।

मिश्रजी यथार्थवादी और बुद्धिवादी एकांकीकार हैं। इसलिए आपके एकांकी नाटकों में विवेक, तर्क और मनोविज्ञान का निरुपण मिलता है। अंध-विश्वास और परंपरा निर्वाह का विरोध करते हुए आपके नाटक सदाचार, जीवन और मृत्यु का चिरंतन स्वरुप हमारे सामने उपस्थित कर देते हैं। उनके एकांकी

नाटकों में 'प्रलय के पंख पर', 'स्वर्ग मे विप्लव' तथा 'भगवान मनु तथा अन्य एकांकी', 'एक दिन' आदि प्रसिद्ध हैं। इन पौराणिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी प्रकार के एकांकियों की समस्याओं को उन्होंने बुद्धिवाद और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में विवेचित किया है। ये सभी एकांकी अभिनेय भी हैं। उनके एकांकियों में अंतरंग तथा बहिरंग दोनों पक्षों में नवीनता है। उन्होंने बहिरंग में कृत्रिम भाषा, स्वगत, संगीत, भरत वाक्य और वर्णनात्मकता का सर्वथा बहिष्कार किया है। एकांकियों के अंतरंग में मूक अभिनय, अनुभव चित्रण, भारत जीवन दर्शन के अनुरुप परिस्थितियों तथा व्यापारों का गठन और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि मिलती है। उन्होने भारतीय प्रभाव से जहाँ प्राचीन संस्कृति की प्रेरणा ली वहाँ पाश्चात्य प्रभाव से नवीनता और चेतना ग्रहण की। समस्या एकांकियों के सूत्रपात करने के क्षेत्र में उनकी मौलिक प्रतिभा है। एकांकियों में उनके निजी व्यक्तित्व और भारतीयता की सर्वथा संरक्षा हुई है।

मिश्रजी के एकांकियों में नवीन युग की स्वाभाविकता, बुद्धिवाद तथा मनोवैज्ञानिक चेतना मिलती है। वे संदैव समस्या को नए रुप में प्रस्तुत करके उसकी नये दृष्टिकोण से व्याख्या करते हैं। उनके एकांकियों में अतिरंजित आवेश, कृत्रिम भावुकता और पलायनवाद का सर्वथा अभाव है। उनकी प्रेम और नारीत्व की समस्या शॉ से प्रभावित है। वे निष्फल प्रेम को मान्यता नहीं देते। उनके एकांकियों में भावावेश का स्थान जीवन की अनुभूति, नैसर्गिक विवेक, बुद्धि, तर्क और संतुलन ने ले लिया है। उन में कृत्रिम क्षणिक भावुकता और सौन्दर्य वासना का आवेश नहीं मिलता। वे सामाजिक रुढियों को तोडकर सामाजिकता, मनोवैज्ञानिकता तथा स्वतंत्रता की ओर दिखाई पडते हैं, फिर भी वे भारतीयता से शून्य नहीं हैं।

शिल्प-विधान की दृष्टि से वे क्रांतिकारी व्यक्तित्व लेकर आते हैं। उन्होंने कृत्रिमताओं के विरुद्ध विद्रोह किया है, उनके एकांकियों में कम से कम पात्र होते हैं और वे प्राय एक ही दृश्य में समाप्त हो जाती है। स्वगत कथन, घटनाओं की जटिलता, वार्तालाप वह क्लिष्ट भाषा प्रयोग आदि उनके एकांकियों में नहीं है। उनके कथानक में व्यर्थ का प्रलाप नहीं मिलता। मिश्रजी कथानक संगठन में संकलनत्रय का निर्वाह बडी कुशलता से करते हैं और आपके कार्य व्यापार सुसंगत और सुनियंत्रित होते हैं। एकांकी को एक घटना तक ही सीमित रखकर एक ही दृश्य में चित्रित करने में वे प्रवीण हैं।

इस प्रकार मिश्र जी ने अपने पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक एकांकियों की रचना करके सुधारवाद का दंभ, सामाजिक विषमता, राजनैतिक दलबंदी, पतिव्रत धर्म, राष्ट्रीयता, अंतर्जातीय विवाह, अनमेल विवाह, स्वदेश भक्ति, भारतीय संस्कृति, वेश्या-सुधार, चुनाव, सिद्धांतों और आदर्शो का

खोखलापन, प्रेम और सैक्स, रुढिगत विवाह पद्धति, पारिवारिक कलह, पुरातन एवं नवीन विचारों की विषमता, नेताओं की कायरता, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष, मिश्र-विवाह के दुष्परिणाम, नारी-स्वातंत्र्य आदि यथातथ्य मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

भुवनेश्वर प्रसाद :

हिन्दी एकांकी के नवोत्थान मे भुवनेश्वर प्रसाद जी का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी के शीर्षस्थ एकांकीकारों में इनकी गणना की जाती है। आप हिन्दी एकांकी साहित्य के उन जानेमाने प्रमुख लेखको मे से हैं, जिन्होंने पश्चिमी साहित्य से प्रभावित होकर सर्वप्रथम हिन्दी एकांकी साहित्य में यथार्थवादी नीव जमाई। हिन्दी के प्रमुख एकांकीकारों के संबंध में जब हम विचार करते हैं तो स्वयं ही दृष्टि सबसे पहले "कारवाँ" (1935) के रचयिता भुवनेश्वर प्रसाद पर जाती है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य नाट्य-साहित्य में अपने यथार्थवादी और समस्यामूलक नाटकों में क्रांति का श्रीगणेश करनेवाले इब्सन और शॉ से प्रेरित होकर इन्होनें सबसे पहले हिन्दी को एकांकी प्रदान करने का प्रयास किया। इसकी पुष्टि आपके प्रसिद्ध एकांकी-संकलन 'कारवाँ' से हो जाती है। यह आपका प्रथम एकांकी संग्रह है जो हिन्दी एकांकी जगत में नई शक्ति का चिन्ह है। 'जितनी विद्रोह की भावना इनके एकांकी नाटकों मे मौजुद है, वह हिन्दी मे कविवर बच्चन के अतिरिक्त किसी के पास नहीं है।"[134]

आपने एकांकी नाटकों के अन्तर्गत जिस समाज की कहानी ली है, उस समाज के व्यक्तियों, उनके रहन-सहन, उनकी जीवन-पद्धति तथा उनके रीति-रिवाज का यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। साथ ही घटनाओं के घटित होने की संपूर्ण परिस्थिति उनके स्थान एवं समय का चित्रण भी इस प्रकार हुआ है कि कथानक काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ प्रतीत होता है। भुवनेश्वर के अधिकांश एकांकी आधुनिक युग के ऐसे समाज से संबंधित हैं जो मध्य-वर्ग का शिक्षित समाज है जिस पर पाश्चात्य सभ्यता का भूत सवार है। ये लोग भौतिकता को अत्यधिक महत्व देते हैं तथा आडम्बरपूर्ण जीवन व्यतीत करना अधिक अच्छा समझते हैं। ये दोहरा व्यक्तित्व धारण किये हुए है तथा बाहर कुछ और अंदर से कुछ और हैं। फलतः लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली में मानव को मानव के रुप में देखने का प्रयास किया है। आपने आज के अभिजात्य वर्ग की दुर्बलताओं और विकृतियों और कुरुपताओं को कुरेद-कुरेद कर नग्न कर दिया है, आदर्श के घटाटोप के नीचे कितना कलुष है, कितनी गंदगी है, उनकी रचनाएँ इसे प्रकट कर देती है। उन्होंने समस्याओं को उभारकर रख दिया है , उत्तर उन्हें सोचना है जो स्वयं रोग-ग्रस्त हैं। भुवनेश्वर अगर अपनी निरंकुशता, कुण्ठाओं और सवेदनशील वृत्ति से अपने को किसी प्रकार मुक्त कर पाते तो उनकी

रचनाओं में केवल किसी अस्पताल जैसी चीख़-पुकार, रोदन-कराह ही नहीं, वरन् किसी भव्य उपवन का मोहक वातावरण भी होता।"[135]

भुवनेश्वर ने कारवाँ के प्रवेश मे लिखा है– "प्रायः समस्त नाटककार जो पेटीकोट की शरण लेते हैं, दो पुरुषों को एक स्त्री के लिये आमने-सामने खडा कर संघर्ष उत्पन्न करते हैं। मैंने भी यही किया है। केवल बुलडाग कुत्ते के मुख से हड्डी निकालकर अलग फेंक दी है।"[136]

'श्यामा : एक वैवाहिक विडम्बना' इस कथन का प्रमाण है। इस नाटक में मि. अमरनाथ पुरी और मनोज ऐसे दो पुरुष पात्र हैं जो श्यामा अर्थात् मिसेज पुरी के लिए आमने-सामने खडे होकर संघर्ष कर रहे हैं। श्यामा आज मि. पुरी से विवाह करके उसकी धर्मपत्नी तो हो गई है, लेकिन वह यह मानती है कि विवाह और प्रेम भिन्न-भिन्न चीजें हैं। इन दोनों में कार्यकारण संबंध भी हो यह तो और भी आवश्यक नहीं है। यह सत्य है कि विवाह के कारण समाज के सम्मुख वह मि पुरी को प्यार करने के लिए उत्तरदायिनी है, लेकिन विवाह करके उसने अपने को उसके हाथों ऐसा बेच तो नहीं दिया है कि उसके साथ प्रेम करे ही।[137] प्रेम उसे चाहिए भी जरुर लेकिन विवाह से ही प्रेम भी हो जाय यहा कहाँ है? मनोज श्यामा के लिए मि. पुरी के घर आया है। मिसेज पुरी को ऐसा दीखता है कि उसका पति मनोज के प्रति ईर्ष्यालु है। उसके इस आक्षेप को मि. पुरी स्वीकार नहीं करता। वह बताता है कि मनोज से ईर्ष्या करने के लिए उसके पास कोई वजह नहीं है। वह इसलिए कि उसे अपनी पत्नी और उसकी पवित्रता पर पूर्ण विश्वास है।"[138] श्यामा को इस बात पर आश्चर्य है कि पुरी उससे प्रेम करने का दावा भी करता है और मनोज के प्रति वह ईर्ष्यालु भी नहीं है। वह अपनी दुर्बलता को जानती है और अनुभव करती है कि वह मनोज के प्रति निरपेक्ष नहीं रह सकती। उससे निःसंग नहीं हो सकती। यह इसलिए कि मनोज को प्रेम करना किसी भी स्त्री के लिए इतना सरल और नैसर्गिक है जैसे वसंत का आगमन या प्रातः समीर में कलिका का खिलना। वह हैरान है कि यह मि. पुरी कैसा पुरुष है, जिसके हृदय की भावनाये और वासनाएँ शरीर से विलग है। मि. पुरी श्यामा से जब यह कहता है श्यामा इतना ही समझ पाती है कि यह सब बकवास है, कोरी भावुकता।

कथानक सहसा एक नाटकीय मोड़ लेता है और मनोज पुरी के सामने आकर कहता है– "मैं आपकी धर्मपत्नी से प्रेम करता हूँ। पुरी पहले तोयह कह कर टालना चाहता है– "ठीक है, उसको सभी प्रेम करते है। वह ऐसी सुन्दरी है, उसकी आत्मा ऐसी अपूर्व है।"[139] अस्तु, वह और भी स्पष्ट होकर कहता है कि 'मैं आपके अन्तस्तल में प्रविष्ट होकर आपसे कहना चाहता हूं कि श्यामा आपकी नहीं है, वह मेरी

है।"[140] यह ठीक है कि विवाह की विधि ने श्यामा को 'मिसेज पुरी' बनाया है, लेकिन यह विधि ही तो स्वयं लौह-विधि है जिसका कोई अर्थ नहीं है। मनोज पुरी से सीधे पुछता है- तुमने उसे पाने के लिये क्या त्याग किये हैं, तुम्हारा उस पर क्या स्वत्व है? पुरी से श्यामा की एक भावना भी नहीं मिलती। घटना का यह मोड पुरी को उत्तेजित कर देता है और इस रुप में आवेश विह्वल कर देता है कि वह उसे मारने दौडता है। मनोज उसकी शिकायत श्यामा से करने को जब उद्यत होता है, तब पुरी घबडा जाता है और उससे चिरौरी के स्वर में अनुनय करता हुआ कहता है - "क्या तुम उसकी सहानुभूति भी मुझसे छिनना चाहते हो? क्या तुम चाहते हो कि वह मुझे एक पतित ईर्ष्यालु मनुष्य समझे? मैं तुमसे विनय करता हूँ, इससे कोई लाभ नही है, मनोज।"[141]

'प्रतिभा का विवाह' शीर्षक एकांकी मे भुवनेश्वर ने विवाह के प्रश्न को उठाया है। आनन्द मोहन नामक एक व्यक्ति अपने मित्र मि. वर्मा तथा अपनी मातृहीना पुत्री प्रतिभा के साथ पहाड़ पर स्वास्थ्य-लाभ के लिये आया है। मि. वर्मा के साथ आनन्द की मैत्री तीस वर्ष पुरानी है। स्पष्ट है, वह ढलती उम्र का है। एक दिन पथरचटी की यात्रा से लौट कर आने पर वर्मा आनन्द से कहता है कि वह प्रतिभा से विवाह करना चाहता है। उसके इस बेतुके प्रस्ताव को सुनकर आनन्द भौचक-सा रह जाता है। वह वर्मा से प्रस्ताव करता है कि वह प्रतिभा को अपनी बेटी समझ कर प्यार करे। भला उसके साथ प्रतिभा का विवाह क्यों कर हो सकता है? इसी बीच मिसेज जोशी नाम की एक महिला वहाँ पहुँचती है। इस महिला के साथ आनन्द की निकटता रही है और दोनों के बीच ऐसा कुछ सम्बन्ध आज बीस वर्ष के ऊपर से है जिसे आनन्द की पुत्री प्रतिभा न ही जाने तो अच्छा।[142] मिसेज जोशी ने वर्मा का प्रतिभा से विवाह के विषय में प्रस्ताव सुन लिया है। वह वर्मा को याद दिलाती है कि विवाह विषयक ऐसा ही प्रस्ताव कभी उसने उसके आगे भी रखा था। वर्मा ने बताया कि मिसेज जोशी के सामने उसने विवाह का प्रस्ताव तब रखा था, जब उसका पति ज्योतिवल्लभ जोशी बुरी तरह बीमार था और उस समय उसे मिसेज जोशी के प्यार की जरुरत नहीं थी, जरुरत थी एक चतुर और तत्पर नर्स की। इधर मिसेज जोशी को शायद द्रव्याभाव था और वह अपने पति के स्वस्थ होने की आशा खो चुकी थी। वर्मा एक धनी-मानी व्यक्ति है और उसको अपने धन की अपने लिये बहुत आवश्यकता नहीं है। मिसेज जोशी विधवा होकर न जाने समाज में कहॉ-कहॉ ठोकर खाती भटकती फिरती और जिंदगी की मार सहती। मिस्टर वर्मा से पुनर्विवाह करके वह इन आसन्न विपत्तियों से बच सकती थी।

आज प्रतिभा से विवाह का प्रस्ताव भी वह कुछ सोच-विचार कर ही कर रहा है। वह जानता है कि

आधुनिका की क्या आशा-आकांक्षा हो सकती है। उसे अच्छी तरह ज्ञात है कि प्रतिभा एक माता या गृहिणी होकर संतुष्ट नहीं हो सकती। वर्मा बताता है कि, "मैं नहीं चाहता कि प्रतिभा जीवन को समझने के लिए अपना शरीर और यौवन बेचे। मैं नही चाहता कि वह अपनी जीविका कमाने के लिए एक माता बने।"[143] साथ ही कहता है कि वह तो बस चंद दिनों का मेहमान है। उसके जीवन-दीप के बुझने के बाद उसकी जमीन-जायदाद सबकुछ पर प्रतिभा का अधिकार होगा और वह एक प्रतिष्ठित धनी विधवा की स्थिति में समाज में मजे से रह सकेगी। इधर प्रतिभा का प्रेम महेन्द्र नामक एक नवयुवक से है जो उससे विवाह करना चाहता है। प्रतिभा विवाह और प्रेम में कोई अनिवार्य संबंध नही देखती। वह खुलकर स्वीकार करती है कि महेन्द्र से वह प्रेम करती है लेकिन अपने इस प्रेमी के साथ वह विवाह करना नहीं चाहती। यह इसलिये कि उसको इस बात की आशंका है कि उन दोनों के बीच जो सरस कुतुहल स्थिति है, जो कल्पना है वह विवाह के एक ही दो वर्षो बाद उड जायेगी और महेन्द्र तनिक-तनिक सी बात पर उससे खिझेगा। फिर दोनों एक दूसरे को उसके निकृष्ट से निकृष्ट अवसर पर देखेंगे, एक दूसरे के प्रति न्याय नहीं कर सकेंगे और इस तरह का जीवन दूभर हो जायेगा।[144]

'रोमांस : रोमांच' शीर्षक में दाम्पत्य-जीवन की विफलता और तद्जन्य समस्याओं की प्रस्तुति हुई है। मिसेज सिंह का प्यार अमरनाथ नामक एक व्यक्ति से था, किन्तु किसी कारणवश उसका विवाह अमरनाथ से न होकर मि. सिंह से होता है। मिसेज सिंह अपने वैवाहिक जीवन से संतुष्ट नहीं है। एक तो उसकी बेटी चंदा स्वर्गीय हो गयी है और दूसरे मि. सिंह का उसके साथ उस समय से ही एक संघर्ष जैसा चल रहा है जब मि. सिंह ने अपनी पत्नी के नाम अमरनाथ का वह पत्र चुपके से पढ लिया जिसमें उसने लिखा था कि वह उसका उद्धार करना चाहता है। अमरनाथ मिसेज सिंह के घर पहुँचता है। घर में उस समय मि. सिंह नहीं है। घर लौटने पर वह अमरनाथ को देखते ही जैसे असहिष्णु हो जाता है। अमरनाथ उससे हाथ मिलाने के लिए जब हाथ बढाता है तो वह यह कहते हुए उसे झिडक देता है, "मुझे हाथ मिलाने की जल्दी नहीं है।"[145] यही नहीं वह उसके प्रति अपना तीव्र आक्रोश प्रकट करते हुए यह भी कहता है – 'उस समय मैं आपको केवल अपनी पत्नी का प्रेमी या प्रशंसक ही जानता था पर बाद में मुझे मालूम हुआ आप उसका उद्धार भी करना चाहते है।" मि. सिंह अपने इस आचरण से स्वयं संतुष्ट नहीं है। अमरनाथ से वह पूछ बैठता है - "मि अमरनाथ, क्या इसे आप अपनी प्रेयसी के पति की एक भद्दी और जनानी कायरता नहीं समझते है?"[146] मि. सिंह यह कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि उसकी पत्नी एक ऐसे पुरुष को उसके जीवन में ले आये जो न जीवन को समझता है, न स्त्री को। उसे यह और भी असह्य है कि पति-पत्नी के बीच आनेवाले व्यक्ति सुधारक के ढीले, भद्दे वस्त्र पहनकर आये, उद्धारक का निर्जीव चेहरा लगाकर आये।[147]

मिसेज सिंह से उसका जो संघर्ष है उसे वह परम स्वाभाविक मानता है। उसकी मान्यता है कि दो वर्ष से अधिक पति-पत्नी रहने के पश्चात् यदि स्त्री और पुरुष कभी लडते नहीं, तो दोनों कायर हैं, या दोनों एक-दूसरे को धोखा देते हैं।[148]

'लॉटरी' शीर्षक एकांकी की रचना की समस्या पति-पत्नी के जीवन में एक तीसरे व्यक्ति के आने से ही खडी होती है। माया एक विवाहिता स्त्री है, जिसके दो बच्चे भी हैं। उसका पति किशोर प्रवास में है। विदेश में अपरिचितों के बीच वर्षो रंग-बिरंगे स्वप्न देखने के बाद, जब वह 'गर्म और धडकता हुआ हृदय' लेकर लौटता है ति देखता है कि उसकी पत्नी माया प्रद्युम्न नामक किसी दूसरे पुरुष के प्रेम में पागल हो गयी है। पति के प्रत्यागमन के बाद माया को अपनी स्थिति की भयानकता का बोध होता है। उसे लगता है कि पति की अनुपस्थिति में उसके प्रेमी ने उसकी आत्मा में बैठकर उसकी भावना की हिंसक शेरनी को जगा दिया है। आज वह अपनी दुर्बलता का ढोंग भी नही कर सकती। प्रद्युम्न परिस्थितियों का सामना करने में असमर्थ है, उसमें श्यामा : एक वैवाहिक विडम्बना के मनोज की सी हिम्मत नही है। इसलिए वह पलायन करना चाहता है। वह माया से कहता है– 'माया, मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम का बल है। संसार का कोई भी कार्य मेरे लिए कठिन नहीं है। मैं तुम्हारे स्वप्न लेकर संसार के किसी कोने में चला जाऊँगा।'[149] वह माया से अनुरोध करता है कि वह भी इस सरस लेकिन अप्रिय स्वप्न को भुला दे और अपने पति से समझौता कर ले। लेकिन माया की समस्या यह है कि उसके हृदय की समस्त भावनाएँ उस स्थिति से विद्रोह करती हैं, जिसमें उसे उस पुरुष के गले निर्जीव लता के समान लिपटकर रहना है, जिसे वह प्रेम नहीं करती और फिर यह कि उसके लिए बच्चे भी उत्पन्न करने हैं। अपने पति के जीवन में ईर्ष्या की आठ उठाना, उसे सालना और फिर स्वयं अपनी छाती में अपने प्रेमी प्रद्युम्न का प्रेम लिये फिरना -- यह सब सचमुच कितना हीन है और कठिन भी? इधर किशोर प्रद्युम्न और माया के जीवन से हट जाने के लिए फिर विदेश जाने का निश्चय कर लेता है। उसका विश्वास है कि प्रद्युम्न उसे एक दिन समझेगा और क्षमा कर देगा।

'शैतान' एकांकी का प्रमुख है राजेन। राजेन सोलह वर्ष की आयु में ही घर से भाग निकला था और जैसा कि राजा हरदेव सिंहन ने कहा - दुनिया का कोई ऐब एसा नहीं, जो उसमें न हो। अभी वह घर वापस पहुँचा ही है कि उसकी पीठ पर एक नौकर दौडा आता है कि उसके मालिक का गिलौरीदान उसके साथ धोखे से चला आया है। लेकिन वह गिलौरीदान धोखे से राजेन के साथ नहीं चला आया है, बल्कि उसे वह जान-समझकर ले आया था। अब उसे उसका स्वामी चौक की दुकान में 50 रुपया देकर ही पा सकता है। राजेन का कहना है कि दुनिया में रुपया ही ब्रह्म है, शिव है, विष्णु है, सब कुछ है। उसके जीवन में श्रद्धा का

स्थान ही नहीं है, न ही उसकी उसे आवश्यकता दीखती है। यह राजेन ही पहले पुण्य पर विश्वास करता था और इसीलिए अपने ही नगर में एक कुत्सित पापी था। लेकिन आज वह 'शैतान' बनकर अनुभव करता है कि वह परमात्मा का भी स्वामी, अपना स्वयं विधायक, स्वयभू है और इस प्रकार पाप पुण्य से परे है। आज राजेन को पाप से घृणा नहीं है, भय भी नही है। वह अनुभव करता है कि वह स्वयं सत् चित् और आनन्द है, विश्व को पूर्ण करनेवाली व्यापक आत्मा है और इसी अर्थ में वह पाप भी है।

राजेन के पिता का भॉजा हरदेवसिंह राजेन के घर से भागे हुए होने के कारण उसकी स्टेट का स्वामी बना बैठा है। वह हृदय से यही चाहता है कि किसी तरह स्टेट उसके हाथ रह जाय। ऐसे कहने को यह कह देता है कि -- 'मामाजी ने विल हमारे नाम की थी, पर मुझे तुम्हारा यह कुछ न चाहिए।' लेकिन राजेन को यह अच्छी तरह मालूम है कि जो स्वयं निर्धनता का आलिंगन करता है उसे धन की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। वह मान-प्रतिष्ठा का भूखा होता है और यह मान-प्रतिष्ठा धन का दूसरा नाम ही तो है। हरदेव की पत्नी आज राजेन को घृणा करती है , यद्यपि उसने ऐसा कुछ नही किया, जिससे उसके प्रति उसको घृणाभाव रखना पडे। राजेन उसे सतर्क करते हुए कहता है- 'तुम मेरी ओर से उदासीन रह सकती हो, पर मुझे घृणा मत करो। स्त्री की घृणा पुरुष पर बलात्कार है।'[150] और सचमुच एकांकी की अगली कथा यह बताती है कि हरदेवसिंह का स्थानापन्न होकर जब राजेन अज्ञात स्थान में ले जाने के लिए पुलिस के आगे आत्म-समर्पण करता है तब हरदेव की पत्नी का राजेन के प्रति यह घृणा-भाव टिका नहीं रह पाता।

'स्ट्राइक' शीर्षक एकांकी में श्रीचंद नामक एक ऐसे व्यक्ति को प्रस्तुत किया है, जो वकालत का पेशा छोडकर व्यापार में आया है और आज देखते ही देखते एक कंपनी का सर्वेसर्वा बन बैठा है। मकडी की तरह सौ ऑखें रखनेवाले यह श्रीचंद व्यापार जगत के दिगपाल सरदार साहब, राजा साहब और बाबू साहब कहलाने वाले लोगों की हालत देखकर परम असंतुष्ट है। उसकी शिकायत है कि ये कमबख्त जीवन की कला नहीं जानते। जरा सा डिविडन्ड कम हुआ इनके हाथ-पाँव फूल गये; किसी ने हडताल की धमकी दे दी, घबड़ा गये, बौखला गये।[151] श्रीचंद के अनुसार बहुमत का अर्थ है वह शक्ति, जो दुनिया को हिला दे और यह शक्ति हमेशा एक आदमी-केवल एक आदमी में होती है। श्रीचंद इसी मानी में बहुमत है। इसी से तो उसने साफ-साफ ऐलान कर दिया है, 'मैं तीन साल तक कोई डिविडन्ड नहीं बाँटूंगा, अंगुठा कर लो मेरा।' श्रीचद जानता है कि ये तमाम इज़्ज़तदार लोग कपडे के नीचे मोटे घुडमुँहे गधे हैं और वह इसलिए इनकी परवाह नही करता, इनके तलवे नहीं सहलाता, इनके इर्द-गिर्द चक्कर नहीं काटता, और ये उसके सामने बस मूँह बाकर रह जाते हैं।[152]

श्रीचंद की पहली पत्नी स्वर्गीय हो गई है। उसके बच्चे निर्मल और मोती बाहर पढ़ते हैं और दूसरी पत्नी है, जो सुखी, संतुष्ट नहीं है। श्रीचन्द शायद उसको समझ भी नहीं पा रहा है। व्यवसाय में तन-मन से लगे हुए इस पुरुष की सुख-विषयक कल्पना भी असामान्य है। हार के गीत गानेवालों, टेसुवे बहानेवालों से उसे नफरत है। उसके सामने जीवन का स्पष्ट उद्देश्य है। वह चाहता है कि आदमी अपनी बची-खुची शक्ति का प्रयोग करे। श्रीचन्द के मतानुसार स्त्री और पुरुष जीवन की मशीन के दो पुर्जे हैं। वह स्वयं भी इसी आदर्श के अनुरुप अपने जीवन मे व्यवहार करता है। वह अपनी पत्नी की गतिविधि के प्रति निरपेक्ष है। पत्नी भी अपनी जिंदगी जीती है, जैसा चाहे व्यवहार करती है। दोनों ने अपनी-अपनी जगह को समझ लिया है और फिर वहाँ से दोनों में से कोई हटता नहीं। इसी का परिणाम है कि दोनों में बिगाड़ नहीं हुआ। श्रीचंद की पत्नी अपनी सहेलियों के साथ लखनौ गई है और घर की ताली साथ ले गई है। वक्त के पाबंद श्रीचंद के अनुसार उसे साढे-दस बजे उसके साथ खाने की मेज पर होना चाहिए था। लेकिन बदले में उसका संदेश आता है कि वह रात में नहीं आ सकेगी। अब सवाल यह उठता है कि ऐसे में जिंदगी की मशीन का दूसरा पुर्जा क्या करे? स्पष्ट है, पति-पत्नी ने अपनी-अपनी राह चलने से जीवन चलता नहीं है। भुवनेश्वर ने स्थिति की इस विद्रुपता के प्रति व्यंग्य करते हुए दूसरे पात्र के मूँह से कहलाया है- "मेरे होटल में आइये। अपकी फैक्टरी में तो आज स्ट्राइक हो गयी।"[153]

'एक साम्यहीन साम्यवादी' शीर्षक एकांकी के कथानक का निर्माण किया है। कामरेड उमानाथ मिश्र नयी उम्र का है। लेखक के शब्दों में उसकी आयु तीस वर्ष के दाहिनी ओर है। उसके राजनीतिक विचार उग्र हैं। राष्ट्रीय कॉग्रेस को वह 'महात्मा गाँधी एण्ड का. लिमिटेड' मानता है, खद्दर भी नहीं पहनता, दिन रात रिपोर्टो, ड्राफ्टों और अखबारों में फॅसा रहता है। मजदूरों के बीच रहकर मजदूर संगठन का कार्य करता है। उसका नारा है - पूँजीपतियों का नाश हो। दुनिया यह समझ जाए कि एक श्रमजीवी को असली मजूरी उसकी मेहनत का फल है और उस पर किसी तरह का टैक्स, लगान अथवा टिकट उसे देना नहीं है। मजदूरों की हालत बहुत ही दयनीय है। महिने की पूरी मजुरी में केवल नौ रुपये मिलती है। उसमें से भी चार-पांच जुर्मानें मे कट जाते हैं। जो बचता है उससे खाने को भी नहीं मिलता। अभाव की जिंदगी झेलते-झेलते आज उनका सब्र टूट गया है। वे सोचने लगे हैं 'हमारे भी तो बीवी-बच्चे हैं, हम भी तो आराम से रहना चाहते हैं, हम भी तो बीमार-उमार पडते है।' उनके सामने ही बडे लोग हैं, जो नाच-मुजरे, मेले-तमाशे में हजारों रुपये उडा देते है। पान खाकर दस-दस रुपये थूक डालते हैं, सिगरेट पीकर फूँक देते है।

इधर सुन्दर जैसा मजदूर है जिसका बच्चा दवा के अभाव में मर गया। उमाकान्त इन्ही मजदूरों की और से नारे लगाता है। गोविन्द जैसे मजदूर उसका झंडा उठाये ग्रामोफोन के रेकर्ड की तरह चिल्लाते हैं - दुनिया के मजदूरों, एक हो जाओ। उमाकान्त एक जवान आदमी है और उसमें पुरुष की कमजोरियाँ है। सुन्दर नामक मजदूर की पत्नी पार्वती है, जो देखने में अच्छी-खासी है। हडताल की विफलता सुंदर को तोड देती है। जिंदा रहने के लिए उसे उमाकान्त के रुपये चाहिए और उमाकान्त को अपनी काम-बुभुक्षा की शांति के लिए उसकी पार्वती। यह सीधी-सी बात सुंदर मजे में समझ जाता है। सुंदर तब कहता है कि– "मैं नही चाहता कि तू भी पछताये। खाली इसलिए कि तूने मुझसे शादी की है।"[154] इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी में मजदूरों की दुर्दशा, दयनीयता की पृष्ठभूमि में साम्यहीन साम्यवादी उमाकान्त का ढोंगी रुप उभरकर आता है।

'ऊसर' शीर्षक एकांकी नाटक में मि. सिवल की अपनी एक गृहस्थी है, पत्नी है,बच्चे हैं। लेकिन अपनी उस गृहस्थी में उनको सुख नहीं मिलता, शांति नहीं मिलती। सिवल की पत्नी 'स्ट्रेंड हार्ट'[155] पीडित रहती है। थोडी-सी मेहनत की, उठ-बैठ की और हफ्ते भर बिछावन पर पडी रही, लेकिन यही महिला बाहर के आदमियों के बीच बिलकुल दूसरी हो जाती है। हमारा यह समाज भी खूब है, पल में तोला पल में माशा। दूसरी मुसीबत यह ठहरी कि इस समाज में केवल दिखावा है। घर में 'फिंगर बॉल' की बात सुनी नहीं गई, और मिसेज सिवज़ बाहरी लोगों के सामने जैसा कि सिवल ने कहा यह दिखलाती है कि उसके परिवार के लोग हफ्ते में दस दिन 'फिंगर बॉल' बरतते हैं।'[156] मि. सिवल झूठ, प्रदर्शन का यह भोंडा बाजार चला नहीं पाता। इसीसे तो बाईस वर्ष के अपने विवाहित जीवन में वह कभी सुखी नहीं हो पाया। उसे इस स्थिति से विद्रोह है। उसने जिंदगी को झेलकर उसकी विकृतियों को अनुभव किया है। लेकिन विकृतियों का अनुभव करके भी वह स्थिति को बदल नहीं पाता, बल्कि प्रवाह में अपने को छोड़ देता है। दूसरे वह कर भी क्या सकता है। वह यह भी देख रहा है इस समाज का विरोध शुरु हो गया है। आज का हर जवान किताबों के अधकचरे ज्ञान के असर से इस समाज से बगावत करता है। सिवल कहता है– "अपने सोशलिज्म-ओशलिज़्म के जोश में वे शायद यह समझ बैठा है कि जिन्दगी का गहरा से गहरा मतलब उनके लिए स्पष्ट हो गया है। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि जिंदगी लटकों, फार्मूलों में बाँधी नहीं जा सकती। सिवल इस बगावत की व्यर्थता का अनुभव कर रहा है और जानता है कि यह बगावत स्वयं प्रकृति के प्रति है और प्रकृति से विरोध करना छत पर से गिरना है।[157]

वैसे तो आपकी प्रत्येक कृति पाश्चात्य प्रभाव का स्मरण दिलाती है लेकिन 'शैतान' में लारेंस की

ट्रेजेड़ी की छाया मुखरित हो उठी है। भुवनेश्वर जी यदि चाहते तो पाश्चात्य प्रभाव पर अपनी मौलिक प्रतिभा का रंग चढाकर भारतीय जीवन-दर्शन एवं विचार दर्शन के अनुरुप उसे ढाल सकते थे लेकिन उनकी एकांकियों मे ऐसा नहीं पाया जाता। 'कारवाँ' नामक संकलन में प्राप्त एकांकियॉ सामाजिक व्यंग्य, सैक्स सम्बन्धी फ्रायड के विचारधारा का प्रभाव शॉ और इब्सन की समस्यामूलक प्रवृत्तियाँ आदि का निरुपण इनमें पाया जाता है।

गणेश प्रसाद द्विवेदी :

गणेशप्रसाद द्विवेदी की सौन्दर्य धारणा और मनोविश्लेषण पद्धति भी अंग्रेजी एकांकियों और पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित दिखाई देती है। स्त्री-पुरुष दोनों के मन की गहराई में प्रवेश करके उनके यथार्थ रुप के आपने प्रस्तुत किया है और मानव मन के सूक्ष्मतम रुप को लेकर अग्रसर हुए हैं। उनके प्रणयचित्रों में व्यक्तिगत समस्याओं को स्थान मिला है। आपने मनोविज्ञान को अपने एकांकियों का मूल प्राण माना है। वे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक एकांकीकारों के समान मनोविश्लेषण को एवं काम-समस्या को प्रधानता देते हैं। डॉ. नगेन्द्र का मत उपयुक्त है कि "वे एक सुक्ष्म तत्व को पकडते हैं और उसको मनोविज्ञान की सहायता से तीक्ष्णतर करते हुए अत्यंत कौशल के साथ चरमसीमा तक ले जाते हैं।'[158] डॉ. नगेन्द्र ने आपको 'प्रेमाहत कवि-कलाकार' की संज्ञा प्रदान की है। आपके पात्र यथार्थ की कठोर पृष्ठभूमि पर चित्रित हैं। "स्त्री के प्रणय में जहाँ जीवन व्यापी चाह है, समर्पण है, वहाँ ईर्ष्या, प्रतिहिंसा, पतिग्रहण की उत्कट लालसा भी है। इसी प्रकार पुरुष के प्रेम में जहाँ सहन करने का बल है वहाँ संदेह, घृणा, दर्प और साथ ही दुर्बलता भी है।"[159] वस्तुतः डॉ. नगेन्द्र का कथन नितान्त सत्य है लेकिन युग के अनुकूल नारी के प्रति वे अधिक सहानुभूतिशील हैं। यथार्थ और बौद्धिकता को लेकर चलने पर भी वे भुवनेश्वर प्रसाद से अधिक संयमशील हैं।

द्विवेदी जी ने 'सोहाग बिन्दी तथा अन्य नाटक' के दो शब्द में बताया है कि यद्यपि उनका विषय समाज है, तथापि अपने नाटकों के द्वारा वे समाज के सुधारक बनने की धृष्टता नहीं करना चाहते। स्पष्ट है कि वे अपने नाटकों के द्वारा समाज की दुखती रग पर अँगुली धरना चाहते हैं लेकिन अपनी ओर से किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहते। द्विवेदी जी इससे आगे बढकर यह भी बता देते हैं कि 'नाटक के द्वारा किसी सुंदर वस्तु का निर्माण ही उनका ध्येय हो सकता है।'[160]

आपके उल्लेखनीय एकांकी हैं - 'सोहागबिन्दी', 'वह फिर आयी थी', 'परदे का अपर पार्श्व', 'शर्माजी', 'दूसरा उपया ही क्या है?', 'सर्वस्व समर्पण', 'रपट' आदि। **'सोहागबिन्दी'** एक सामाजिक

एकांकी है। जिसमें पारिवारिक समस्या का यथातथ्य चित्रण हुआ है। यह एकांकी स्टेशन मास्टर काली बाबू तथा उसकी सहधर्मिणी प्रतिभा देवी के वैवाहिक जीवन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करताहै। प्रस्तुत एकांकी में कालीबाबू एक छोटे से स्टेशन के स्टेशन मास्टर थे। अपने काम में इतने व्यस्त थे कि अपनी पत्नी प्रतिभा के लिए भी उन्हें समय नहीं मिलता था। प्रतिभा रेलवे क्वार्टर में एकाकी जीवन बिता रही थी। उसके पास पूरे दिन में कोई भी कार्य नही रहता था कि करे। वह एकाकीपन में रहते हुए अपनी इस जिंदगी से उकता गई थी। काली बाबू को इस ओर जरा भी ध्यान ही नहीं था। लेकिन प्रतिभा के लिए वह एक दिन उत्सव जैसा लगने लगा जब उसके घर काली बाबू का मौसेरा भाई विनोद आया। प्रतिभा का उस दिन जमीन पर पैर नहीं पड़ रहे थे। वह उस दिन इतनी ख़ुश थी मानों उसकी जिन्दगी में बहार छा गई हो उसने सोहाग बिन्दी के न होने पर भी लाल फूलों के रस से अपने दिव्य गोरे भाल को दीप्त कर लेती है। आज कितने दिनों के बाद उसने भडकीला श्रृंगार किया है। दूसरे दिन विनोद लौट जाता है और वापिस नहीं आता है। वह उसका इंतजार करती रहती है। आते-जाते काली बाबू को सोहागहिन्दी की एक शीशी प्रतिभा के लिए दे जाता है। प्रतीक्षा करतेकरते वह मर जाती है। काली बाबू अस्थि खण्ड के साथ क्वार्टर वापिस आते हैं। प्रतिभा के संदूक खोलने पर काली बाबू को एक पत्र मिलता है जिसमें लिखा है – 'मेरे न जाने कौन विनोद बाबू। तुम आने को कहकर फिर क्यों नहीं आये, मैं हर घडी तुम्हारी राह देखा करती हूँ। इस लिखावट पर सोहाग बिन्दी की शीशी ख़ुलकर ख़ून का धब्बा बना रही है।'

प्रस्तुत एकांकी में इस प्रकार यौन की समस्या को चित्रित किया गया है। पति काली बाबू की निरपेक्षता के कारण पत्नी प्रतिभा का यौन-भाव अतृप्त रहा। उसके अतृप्त यौन-भाव सामाजिक मर्यादाओं के बंधन के कारण तृप्त नहीं हुआ। इस वजह से वह काल-कलवित भी हो गई है। विनोद चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता था। विनोद के द्वारा सोहाग-बिन्दी की शीशी प्रतिभा के लिए दिया जाना इस बात का संकेत है कि उसके हृदय में प्रतिभा के लिए कुछ अवश्य था। किन्तु इसका स्पष्टीकरण वह चाहते हुए भी नहीं कर सकता है।

'वह फिर आयी थी' शीर्षक एकांकी में अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। द्विवेदीजी ने यहॉ विफल प्रेम की समस्या को चित्रित किया है। सिद्धिनाथ जो एक कवि है वह मनोरमा नामक युवती से प्रेम करता था किन्तु मनोरमा का विवाह उससे न होकर अन्य पुरुष से हो जाता है। लेकिन अपने वादे के अनुसार मनोरमा सिद्धि से मिलने आती है, वह उससे मिलने उस दिन आती है जब सिद्धिनाथ का साहित्यिकों के बीच सम्मान होने वाला था। मनोरमा अपने शरीर के कंकाल की छायामूर्ति लिये सिद्धिनाथ

के घर चली आती है। वह इतनी क्षीण हो गई है कि सिद्धिनाथ ने देखा कि उसके कुर्सी पर बैठने से जरा-सा भी दबाव नहीं पडा। मनोरमा बताती है कि उसने उसके साथ मिलने आने का जो वादा किया था उसे ही पूरा करने आयी है। वह अपनी पूरी कथा उसे सुना कर जब चलने को उद्यत होती है, सिद्धिनाथ उसे अपने आलिंगन में बाँधने के लिए प्रयत्न करता है और औंधे मूँह गिर पडता है। क्योकि यह मनोरमा का प्रेत होता है। इस प्रकार यहाँ विफल प्रेम की कथा की मार्मिक अभिव्यंजना की गयी है। उसमें बताया गया है कि किस प्रकार अनमेल विवाह जान का ग्राहक बन जाता है। वर-वधू के इच्छानुसार ही विवाह-संबंध स्थापित होने चाहिए।

'परदे का अपर पार्श्व' एकांकी में आपने अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है। रमेशचन्द्र उर्मिला नामक युवती से प्रेम करता है किन्तु रमेश से उसका विवाह सम्पन्न नहीं हो सका। उसका विवाह भगवान दास से हो जाता है, किन्तु उर्मिला के लिए यह विवाह एक दण्ड स्वरुप प्रतीत होता है। विवाह के बाद भी अपने पूर्व प्रेमी को भूला नहीं पाती है। जीवन भर केवल उसी की याद में बिता देती है। उधर रमेश का कहना है कि वह उसे अपने एक-एक बूँद से नफरत करता है। जब उसका मित्र रामेश्वर उसके मुख से यह सुनता है तो इस बात को अस्वीकार कर देता है। क्योंकि रामेश्वर का कहना है कि 'यह असंभव है जिसे कभी सचमुच प्यार किया हो, उसके प्रति किसी भी परिस्थिति मे एकदम निर्विकार या निर्लिप्त हो जाया जाय।' इसी दण्ड को भुगतते हुए उर्मिला काफी बीमार रहने लगती है। वह बेहोशी की हालत में केवल अपने पहले प्रेम का ही नाम पुकारा करती थी। उर्मिला की अंतिम इच्छा को जानकर भगवानदास रमेश को इसकी सूचना देते हैं कि एकबार रमेश को उससे आकर मिल लेना चाहिए किन्तु शिवराम दुबे के समझाने के बावजूद रमेश टस से मस नहीं होता है। बल्कि रमेश शिवराम दुबे को यह कहकर वापिस कर देता है कि 'मेरी मोटर लीजिए और मेहरबानी करके एक बार देख आइये कि दर असल वकील की जरुरत है कि डाक्टर की। रमेश को जिस बात का रंज है वह यह है कि जिस उर्मिला ने इस चरम अवस्था में आ पहुँचने पर एक बार उससे मिलना जरुरी समझा, और अपने पति द्वारा ही उसे प्रकट रुप में बुलवाया उसका जिक्र तक इस खत में न करना भगवानदास के लिए मुनासिब नहीं है। रमेश उर्मिला को जीवन के अंतिम क्षण में यह अनुभव कर देना चाहता है कि 'एक पुरुष के सच्चे प्रेम के निरादर की प्रतिक्रिया कितनी भयंकर हो सकती है।' इसलिए उसने निश्चय किया है कि उसके मरने के बाद ही उससे मिलने जाएगा। इस तरह से केवल उसके इंतजार में ही उर्मिला की जीवनलीला समाप्त हो जाती है लेकिन उसकी मृत्यु की खबर पाकर रमेश से सुनी नहीं जाती है, वह स्तब्ध रह जाता है। उसको मूर्च्छा-सी आ जाती है और वह लडखडाकर रामेश्वर के ऊपर ही गिर पडता है। क्योंकि वह अब भी उर्मिला से प्रेम करता था। उसके हृदय में अब भी उसके लिए

जगह थी। रमेश ने तो अपने मित्र के सामने दावा किया था कि वह एक-एक बूँद से उर्मिला से घृणा करता है। किन्तु यह कथन उसकी मृत्यु की खबर सुनकर असत्य सिद्ध हुआ। एकांकी का सार वाक्य यहाँ स्पष्ट हो गया - 'यह असंभव है कि जिसे सचमुच प्यार किया गया हो, उसके प्रति किसी भी परिस्थिति में एकदम निर्विकार या निर्लिप्त हो जाया जाय' यह कथन सत्य सिद्ध हो जाता है।

प्रस्तुत एकांकी में रमेश की उर्मिला के प्रति जो व्यवहार रुखा दिखाई देता है वह केवल उसकी प्रेम में असफलता का परिणाम था। वह प्रेम में असफल होने से निराश हो गया था। वह हृदय से उर्मिला को कभी भुला नही पाया था। भगवानदास उर्मिला के पति भी यद्यपि उर्मिला से प्रेम करते थे इसीलिये वे उर्मिला की अंतिम इच्छा को अस्वीकार नहीं पाए और रमेश को बुलाने पर तैयार हो गए। यह एक पुरुष के आत्मसम्मान के विरुद्ध बात थी कि उसकी अपनी पत्नी उससे प्रेम न करके किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती है। हृदय से वह किसी अन्य पुरुष को समर्पित है। इस दृष्टि से भगवानदासजी का उठाया गया कदम एक महान् पुरुष के चरित्र को स्थापित करता है। इस तरह अनमेल विवाह के कारण एकसाथ तीन जिन्दगियाँ शूली पर चढ़ जाती हैं। इस तरह से यहाँ अनमेल विवाह की समस्या की भीषणता को द्विवेदी जी ने चित्रित किया है।

'शर्माजी' शीर्षक एकांकी में शर्माजी जो एक सीविलियन आफिसर थे उनका विवाह उमा से हो जाता है। उमा देहात में पली बढी थी। अतः वह गंवार थी। उसे ढंग से बलने तक की तमीज नहीं थी। उमा किसी भी तरह से शर्माजी के लिये ठीक नहीं थी। एकांकी में दूसरी स्त्री पात्र तारा थी जिसका विवाह से पहले शर्माजी से परिचय था किन्तु विवाह डाक्टर आस्थाना से हो जाता है। वे दोनों भी एक-दूसरे के लिए सही जोड़ी सिद्ध नहीं हो पाए क्योंकि आस्थाना पत्नी के घर के दायरे के अलावा भी पत्नी के कुछ अधिकार, जीवन के कुछ चाह होती है उसे नहीं समझ नहीं पाए थे। दाम्पत्य जीवन के असंतुलन को चित्रित करते हुए द्विवेदी जी ने इसका मूल कारण अनमेल विवाह की समस्या को ठहराया है। अनमेल विवाह से संपूर्ण जीवन दुरुह हो जाता है। एक ओर तो डाक्टर आस्थाना मानते हैं कि उनके इतने चाहने पर भी उनकी पत्नी निरंतर दूर क्यों होती जा रही है। अपनी ओर से उनका सोचना था कि उन्होंने अपनी पत्नी को सभी सुख-सुविधा दी है और दे रहे हैं। दूसरी ओर तारा कहती है कि इतने समय बीत जाने के बाद भी वे गिनती के एक-दो बार ही बाहर फुर्सत से निकले हैं। इस तरह दोनों ही अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट थे। दूसरी तरफ शर्माजी चाहते हुए भी कुछ अपनी पत्नी के लिए नहीं कर सकते थे। क्योंकि उनकी पत्नी को कुछ समझ में नहीं आने वाला था। इन सबके लिए उत्तरदायी वह समाज को ठहराता है। उसका मानना है कि समाज ही इसके लिये दोषी है। समाज में अपेक्षाकृत इस तरह के सुधारों की अत्यंत आवश्यकता है। अनमेल-विवाह की समस्या

को युवा मानसिकता से भी सुधारा जा सकता है। युवा-पीढ़ी में आपसी समझौता आवश्यक है। विवाह के पश्चात् पत्नी और पति के बीच विचारों का संतुलन जरुरी है। दाम्पत्य जीवन की नींव ही इस पर आधारित है। आधुनिकाओं को भी यह समझना चाहिए कि पति-पति है उनका सेवक नही है। वे अपनी दृष्टि को बदले अन्यथा दाम्पत्य जीवन दुरुह हो जाएगा और इस दुर्वह-बोझ को ढोने के लिए दम्पत्तियों को विवश होना पडेगा। एकांकीकार द्विवेदीजी ने इन भीषण प्रश्नों को रखकर हमें सोचने के लिए विवश कर दिया है कि यह समाज आज एक बड़ी समस्या बन गई है। अतः हमें इसके समाधान हेतु अपने हिन्दू-समाज की प्रमुख विवाह-संस्था में अपेक्षाकृत वांछित सुधार करने चाहिए।

'दूसरा उपाय ही क्या है?' में द्विवेदी जी ने स्त्री की बेचारगी का अंकन किया है। वह विधि के विधान के आगे स्वयं को असमर्थ पाती है। उसका जीवन केवल एक ढर्रे पर ही निश्चित है। यह मार्ग भी वह स्वयं निर्धारित नहीं करती उसे बताये गये मार्ग पर ही अंधानुकरण करना पड़ता है। उसका अपनी सोच, अपनी रुचि का कोई महत्व नहीं रहता है। सित्तो सुरेश की बाल-सखी है और घरवाले भी उनके युवा होने पर उन्हें विवाह-सूत्र में बाँध देना चाहते हैं। लेकिन ऐसा होता नहीं है और सुप्रसिद्ध नरेन्द्र बाबू से उसका विवाह सम्पन्न हो जाता है। सुरेश शादी के बाद सित्तो से मिलना चाहता है किन्तु उसके एक मित्र महेश उसे इसके लिए समझाता है कि वह अब शादी-शुदा है। वह परायी स्त्री है। पर-स्त्री से इस तरह की कोई बात करना समाज में पाप की नजर से देखा जाता है। मिलना तो एक प्रकार से असंभव है, किन्तु सुरेश अपने मित्र की एक नहीं सुनता है और उससे मिलने के लिये उसके दरवाजे पर पहुँच जाता है। सीता उससे मिलने से इंकार कर देती है। इससे सुरेश को मर्मातक पीडा की अनुभूति होती है। वह अपनी बात को एक पत्र के माध्यम से पेहरेदार के हाथों प्रेषित कर देता है। उस पत्र में उसने लिखा था - 'बहुत संभव है जीवन संबंधी सभी बातें अब अर्थशून्य होंगी- पर एकमात्र स्मृति मेरी संबल होगी। शायद आपको याद हो आपको मैंने अपनी एक तसवीर दी थी, आज मैं उसे लौटा लेना चाहता हूँ - यह जानकर आपको कोई लाभ नहीं होगा।[161] सित्तो का पति नरेन्द्र यद्यपि उदार विचारों के व्यक्ति थे। उन्हें सुरेश का जो अपमान हुआ उससे दुःख हुआ। उन्होंने सुरेश को वापिस ससम्मान बुलाने का आदेश दिया लेकिन अब सित्तो को सुरेश की चर्चा भी करना बिल्कुल पसंद नहीं था। वो यहाँ तक कहती है कि यदि उसके सामने कभी सुरेश की चर्चा की गयी तो वह मायके चली जाएगी।'[162]

'सर्वस्व समर्पण' एकांकी में द्विवेदी जी ने विनोद के द्वारा रुढिगत परंपरा का विरोध चित्रित किया है। विनोद निर्मला के घर ही पलकर बडा होता है। निर्मला विनोद के मामा की बेटी है। निर्मला के साथ-साथ

बचपन से रहते-रहते दोनों में प्रेम का अंकुर फलित होता है लेकिन दोनों को इस बात का तनिक भी आभास नहीं था कि परस्पर प्रेम करते हैं। विनोद का विवाह उमा से हो जाता है। उमा जब उन्हें स्वच्छंदतापूर्वक वार्तालाप करते हुए परस्पर घुल-मिलकर बाते करते हुए पाती है तो वह अपनी पत्नी के अधिकारों के प्रति सजगता रखते हुए उन्हें उनकी स्वच्छंदता का आंकलन बताती है। तब दोनों को इस बात की तुष्टि होती है कि इतने समय के साहचर्य के कारण परस्पर प्रेम करने लगे हैं। विनोद भी उमा को समझाता है कि हम दोनों ही निर्मला के आश्रित हैं। हमारे संबंध अटूट हैं। हम उसके उऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकते हैं। उमा पर उसके समझाने का केवल इतना ही असर होता है कि वह समझ लेती है कि उसका कुछ भी नहीं बचा, सर्वस्व लूट गया। इसके बाद प्रेम भी उमा को समझाता है है तुम खुशी से अपना सबकुछ दान कर दो क्योंकि तुम यह दान उसके लिए ही तो करोगी जिसके ऊपर आज तक तुम अपना सर्वस्व न्यौछावर करती रही हो। उमा पर प्रेम की बातों का असर पडता है और वह निर्मला को बुलाकर अपना बहुमूल्य चम्पाकली उसे पहनाते हुए कहती है कि सबकुछ जो मेरा है वह उसी का है। अपने जीवन की सांध्य बेला में उमा अपने प्रेम की थाती निर्मला को सौंप देना चाहती थी ताकि अंतिम समय में उसे अपने पति के प्रेम से वंचित न रहना पडे किन्तु वह उसे आशीर्वाद नहीं दे पाती है। उसके मूँह से यही निकला - 'राक्षसी, तू यहाँ क्यों आयी। तेरा यहॉ क्या है? मैं मरुँगी नहीं, रहूँगी, रहूँगी। भाग डायन यहॉ से।'[163] विनोद पुरुष है उसे समाज से लोहा लेने में भी भय नहीं लगता है। लेकिन ऐसा हौसला निर्मला के पास नहीं है। विनोद तो विवाह विधान को भी भ्रम कह देता है। इससे एक बात अवश्य सिद्ध होती है कि आज की पीढी सर झुकाकर यह विधान नहीं मान सकती है। उसकी पूरी सहमति होनी चाहिए। अन्यथा वह समाज से बगावत करने में भी पीछे नहीं हटेगा। प्रस्तुत एकांकी में यद्यपि निर्मला विनोद की मामा की बेटी है, और इस रिश्ते से वह उसकी बहन हुई। समाज विवाह विधान की इजाजत नहीं देता है, किन्तु विनोद को इसकी तनिक भी चिंता नहीं थी। वह प्रचलित रुढ़ि के विरुद्ध उठ खडा होता है। वह इसके साथ ही विवाह विधान को भ्रम की संज्ञा देता है। इससे उसकी जागृत नवीन चेतना का बोध होता है। प्रस्तुत एकांकी में विनोद को प्रचलित रुढियों के विरुद्ध दर्शाया गया है।

'कामरेड़' शीर्षक एकांकी में एक क्रांतिदल है जिसके तीन सदस्य हैं - रमेश, रणजीत, शीला, जो मजदूरों के बीच काम करते हैं। यह दल किसी भी रुढि को स्वीकार करने के पक्ष में नही है। यह पुरानी मान्यताओं को, तहजीब को नए सिरे से लाना चाहते थे। रमेश विचारों से परम रुढ़ि विरोधी है। जो बात उचित नहीं हो और वह समाज के भी विरुद्ध हो तो उसकी अवमानना भी करने में उसे हिचकिचाहट नहीं होती थी। समाज को क्या पसंद है, समाज क्या चाहता है उसे इसकी परवाह नहीं थी। समाज की बुराइयों

को दूर कर देना चाहता था। जागृति लाने के पक्ष में था जबकि रणजीत आज भी पुराने संस्कारों से छूट नहीं पाया था। वह काफी धनवान घर से था। गाडियों में ही घुमता है। इस दृष्टि से क्रॉंतिकारी है कि वह भाषण खूब देता था। लेकिन जब कुछ करने की बात होती थी तो वह अपनी बातों से मुकर जाता था, पीछे हट जाता था। तीसरी सदस्या शीला है जो एक सुंदर स्त्री थी। रमेश उदार विचारों का था वह शीला को सिर्फ एक कामरेड की नजर से देखता था। जबकि रणजीत को यह कतई गंवारा नहीं है कि शीला इतनी रात गए रमेश के घर आए जाए। रणजीत शीला को केवल एक औरत के रुप मे ही देखता था। इस संबंध मे रमेश का कहना था कि यदि कामरेड शीला को रात में भी आने की जरुरत पड जाए तो वह उससे निःसंकोच मिल सकती है। रणजीत को रमेश और शीला से ईर्ष्या होने लगी थी। एक रात वर्षा के समय शीला को मजबुरी में रमेश के ही घर रात बितानी पडी। यह देखकर रणजीत का पारा गर्म हो गया। उसने तैश में आकर दोनों को ही काफी भला-बुरा सुना दिया। अब उन दोनों ने तय किया कि वे विवाह सूत्र में बँध जाये तो ही अच्छा रहेगा। समाज और उसकी सड़ी-गली मान्यताओं में कितना बल है कि रमेश के साथ शीला कामरेड की स्थिति में नहीं रह पाती उसे रमेश की पत्नी हो ही जाना पडता है।

प्रस्तुत एकांकी में द्विवेदी जी ने यौन-समस्या की प्रस्तुति की है। अन्य किसी समस्या को उन्होंने गंभीरता से नहीं लिया है। नाटककार समस्या की गहराई में नहीं गए हैं। नारी-समस्या की गहराई में नहीं गए हैं। नारी-समस्या की ओर इनका ध्यान केन्द्रीतकरते हुए नारी के केवल एक पहलू को छुआ कि नारी सेक्स से आगे भी कुछ है लेकिन उसे अन्य सामाजिक परिपेक्ष से नहीं देखा। द्विवेदी जी अपने नाटकीय पात्रों के मानस के रहस्य पटल को उघाडकर किसी सुंदर चित्र का निर्माण करते हैं और उसको नाटक का कथानक बनाते हैं। द्विवेदी जी के नाटकों का विषय तत्व एक है। द्विवेदी जी के पात्र अपनी जिंदगी जीते हैं। सबकी अपनी-अपनी क्रिया है, प्रतिक्रिया है। आपके नाटकों का विषय एक है - प्रेम की विफलता की समस्या तथापि उनके भिन्न-भिन्न नाटकों के पात्र एक ही साँचे में ढले हुए नहीं है। चाहे नायक हो चाहे नायिका सबके अंदाज अलग हैं, अपने हैं, अपनी गुत्थियॉ हैं और अपनी प्रतिक्रियायें हैं। आपकी एकांकियों मे मानव-मन, काम-वासना आदि का प्रस्तुतीकरण आधुनिक मनोविश्लेषणवाद पर आधारित है।

जगदीशचन्द्र माथुर :

हिन्दी एकांकीधारा को अत्यंत कलात्मक एकांकियों द्वारा परिपुष्ट करने वालों में जगदीशचन्द्र माथुर महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने अपने एकांकियों में रंगमंचीय रचना-विधान एवं साहित्यिक शैली का अद्भूत सयोग किया है। श्री माथुर एक यथार्थवादी एकांकीकार के रुप में अधिक विख्यात हैं। आपने प्रारंभ में

डी.एल.राय की उत्तेजनात्मक संवेदनाशील शैली से प्रभावित होकर एकांकी रचना की, बाद में आधुनिक पाश्चात्य एकांकी की ओर आकृष्ट हुए। श्री माथुर ने तो पाश्चात्य नाट्य-साहित्य से प्रभावित होकर हिन्दी एकांकी को नए आयाम प्रदान किए। जगदीश जी ने अपने अधिकांश एकांकी आज की सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखे हैं। उनके एकांकियों द्वारा युग जीवन की स्पष्ट झलक मिलती है। सामाजिक विकृतियों का अतिरंजनापूर्ण चित्र, माथुरजी ने अपने एकांकियों में खींचा है। इन्होंने काल के विस्तार में न जाकर जीवन के किसी मार्मिक क्षण को पकड़ा है और उसी में डूबने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि कथानक में संश्लिष्टता है, विस्तार का बिखराव नहीं है।

श्री माथुर ने समाज की आंतरिक कमजोरियों को पहचानने का प्रयत्न किया है। आप के जितने एकांकी मिलते हैं, उन सभी को एक साथ रखकर देखने से ऐसा लगता है कि उन पर प्राचीन परंपरा की छाया अवशेष रह गयी है जिसके परिणामस्वरुप इतिहास की क्रोड उन्हें अधिक आकर्षक लगी है पर जहाँ उनके भीतर का नाटककार विद्रोह कर उठा है, वहाँ उनकी चेतना समाज की समस्याओं के प्रति जागरुक दिख पड़ती है। ऐसी स्थिति में समाज के खोखलेपन की ओर स्पष्ट संकेत आपने किया है। आपके एकांकियों में यथार्थवादी दृष्टिकोण कुछ अधिक निखरकर आया है। वर्ग-संघर्षों के विभिन्न पहलू प्रायः इनके नाटकों में प्रतिपादित किये गए हैं जिनके माध्यम से समाज की भीतरी कुण्ठाओं की ओर संकेत किया गया है। इनके लिये श्री माथुर ने व्यंग्य का सहारा लिया है। उन्होंने सामाजिक विषमताओं तथा कमजोरियों को बड़े ही स्पष्ट रुप में समाज के सामने प्रस्तुत किया है। मध्यवर्गीय जीवन की कहानी आपके एकांकियों की भावभूमि है। आपके एकांकी नाटकों को देखने से यह स्पष्ट लगता है कि उन्होंने जीवन को बहुत नजदीक से और बडी गहराई के साथ देखा है। साथ ही, ईमानदारी के साथ उसे कलम का सहारा देकर सामने रखने का प्रयास किया है। आपके एकांकी आधुनिक सभ्य जगत् की नाना सामाजिक समस्याओं पर व्यंग्य करते हैं। साथ ही उनके एकांकियों में विचार, समस्या तथा वातावरण का पूर्ण परिपाक है। सामाजिक नाटकों में श्री माथुरजी ने प्रमुख रुप से मध्य वर्ग और उच्च वर्ग की समस्याओं, मिथ्या दिखावों, उनके जीवन के भीतरी खोखलेपन, हृदयहीनता, स्वार्थपरता, अनैतिकता और झूठ-फरेब का प्रभावशाली और स्पष्ट रुप से चित्रण किया है। प्राचीन रुढ़ियों, जर्जर मान्यताओं और उनसे चिपके रहते भी नयेपन का ढोंग करनेवाली भावनाओं पर निर्मम प्रहार किया है। माथुरजी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास की गौरवशाली कथाओं और

गौरवशाली आदर्श पात्रों को प्रस्तुत किया है। वे अपने काल के मानवीय अदम्य संघर्षशीलता के प्रतीक और आदर्श हैं। वे पात्र अपनी संघर्षशीलता की विशेषता के द्वारा आज भी हमारे सहयोगी मित्र बनकर हमें संघर्ष की अदम्य प्रेरणा प्रदान करते हैं। पात्रों को अत्यंत संयम से घटनाओं में प्रवेश कराया है। संवाद साहित्यिक शैली में अपनी व्यक्तिगत गंभीरता लिये हुये हैं। माथुरजी के एकांकी नोटकों की संख्या अधिक नहीं है पर उनमें शिल्प की पर्याप्त परिपक्वता दिखाई देती है।

भोर का तारा, रीढ की हड्डी और ओ मेरे सपने, माथुरजी के प्रसिद्ध एकांकी हैं। कुछ एकांकी ऐसी हैं जो मर्म को स्पर्श करती हैं - जैसे बंदी, खंडहर, भोर का तारा आदि। उनके एकांकी-जगत में समन्वयवादी अकांक्षा का विद्यमान होना समीचीन ही है क्योंकि उन्होंने भारतीय परिप्रेक्ष्य में उभरी समस्याओं को पाश्चात्य टेकनीक के सहारे अभिव्यक्त किया है। इनके एकांकियो में रीढ़ की हड्डी (1939), मकडी का जाला (1941), खण्डहर (1943), ओ मेरे सपने, घोंसले, खिड़की की राह, कबूतरखाना, भाषण, शारदीया और बंदी प्रमुख हैं। अपने सभी एकांकियों की सृष्टि प्रायः रंगमंच एवं अभिनय कला को ध्यान में रखकर ही की है। इसी वजह से अभिनेय एकांकियों में आपका सर्वोपरि स्थान है।

श्री माथुर ने अपने एकांकियों में वर्तमान जीवन की साधारण एवं गंभीर समस्याओं का निरुपण यथार्थवादी जीवन दर्शन से किया है। उन्होंने आधुनिक समाज में परिव्याप्त उन विषमताओं एवं विसंगतियों पर तीव्र व्यंग्य प्रहार किये हैं। जो रुढिग्रस्त संस्कारों और बदलते परिवेश के बीच जटिल संघर्ष के कारण बनी हुई हैं तथा जिनके कारण सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त होकर विकृति की ओर अग्रसर हो रहा है ऐसे तथाकथित 'सभ्य' समाज का दंभी समाज के खोखलेपन को पर्दाफाश किया है।

'रीढ़ की हड्डी' जगदीशचन्द्र माथुर की प्रसिद्ध एकांकी है। इसमें मध्यवर्ग की एक बडी समस्या की प्रस्तुति हुई है। हास्य और व्यंग्य की मीठी चुटकियों के साथ इन्होंने वर्तमान युग की विवाह को समस्या की लेखक ने तीखे व्यंग्य के द्वारा प्रस्तुत किया है। व्यंग्य बड़ा स्पष्ट है। एकांकी का कथानक संक्षिप्त है। आज के समाज की यथार्थ स्थिति का अंकन इसमें किया गया है। रामस्वरुप ने अपनी बेटी उमा को बी.ए. तक की शिक्षा दी है और यही मुसीबत का कारण है। गोपाल प्रसाद खुद पढ़ा लिखा है, वकील है, सभा सोसायटियों में जाता है, मगर अपने बेटे के लिये बहू चाहता है ऐसी जो ज्यादा पडी-लिखी न हो।[165] हालत यह है कि आज बेटी वालों को इस बात पर पछतावा हो रहा है कि उन्होंने अपनी कन्या को सुशिक्षिता क्यों बनाया और वर पक्ष के समक्ष यह झुठ बोलना पडता है कि लडकी अधिक पढी-लिखी नहीं है। पढी-लिखी लड़कियों से

समाज को जो शिकायत है उसे गोपाल प्रसाद ने बडे साफ ढंग से इस प्रकार बताया है- जी हॉ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढी-लिखी लड़की नहीं चाहिये। मेमसाहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को। बस हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिये। गोपाल प्रसाद का बेटा शंकर, जिसके लिये वधू का चुनाव हो रहा है, भी कह देता है- 'कोई नौकरी तो करनी नहीं।'[166] इधर लडकी की माँ अपनी परेशानी में सोचती है कि वह जमाना ही ठीक था, जब उसका विवाह हुआ था। वह कहती है- 'अपना जमाना अच्छा था। 'आ' 'स' 'ई' पढ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो स्त्री-सुबोधिनी पढ़ ली।[167] लेकिन जमाना आगे बढ गया है। गोपाल प्रसाद जैसा दकियानूस भी इतना तो चाहता ही है कि उसकी होनेवाली पुत्रवधू कम से कम मैट्रिक पास हो, थोड़ा गाना बजाना भी उसे आये, पेंटिग-सिलाई की भी शिक्षा उसे प्राप्त हो। उसका विरोध बहुत पढ़ी-लिखी लडकियों से है - साधारण पढी-लिखी मैट्रिक पास से नहीं। नयी रोशनी के कारण उमा जैसी लड़कियॉ बेजबान गाय बनी रहना नहीं सह पाती और जब उन्हें लगता है कि वे भी क्रय-विक्रय की कोई वस्तु मानी जा रही हैं, तो वे तीव्र विरोध कर उठती है। उमा ने कहा ही है- 'क्या जवाब दूँ बाबूजी। जब कुर्सी-मेज बिकती है तब दुकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नही पूछता, सिर्फ खरीददार को दिखला देता है। पसंद आ गयी तो अच्छा है, वरना.....।"[168] उमा का स्वाभिमान यह देखकर आहत होता है कि गोपाल प्रसाद ने उसे सौदे की वस्तु समझा और उसी भाव से उसे परख रहे हैं। वह खुले शब्दों में नारी-वर्ग के विरोध को वाणी देती है और हमारे आगे समस्या के मुख्य पहलू को प्रस्तुत करती हुई कहती है : 'ये जो महाशय मेरे खरीददार बन कर आये हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लडकियों का दिल नहीं होता? क्या उनको चोट नहीं लगती? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं जिन्हें कसाई अच्छी तरह देखभाल कर खरीदते हैं?'[169] उसका कहना है कि उसने बी.ए. पास किया है और इसमें न कोई पाप है, न चोरी है, जो वह शर्मिन्दा हो।

'मकड़ी का जाला' शीर्षक एकांकी में माथुर जी ने सम्पत्ति संचय और ऐश्वर्य-कामना के मकडी के जाल में उलझकर अपनी सबसे बडी निधि को खो देने वाले एक व्यक्ति की समस्या उठायी है। भोलानाथ नामक एक व्यक्ति है, जो पहले बहुत ही निर्धन था। बीस साल पहले उसे कमला नामक युवती से प्रेम हो गया था। लेकिन जीवन में उसके इतने अभाव थे कि उन अभावों ने उसे सुझाया कि पहले वह धन कमाएँ, धनी बन जाए फिर प्रेम तो किया ही जा सकता है। भोलानाथ उन्नति के मार्ग में बैल की तरह जुत जाता है। आगे जाकर उसके पास बेशुमार दौलत हो जाती है। वह काफी कम्पनियों का हिस्सेदार भी बन जाता है। लेकिन आज उसका जीवन रेगिस्तान हो गया है। श्मशान बन गया है। क्योंकि दौलत पाने की होड मे अपनी सबसे बडी दौलत - कमला के प्रेम को ही गॅवा दिया। इस प्रकार निर्धन भोलानाथ पूँजीपति तो बन जाता है,

लेकिन एक दृष्टि से वह और भी निर्धन बन जाता है। कॉलेज से निकला एक स्मार्ट युवक चन्द्रभान भोलानाथ से नौकरी मॉगने आता है। नवयुवक चन्द्रभान के हृदय में काफी अरमान भरे हुए हैं वह चाहता है कि भोलानाथ की मदद से वह भी उन्नति कर सकता है। अपने जीवन में शायरी को भी महत्ता देता है उसे जीवन के लिये जरुरी मानता है। भोलानाथ को ऐसे नौजवानों को जिनकी आँखों में भविष्य के सपने नाच रहे हैं उन्हें कठोर संसार से टकराते देखकर एक प्रकार से लुफ आता है, मजा आता है। भोलानाथ नवयुवक चन्द्रभान को नौकरी पर रख लेता है लेकिन साथ ही उसे व्यावहारिकता की जिन्दगी की कुछ सीख भी देना चाहता है। भोलानाथ की सीख है कि चन्द्रभान को खुली धूप में नंगी ऑखों से चीजों को देखने की आदत डालनी चाहिए। जिन्दगी एक कठोर मालिक है उर उसके दिल में दया नहीं है, वह सिर्फ काम ही लेना जानती है। मिन्नतों का उसके ऊपर कोई असर नहीं होता। गाने और रोने पर वह मोहित नहीं होती, जो जितना अपने जजबात को दबा सकता है वह उतना ही तरक्की कर सकता है। इसलिए चन्द्रभान को कविता भुलानी चाहिए।

इस प्रकार भोलानाथ उस नादान युवक के स्वप्नों को तोड देना चाहता है। लेखक के शब्दों में - सुंदरता के मंदिर के एक और उपासक को भ्रष्ट कर देना चाहता है। इसी में ही भोलानाथ अपनी विजय समझता है। भोलानाथ ऐसा इसलिए करता है कि किसी की लालसा को चकनाचूर करने में उसे आत्म-पीडन का सुख मिलता है। यह आनंद जो ऐसा करके उसे मिलता है वह उसकी भूखी आत्मा की जो माँग है उसे पूरा कर देता है किन्तु उसकी अन्तः चेतना उसे ऐसे कार्य के लिए धिक्कारती है और आवेश में एक क्षण में वह पुकार उठता है – 'उससे कह दो अगर उसे बचना है तो वह दूर भाग जाय - बहुत दूर।' लेकिन भोलानाथ को तो अर्थ पिशाच ने ग्रस्त कर रखा है, वह मकड़ी के जाले में फँस चुका है और जैसे आप फॅसा हुआ है, वैसे ही वह चन्द्रभान जैसे दूसरे लोगों को उस जाल में फॅसाकर छोडने के लिए विवश है।

'ओ मेरे सपने' एकांकी प्रकार में विशुद्ध प्रहसन है। इसका रंगमंच प्रहसन के सभी तत्वों से पूर्णतः मंडित है। 'प्रहसन' जिसमें व्यंग्य तत्व की सबसे बडी अपेक्षा होती है, वह व्यंग्य-सत्य यहाँ खूब मुखरित है। अभिनेयता और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से यह प्रहसन हिन्दी में उल्लेखनीय है। प्रस्तुत एकांकी में वर्तमान पीढ़ी के युवा वर्ग पर तीखा व्यंग्य किया गया है। फिल्मों की अस्वस्थ परंपरा ने इस वर्ग में एक विचित्र प्रकार की फिल्मी चेतना ला दी है। फिल्मी हीरो-हिरोइनों की भाँति इनके जीवन के क्षण गुजरते हैं। युवावर्ग की इसी अस्वस्थता एवं अधकचरेपन का बडी सफलता के साथ इस एकांकी में निर्देशन हुआ है। प्रस्तुत एकाकी 'ओ मेरे सपने' आधुनिक सामाजिकों की रुग्ण और अस्वस्थ मानसिकता की ओर संकेत करती हैं।

फिल्मी सितारों की नकल कर वास्तविक दुनिया में उसे प्रयोगात्मक रुप देनेवाले आधुनिक नव-युवकों पर व्यंग्य किया है। यह व्यंग्य सूरजभान, मगनचन्द और गोपीनाथ की विकृत मानसिकता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। तीनों नवयुवक परस्पर घनिष्ट मित्र हैं। कॉलेज-जीवन में प्रत्येक युवक के कुछ सपने होते हैं, उसके सपनों की नायिका कोई स्त्री होती है, चाहे वह फिल्मी हिरोइन ही क्यों न हो। इन मित्रों की भी सपनों की नायिका 'माला' और 'मालिनी' नामक दो फिल्मी हिरोइन हैं। एक दिन ये मित्र एक कॉफी-हाउस मे सरिता नामक एक युवती को देखते हैं और उस पर मोहित होकर अपना प्रणय-निवेदन करना चाहते हैं। कॉफी-हाउस में ही विमल नामक एक अन्य युवक उन्हें मिलता है जो सरिता के घर का पता बताता है। ये सरिता के घर पहुँचकर उसके लॉन में उससे मिलते हैं। सरिता से अपना प्रणय-निवेदन करते हैं। सरिता भी तीनों प्रेमियों को निराश न कर उनकी बातें सुनती है। इसके पश्चात् वह अन्दर जाती है और जिस पुरुष से इनकी भेंट कराती है, वह वही युवक विमल है जो कॉफी-हाउस में उन्हें मिला था, विमल सरिता का पति है और सरिता दो बच्चों की माँ है। तीनों प्रेमी निराश होते हैं–

"सूरजभान – (भर्राये गले से) मगन भाई! गोपी भाई! हम लुट गये।

मगनचंद – हमारे.... रोमांस का महल ढह गया।

सूरजभान – हमारा चमकता हुआ सोना मिट्टी हो गया।

मगनचन्द – यह क्या हो गया? कैसे हो गया?

सूरजभान – (विक्षिप्त, दोनों हाथ उठाकर) ओ मेरे सपने! कहाँ है तू ? लौट आ, मेरे सुनहले सपने, लौट आ।" तीनों सोचते हैं, कुछ भी हो, हमारे सपने तो हमसे कोई छीन ही नहीं सकता। प्रहसन में कॉलेज-युवकों की स्वप्निल कल्पनाओं पर व्यंग्य है। सरिता का दो बच्चों की माँ होना तीनों प्रेमियों को निराश कर देता है। उसकी निराशा से हास्य उत्पन्न होता है।

'घोंसले' में कॉलेज जीवन में स्वच्छंद और स्वतंत्र जीवन व्यतीत करनेवाले युवकों पर मीठा व्यंग्य है। जगमोहन और विजय ऐसे ही दो युवक हैं, जो कॉलेज जीवन में परम मित्र थे। विजय को पहलवानी का शौक था। जगमोहन सुंदर, आकर्षक और सभी छात्राओं को अपनी आकर्षक-भंगिमाओं द्वारा मन मोहने वाला था। वह घोंसले और अण्डों मे विश्वास न करता था। उसने विवाह के विरुद्ध अपनी थीसिस लिखी थी। विजय के शब्दों में उसका सिद्धान्त था "यदि सभ्यता को बचाना है तो कानून के जोर से शादियों को बंद कर देना चाहिये। शादी वह दीवार है, जो मनुष्य अपनी आत्मारुपी अनारकली के चारों तरफ चिनता है ताकि वह घुटकर मर जाय।' समय के प्रवाह में पडकर दोनों के अपने-अपने सिद्धान्त बह जाते हैं। दोनो वैवाहिक जीवन में बंध जाते हैं। और एक अस्पताल के मैटरनिटी वार्ड में दोनो की अचानक भेंट हो जाती

है। विजय चार बेटियों का पिता बन चुका है और पाँचवी संतान का पिता बनने वाला है। जगमोहन अपना परिणाम सुनने को उत्सुक है और नर्स से बार-बार पूछता है। कुछ समय उपरांत उसे ज्ञात होता है उसकी पत्नी ने एक पुत्र और एक पुत्री को एक साथ जन्म दिया है। दोनों मित्र हँसते हैं, विजय कहता है तुम इस भाँति मुझसे भी आगे निकल जाओगे। विजय अपनी पुत्रियों के संबंध में बडे ही विनोदात्मक ढंग से जगमोहन से कहता है - "विजय– सुनो भी। जब दूसरी लडकी हुई तो हम लोगों ने कहा, चलो पहली के साथ खेलने को सहेली चाहिये थी। तीसरी हुई तो सोचा एक स्पेयर पार्ट भी तो हो....।" एकांकी की विशिष्टता उसका शिष्ट हास्य और हल्का व्यंग्य है। संवाद अत्यंत रोचक हैं। इस की भाषा आडम्बर से रहित है। जीवन में सिद्धांतों पर सदा अडिग रहना संभव नही है, यही रचनाकार का उद्देश्य है। घोंसले न बनाने में विश्वास रखनेवाले घोंसने और अण्डे सभी कुछ बना लेते हैं। एकांकी रंगमंच की दृष्टि से पूर्ण रुप से सफल है। विजय और जगमोहन के संवाद हास्यपूर्ण हैं - "तुम तो हमेशा कोयल पंछी की तरह रहे थे।.... घोंसले और अण्डों से कोई वास्ता नहीं।" जगमोहन विजय को विवाह के संबंध में अपने विचार बताते हुये कहता है-

"जगमोहन.... मेरे अनुभव में तो विवाहित जीवन दो हिस्सेदारों का एक बैक है। ... विजय - खूब! मगर स्लीपिंग पार्टनर भी तो कभी-कभी अपने अधिकारों पर अड जाता है।

'खिड़की की राह' इस प्रहसन का नायक दिलीप है जो अच्छा कलाकार है। कला का सचा आदर ही उसके जीवन का लक्ष्य है। कला का निरादर करने वालों से वह घृणा करता है। वह अपने विचारों को आरंभ में ही व्यक्त कर देता है – "दिलीप - समाज उसके आगे दबता है जो खिडकी की राह कूदकर उसे दबा सके। जिसने दरवाजा पकड़ा, वह तो उसका गुलाम है, गुलाम।" कथानक इस प्रकार है कि प्रवीण अपने घर में एक भोज देता है, अपने मित्रों को आमंत्रित करता है, साथ ही अपनी प्रेयसी उर्मिला को भी अपने मित्रों से परिचित कराने को आमंत्रित करता है। दिलीप अपना वायलन सुनाने उस भोज में बुलाया जाता है। परन्तु सभी मित्र वायलन सुनने के स्थान पर अपनी-अपनी बातचीत में व्यस्त रहते हैं, दिलीप को यह अपनी कला का अपमान लगता है और वह चारों को एक-एक चॉटा रसीद कर भाग आता है। वह खिडकी की राह प्रवीण के शयन-कक्ष में पहुँच जाता है, जहॉ उर्मिला प्रवीण द्वारा उपहार में दिए गए वस्त्राभूषण पहनकर प्रवीण की प्रतीक्षा कर रही होती है। दिलीप के पहुँचने पर पहले तो उर्मिला उसे झिडकती है परन्तु फिर उसके विचारों से प्रभावित होती है। इसी समय प्रवीण आ जाता है। प्रवीण ने जिन सवादों द्वारा उर्मिला का मन मोह लिया था, वे सब सम्वाद 'सफल जीवन की कुंजी' नामक पुस्तक से उसने पढकर याद किये थे और उर्मिला को सुनाये थे। दिलीप उन्हीं वाक्यांशों को उस पुस्तक से पढ-पढ़कर सुना देता है। उर्मिला अब प्रवीण के वास्तविक रुप को जान लेती है और वह दिलीप की ओर आकर्षित हो जाती

है। दिलीप उर्मिला को खिड़की की राह निकाल कर बाहर ले जाता है। यहीं एकांकी समाप्त हो जाती है। यद्यपि श्री माथुर ने इसे हास्य नाटकों की कोटि में रखा है, परंतु प्रवीण द्वारा कृत्रिम आचरण की त्रुटि और उसके लिये अभिदंडित किया जाना तथा उर्मिला की अप्राप्ति, इस प्रहसन को त्रासदी के अधिक समीप पहुँचा देता है, ऐसा हमारा विनम्र मत है।

'कबूतरखाना' एकांकी में रतन और कंचन पति-पत्नी हैं। रतन एक डिब्बा बनवाकर लाता है, जिसमें कई खाने बने हैं। इन खानों में घर के बिल, रसीदें, बीमे की पॉलिसी, बैक के नोटिस आदि रखे जायेंगे। कंचन उसे 'कबूतरखाना' कहती है। दोनों पति-पत्नी इसी कबूतरखाने को लेकर परस्पर झगडते हैं। झगड़ते-झगडते उन्हें अपना अतीत याद आता है जब कंचन वायलन पर मधुर धुन सुनाया करती थी और रतन पैन से पत्नी का चित्र बनाया करता था। विवाह की वर्षगांठ पर पिकनिक मनाने के प्रोग्राम को लेकर ही दोनों में समझौता हो जाता है। रतन कहता है– 'यही तो जिंदगी है.... पथरीली चट्टानों और रस भरे बादलों का संयोग।' दाम्पत्य जीवन के कटु और मधुर दोनों पक्ष ही एकांकीकार दिखाना चाहता है। 'कबूतरखाना' ही हास्य का कारण बन जाता है। एकांकी के आरंभ में ही रंगमंचीय निर्देश घटना-क्रम तीव्रगति से चलता है। चरमसीमा का अभी ज्ञान भी नहीं होता कि एकांकी समाप्त हो जाती है। कथानक के आरंभ में ही जिज्ञासा है, जब रतन कंचन से कहता है– "अरे भई कंचन यह बनकर आ गया है।" प्रस्तुत एकांकी में मध्यवर्गीय क्लर्क की उस सनक की हँसी उडाई गई, जो दफ्तर में पत्रादि रखने के लकड़ी के खानों की तरह अपने घर में भी सभी सामान रखने के लिए खाने बना रखता है और उन्हीं में सामान रखना पसंद करता है। इसके फलस्वरुप घर कबूतरखाना बन जाता है और घर में कलह होता है।

'भाषण' एकांकी में मि. हरीशनन्दन एस.डी.ओ. अपनी पत्नी को भाषण देने को तत्पर करते हैं। भाषण कैसे तैयार किया जाता है, यह अपनी पत्नी को समझाते हैं। भाषण में प्रशंसाओं के भी पुल बाँधने चाहिये, फिर अपने काम की बातें करनी चाहिये। भाषण के बीच किराये के लोग तालियाँ बजाने को रख लिये जाते हैं– हरीशनन्दन - "अरे, भाषण जमाने में क्या लगता है। दो-चार वकील मुख्तार तो पहले से तैयार कर रखूंगा। ठीक-ठीक मौकों पर ताली बजावेंगे।" स्त्रियाँ सदा अपनी आयु कम बताती है परन्तु आवश्यकता पडने पर बढा भी लेती हैं। एकांकी की नायिका मोहिनी गवर्नर साहब की लेडी को अपनी आयु 19 वर्ष बताती है, परन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि असेम्बली की सदस्यता के लिए 25 वर्ष की आयु होनी चाहिए तो उसे बडा दुख होता है। मोहिनी एक आधुनिक युवा महिला है। भोग-विलास और मनोरंजन को ही वह अपना जीवन समझती है। वह एस.डी.ओ. की पत्नी है। मान और प्रतिष्ठा-प्राप्ति के किसी भी अवसर को खोना

नहीं चाहती है। हरीशनन्दन एस.डी.ओ. किसी भी प्रकार अपनी प्रतिष्ठा और पद-गौरव को बढ़ाना चाहते हैं। इसका उद्देश्य है कि भाषण-बाजी के आधार पर वर्तमान काल में कैसे अपना स्वार्थ सिद्ध किया जाता है। इसी तथ्य को हास्य-व्यंग्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। अफसरों की खुशामद का भी चित्रण है।

प्रस्तुत एकांकी में सार्वजनिक संस्थाओं के प्रबंधकों की स्वार्थपरता की ओर संकेत करते हुए बालिका विद्यालय में बडे अधिकारियों की पत्नी के व्याख्यान पर हास्य-व्यंग्य से पूर्ण चित्रण किया गया है।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर कृत '**कलिंग विजय**' ऐतिहासिक रचना है। भारत सम्राट अशोक के कलिंग विजय के पश्चात् की घटना पर आधारित है। प्रस्तुत एकांकी में इतिहास का सहारा उन्होंने अल्प मात्रा में ही लिया है। इसमें इतिहास के साथ मानवीय अंतः संघर्षो का भावात्मक एवं यथार्थ नियोजन हुआ है। नाटककार ने अशोक के अन्तर्द्वन्द्व का सफल अंकन किया है। नाटककार ने अशोक के अन्तर्द्वन्द्व का सफल अंकन किया है। सम्राट अशोक प्रेयसी रेखा के कहने पर कलिंग युद्ध करता है, जिससे लाखों हत्याएँ होती हैं। अशोक रेखा के कहने पर अपने भाई बीतशोक को देश से निकाल देता है। अन्त में कलिंग की राजकुमारी गायिका के रुप में आकर अशोक को उसकी गलतियों से परिचित करवाती है तथा उसे भाई के रुप में स्वीकार करती हैं। इससे अशोक का हृदय-परिवर्तन होता है और वह बौद्ध-भिक्षु बन जाता है। प्रस्तुत एकांकी में कवित्व और संगीत है जो गायिका कलिंग की राजकुमारी द्वारा अशोक के हृदय-परिवर्तन का कारण बनता है। यथा-"अरे! क्या था कोई अभिशाप, अरे क्या मायाविनि का जाल, कि जो आकांक्षा का बन दास, शांति सुंदरता का बन काल.... भ्रमर ने विश्व-विजय ली ठान।"[170] रेखा में असाधारण सौन्दर्य एवं आकर्षण शक्ति है जिसके कारण अशोक मंत्र-मुग्ध-सा मादक-मोहक जाल में पडा रहता है। रेखा चतुर है और परिस्थिति का लाभ उठाने की बुद्धि रखती है। इसीलिए लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उसके सामने उचित-अनुचित की सीमाएँ निरर्थक हैं। रेखा को अपने कुकर्मो पर पश्चाताप नहीं है। कृतज्ञता की अपेक्षा उसमें अधिकार का स्वर मुखरित हुआ है – "रेखा- रेखा पैदा हुई है शासन करने के लिए, शक्ति के लिए। जहॉ मेरी शक्ति और अधिकार तनिक भी घटते हैं, वहाँ अधिक ठहरना मैं व्यर्थ समझती हूँ।"[171] जगदीश चन्द्र माथुर के पात्रों में चारित्रिक द्वन्द्व मिलता है। इस प्रकार माथुरजी ने अशोक के अन्तःसंघर्ष का हृदयग्राही चित्रण किया है। इसी प्रकार रेखा आँधी तूफान की तरह दृढ महत्वाकांक्षी साम्राज्ञी बनने की इच्छुक, दूसरी ओर कलिंग की राजकुमारी आत्म-संयम, स्वाभिमान और आदर्शवादी दोनों स्त्रियाँ प्रेरक शक्ति के रुप में चित्रित की गई है।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर कृत '**भोर का तारा**' एकांकी की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है। कथानक सन् 455 ई के आस-पास का है। इस समय स्कंदगुप्त भारत का सम्राट था। देश पर हूणों के आक्रमण हो रहे थे। गुप्त सम्राट कवियों का विशेष आदर करते थे। शेखर ऐसा ही कवि है जिसकी कविता में यौवन का उन्माद और प्रेम की वेगवती धारा है। कवि प्रेयसी के प्रेम में डूबा हुआ है। उसी के प्रणय-स्मृति में उसने 'भोर का तारा' प्रेम-काव्य की रचना की है, किन्तु जब देश सुधार उसके सामने आता है, तब कर्तव्य और प्रेम का द्वन्द्व उसके सामने उपस्थित हो जाता है। कुछ क्षणों में ही वह अपना कर्तव्य निश्चित कर देता है और कर्तव्य पर प्रेम का बलिदान करके जन-जागरण में शंखनाद फूँकने के लिए निकल पडता है। अतः प्रस्तुत उद्देश्य, कर्तव्य और प्रेम में कर्तव्य की वेदी पर प्रेम का बलिदान करा देता है। एकांकीकार को अपने इस उद्देश्य को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफलता मिली है। नायक शेखर का ध्येय कविता करना और छाया का प्रेम प्राप्त करना था। वह अपने इन दोनों ध्येयों को प्राप्त कर लेता है। परिस्थितियों के कारण छाया के भाई देवदत्त को शेखर के मित्र माधव के साथ हूणों का सामना करने के लिए सीमा प्रांत जाना पडता है। इसी बीच में शेखर और छाया का विवाह हो जाता है। शेखर को उसकी प्रेरणा और कविता मिल जाती है। वह 'भोर का तारा' काव्य की रचना करता है। छाया और शेखर प्रेम परिहास कर रहे थे। इसी समय माधव आकर हूणों के आक्रमण और देवदत्त के मृत्यु की सूचना देता है। माधव शेखर से प्रार्थना करता है कि वह अपनी ओजमयी कविता के द्वारा शत्रु का सामना करने के लिए जन-जन में प्रेरणा और उत्साह का संचार कर दे। शेखर अपना महाकाव्य 'भोर का तारा' अंगीठी को समर्पित करता है और जन-जागरण का शंखनाद फूँकने को निकल पडता है।

श्री माथुर जी की '**बंदी**' भी एक सामाजिक एकांकी है, जिसमें नगरवासियों के मनोविज्ञान सम्बंधी विविध स्तरों का यथातथ्य चित्रण करके सही दिशा की ओर संकेत किया है। हाईकोर्ट के रिटायर्ड जज रायसाहब अपनी पुत्री हेमलता एवं उसके मित्र वीरेन के साथ 'प्रतिष्ठा और अवकाश' में सराबोर होने के लिए अपने गाँव लौटे हैं। वीरेन का प्रयोजन इस गाँव में काल्पनिक मनमोहक महल की स्थापना करना है लेकिन दूसरी तरफ बालेश्वर और करमचंद जैसे व्यक्तियों के लिए यह गाँव क्लब और चहल-पहल की अनुपस्थिति में काले-पानीवाला बंदीगृह प्रतीत होता है। हेमलता के द्वारा प्रस्तुत किये हुए चित्र में गॉव के नृत्यकों की एक टोली को अंकित करके उनके उन्मुक्त जीवन की एक झाँकी चित्रित की गयी है। उस चित्र में एक अंधेरे कोने में कुछ अन्य लोग भी खडे हुए प्रदर्शित किए गये हैं जो वीरेन को निर्वासित भटके हुए प्राणी प्रतीत होते हैं , रायसाहब को वे ऐसे सूखे और सूने वृक्ष जान पडते हैं, जिन्हें धरती से खुराक नहीं मिलती और लोचन की दृष्टि से ये अपनी ही जंजीरों से बँधे बंदी जैसे हैं। वस्तुतः ये नगर से आये हुए वे लोग प्रदर्शित किये गये हैं, जो गॉव की जिन्दगी का हिस्सा नहीं बने हैं। इस प्रकार लेखक ने लघु कथानक के माध्यम से

लोगों के मन्तव्य, मनोविज्ञान और उनकी प्रतिक्रियाओं का यथातथ्य चित्रण किया है।

'घोंसले' नामक प्रहसन का मूल प्रयोजन परिवार नियोजन की आवश्यकता पर बल देना है। मध्यवर्ग की एक समस्या है - बहुत बच्चों की समस्या। 'घोंसले' शीर्षक एकांकी में इसी समस्या की प्रस्तुति हुई है। इस समस्या को दो प्रधान पात्रों, जगमोहन और विजय के माध्यम से उपस्थित किया गया है। जगमोहन अपने कॉलेज-जीवन के समय ऐसा छबीला सरदार था, जिसके लिये कॉलेज की लडकियों के सारे अच्छे-अच्छे कटाक्ष रिजर्व रहते थे। वह सदा कोयल की तरह रहेन में विश्वास करता था- घोंसले और अण्डों से कोई सरोकार रखना नहीं चाहता था। उसका सिद्धान्त था कि यदि सभ्यता को बचाकर रखना है तो कानून के बल पर शादियों को रोक देना होगा। यह इसीलिये कि शादी वह दीवार है, जो मनुष्य की आत्मारुपी अनारकली के चारों तरफ चुनी जाती है और मनुष्य उसके बीच घुटकर मर जाता है। लेकिन वही बाँका सरदार आज अस्पताल के मैटरनिटी वार्ड के बाहर फैसले की प्रतीक्षा करते अभियुक्त की तरह खडा है और सुनता है कि उसकी पत्नी ने दो बच्चे एक साथ जने। इधर दूसरा है विजय, जो आपबीती कहते हुए कहता है– 'जब दूसरी लडकी हुई तो हम लोगों ने कहा, चलो, पहली के साथ खेलने के लिए सहेली चाहिए। तीसरी हुई तो सोचा, एक स्पेयर पार्ट भी तो हो। जब चौथी का नंबर आया तो क्या कहकर तसल्ली पाते? कहा कि चलो, शुरु-शुरु में ही इन झंझटों से निबट ले, आगे फुरसत रहेगी।' विजय की समझ में - 'पहला बच्चा खुशी का आलम, दो बच्चे खतरे की घंटी, तीन बच्चे, बस भई, चार बच्चे, खुदा की पनाह और पाँच बच्चे-मातम।'[172]

श्री माथुर ने अपने एकांकियों में वर्तमान जीवन की साधारण एवं गंभीर समस्याओ का निरुपण यथार्थवादी जीवन-दर्शन से किया है। उन्होंने आधुनिक समाज में परिव्याप्त उन विषमताओं एवं विसगतियों पर तीव्र व्यंग्य-प्रहार किये हैं, जो रुढिग्रस्त संस्कारों और बदलते जीवन-मूल्यों के बीच जटिल संघर्ष का कारण बनी हुई हैं तथा जिनके कारण सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त होकर विकृति की ओर अग्रसर हो रहा है।

मोहन राकेश :

मोहन राकेश, प्रयोगधर्मी साहित्यकार थे। उन्हें प्रयोगधर्मिता में सर्वाधिक सफलता दृश्य-साहित्य के क्षेत्र में मिली। सुविख्यात नाट्य-कृतियों ने उन्हें न केवल हिन्दी की वरन् भारतीय रंगमंच की शीर्षस्थ प्रतिभाओं की पंक्ति में बैठा दिया। अपनी एकांकियों के माध्यम से राकेश जी ने युग-जीवन में, अपने समय

के जीवन में अनवरत परिवर्तित हो रहे जीवन-मूल्यों को बड़े नजदीक से देखकर, उसकी मानसिकता के गहरे में उतरकर अस्मिता के उन आयामों को रुपाकार प्रदान करने का प्रयत्न किया है, जो सहसा चतुर्दिक से उभर कर समूचे जीवन-संदर्भो को छा लेने की आकुलता से संयत एवं तरंगत थे। अपने परपरागत परिवेश और मान्यताओं के प्रति ऊब को इनमें रुपायित किया है। आधुनिक संवेदना से युक्त मोहन राकेश ने समसामयिक जिन्दगी के सही दस्तावेज को प्रस्तुत किया है और आपने आदमी की टूटन और उसके बिखराव को स्वर दिए हैं। अस्तित्व-बोध के संकट से जुड़कर ये संत्रास पीडा, क्षोभ, भयावहता, निरर्थकता-बोध आदि भाव-रुपों को उजागर कर मानव-नियति की परवशता को रेखांकित करते हैं। आपने मध्यवर्ग के नारी-पात्रों के मानवीय रिश्तों की द्वन्द्व पीडा को मुखर किया है। स्त्री-पुरुष को केन्द्र में रखकर मानवीय सम्बन्धों का सूक्ष्म आंकलन किया है। स्नेह-रिक्त जीवन मानसिक और भावना के स्तर पर जीना कितना असह्य और यंत्रणापूर्ण होता है, उसे यथार्थ परिवेश में अंकित करने का राकेश जी ने सार्थक प्रयत्न किया है।

अपनी समग्र मानसिकता में दोहरेपन के द्वन्द्व को आपने यहाँ विशेष रुप से रुपायित किया है, जो युग-प्रवृत्तियों और परिस्थितियों की देन है। समसामयिक जीवन के कुछ पहलुओं पर एकाग्र हो मोहन राकेश ने साहित्य निर्मित किया है। उनके नाटकों, एकांकियों, कहानियों, उपन्यासों आदि के पात्र उनकी ऊब, स्थितियाँ हमें अपने परिवेश की लगती हैं।

'अण्डे के छिलके' में चार एकांकी हैं : 'अण्डे के छिलके', 'सिपाही की माँ', 'प्यालियाँ टूटती हैं', 'बहुत बड़ा सवाल'। **'अण्डे के छिलके'** की कथावस्तु साधारण है और इसके माध्यम से राकेश जी यह संकेत करना चाहते हैं कि भारतीय समाज कैसे छद्म अर्थात् भ्रम पर जीता है। इसमें श्याम, बीना, राधा, गोपाल, जमुना और माधव पात्र हैं। श्याम और गोपाल भाई हैं और बीना भाभी। यहाँ सभी कुछ बूढी माँ को छिपाकर किया जाता है। गोपाल छिपाकर सिगरेट पीता है, अण्डे छिपाकर खाए जाते हैं। बड़ी बहू राधा सबके सामने रामायण पढती है, पर रात में चुपके से चन्द्रकांता सन्तिति जैसी तिलस्मी पुस्तकें। अण्डे का हलवा कमरा बंद करके बनाया जाता है, पर माँ जमुना आ पहुँचती है।

'सिपाही की माँ' द्वितीय महायुद्ध से सम्बद्ध एकांकी है। बिशनी देहात की सीधी-सादी ग्राम-महिला है, अत्यंत निर्धन। वह संसार की बातें नही समझती। उसका इकलौता बेटा मानक युद्ध के मोर्चे पर बर्मा में है। वह प्रतिदिन बेटे के पत्र की प्रतीक्षा करती है। एकांकी का आरंभ यहीं से होता है कि माँ बिशनी

और बेटी मुन्नी दोनों मानक के पत्र की प्रतीक्षा में हैं। माँ कहती है : "आज भी चिट्ठी नहीं आयी। जाने भाग (भाग्य) में क्या लिखा है?" बिशनी बेटे की चिट्ठी के लिए तरसती रहती है– वही उसका आश्रय है। कहती है: "उसे (बेटे को) यह पता नहीं कि मेरी चिट्ठी जाती है तो माँ के कलेजे में जान पडती है। माँ के कौन दो चार हैं जिनके सहारे वह-लेकर बैठी रहेगी? नदीदे को यह बात तो सोचनी चाहिए।" बिशनी अपढ है, पर उसमें माँ का संवेदन है और वह चिन्ता में डूबी रहती है। दूसरों से जानना चाहती है कि बर्मा कहाँ है जहाँ उसका बेटा युद्ध की बात सुनकर और भी चिन्तित होती है। बिशनी और बर्मी लडकियों की बातचीत से बिशनी के वात्सल्य की गहराई प्रकट होती है। बिशनी उनसे बहुत-कुछ जानना चाहती है। प्रश्न-पर-प्रश्न करती है जो बिशनी के मानवतावाद को उजागर करते हैं। निर्धन होकर भी बेटी मुन्नी से कहती है- "जा, अन्दर हँडिया से कटोरा-भर चावल ले आ।" युद्ध की खबरें सुनकर बिशनी रो पड़ती है। बिशनी की चिन्ता यह भी है कि बेटा आ जाये तो मुन्नी का विवाह कर दे। वह सपना देखती है कि बेटा आयेगा तो बहिन के लिए कड़े-चुडियाँ लायेगा। मानक से सपने में बातचीत करती हुई माँ भावाकुल हो उठती है। यह दृश्य तीन स्तरों पर है- माँ का वात्सल्य, मानक का देश-प्रेम और लेखक द्वारा युद्ध का विरोध। बिशनी अपने बेटे का पक्ष लेते हुए कहती है- "मैं उसकी माँ हूँ। मेरा बेटा वहशी नहीं है। उसने किसी की जान नहीं ली। वह किसी की जान नहीं ले सकता।"..... "मैं अपने बच्चे को अच्छी तरह से जानती हूँ। वह दिल का बहुत भोला है। उसकी किसी के साथ दुश्मनी नहीं है।"

'प्यालियाँ टूटती हैं " एकांकी का आरंभ दो नारी पात्रों की बातचीत से होता है- माधुरी और मीरा। वे प्यालियों के टूट जाने की बात करती हैं। माधुरी ने मिस्टर तथा मिसेज महेता को चाय पर बुलाया है और उनके स्वागत की तैयारियाँ हो रही हैं। मिसेज मेहता 'नखरेवाली' महिला है। माधुरी के रहन-सहन से उच्च मध्यवर्ग का आभास मिलता है- लोन, विलायती पौपी, सोफ़ा, टीसेट आदि। इधर मिस्टर और मिसेज मेहता के आगमन की प्रतीक्षा है, उधर आ जाते है जीजा दीवानचन्द। दीवानचन्द बेफिकर आदमी है- मैला चीकट तहमद लपेटे, गले में अंगोछा। माधुरी इस बेमौके पर उन्हें देखकर परेशान हो जाती है, जल्दी-से-जल्दी उन्हें टरकाना चाहती है। वह जानती है कि मिसेज मेहता इन्हें देख लेंगी तो मजाक उडायेंगी। दीवानचन्द जल्दी जाने का नाम नहीं लेते - तरह-तरह की बातें सुनाते हैं। माधुरी यहाँ तक कहती है : "जीजाजी, आप क्या उतनी देर तक बैठे रहेंगे। हमें अ. उन लोगों (मिसेज मेहता आदि) को जाने यहाँ कितनी देर लग जाय। आप चाय की प्याली पी लीजिए.....।" दीवानचन्द स्थिति भाँप लेते हैं। कहते है : "हॉ-हाँ, बस जा ही रहा हूँ। मुझे पता है, ऐसे कपडों से मेहमानों में बुरा लगता है।"

'बहुत बड़ा सवाल' स्कूल की बैठक को लेकर लिखा गया है। एकांकी स्कूल के कमरे की सफाई से आरंभ होता है। रामभरोसे, श्यामभरोसे धूल झाडते-झाड़ते टिप्पणी करते जाते हैं। सदस्य आकर थोडी देर अध्यक्ष के आने की प्रतीक्षा करते हैं। मीटिंग शुरु होती है पर लगता है कहीं कोई गंभीरता नहीं है- फिजूल की बातें होती हैं। बेकार की बहस में समय नष्ट हो जाता है। व्यंग्य एकांकी की नारी पात्र मनोरमा है जो अन्य पात्रों की तरह चीजों को गंभीरता से नहीं लेती। लोग वाह-वाह करते हैं तो वह भी वाह-वाह करती है; लोगों के हिन्दी उच्चारण सुधारना चाहती है, जैसे सही ढंग से 'सदस्य' कहना। वह छोटे-छोटे वाक्यों में व्यंग्य करती है जैसे प्रेमप्रकाश के यह पूछने पर कि चाय और मूँगफली की दावतें किस खुशी में हुई, मनोरमा कहती है : 'आप लोगों के देर से आने की खुशी में।"

'शायद' एक बीज नाटक है जिसमें पात्र अनाम हैं। उन्हे स्त्री-पुरुष कहा गया है और इनके माध्यम से मोहन राकेशजी ने स्त्री-पुरुष सम्बंधों का विवेचन किया है। स्त्री-पुरुष दम्पत्ति के रुप में हैं जिनका जीवन किसी प्रकार घिसट रहा है, जैसे वहाँ कोई उत्साह नहीं। पुरुष है जो हर बात में कहता है : 'मन नही।" वह बोर हो रहा है और स्त्री यहाँ तक कहती है कि : 'तुम कुछ दिनों के लिये कहीं बाहर चले जाओ।" स्थिति यह है कि पुरुष अकेलेपन का शिकार है और सोचता है कि 'बाहर जाकर भी क्या होगा।' सब जगह एक-सी है। सब जगह एक-सा लगता है।" पुरुष के हाथ में तकलीफ है और उसकी मनःस्थिति पर इसका भी बुरा प्रभाव पडता है। अन्यमनस्कता और उदासी जैसे उसके साथी बन गये हैं। उसके जीवन में नीरसता, ऊब-ही-ऊब है मानो। एकांकी की कथा स्त्री-पुरुष सम्बंधों के ठण्डेपन को लेकर चलती है। पुरुष है जिसके सामने कई जीवन हैं - घर-बाहर के। वह स्वयं स्वीकार करता है: "पता नहीं क्या है मेरे अन्दर - किसी चीज की उदासी बनी रहती है हर वक्त?" पुरुष इस एकरस जीवन (मॉनोटोनी) से ऊब गया है। वह स्वीकार करता है : "लगता है, हर चीज सिर्फ दोहरायी जा रही है। जो जी चुके हैं, उसी को फिर से जी रहे हैं।" मोहन राकेश जी ने इस प्रकार की मध्यवर्गीय ट्रेजेडी को प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से व्यक्त किया है। मध्यवर्गीय स्त्री अपने बारे में स्वयं बताती है: "दिन भर स्कूल में पढाओ। फिर बाजार जाकर सब्जियाँ लाओ। उठाकर लाते हुए बॉहें टूट जाती हैं। घर आकर खाना बनाओ। पर होता कुछ नहीं।"

हरिकृष्ण प्रेमी जी :

आधुनिक एकांकीकारों में श्री हरिकृष्ण प्रेमी जी का नाम भी प्रसिद्ध है। वे नाटककार और एकांकीकार के साथ-साथ कवि भी हैं। अतः उनकी एकांकियों में कवि-हृदय की भावुकता सर्वत्र मिलती है। आपकी एकांकियों मे ऐतिहासिकता के प्रति जितना आकर्षण है, लगाव है, समाज के प्रति उतना मोह भी। चुँकि प्रेमी

जी का साहित्य में पदार्पण भारत की राजनैतिक और सामाजिक संघर्ष की परिस्थितियों में हुआ है। अतः उनकी रचनाएँ राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए स्वयं लिखा है कि - "मैंने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीय एकता के भाव पैदा करने का यतन किया है ...... ।"[173] प्रेमीजी समकालीन समस्या का समाधान इतिहास में ढूंढते हैं। अपने 'प्रकाश स्तंभ' शीर्षक नाटक में उन्होंने लिखा है - 'हमें जहाँ अपने देश की वर्तमान समस्याओं का विचार करना चाहिए, वही अपने अतीत मे वर्तमान समस्याओं के कारण खोजने चाहिए, वहीं से हमें उनका निदान भी प्राप्त होगा। आपकी दृष्टि हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या की भीषणता की ओर है और वे राष्ट्रीयता की भावना जगाकर मजहबी तंगदीली को दूर करना चाहते है। उन्होंने अपने एकांकियों का कथानक इसी पृष्ठभूमि से चुना। उनके एकांकी नाटक अधिकतर हिन्दू-मुस्लिम एकता के स्वरुप को लेकर उपस्थित हुए। प्रेमी जी ने अपने ऐतिहासिक कथानकों की पृष्ठभूमि में आधुनिक समस्याओं को उभार कर उनका सफलता से समाधान प्रस्तुत किया है। प्रेमीजी के एकांकियों ने राष्ट्रीयता को प्रेरणा प्रदान की है तथा राष्ट्रीय भावना का व्यापक रुप प्रतिपादित हुआ।

एकांकी जगत में हरिकृष्ण-प्रेमीजी ने नैतिक आदर्श को प्रतिष्ठित किया है और साहित्य की सृष्टि 'शिवतरक्ष्यते' की दृष्टि से की है जिसके फलस्वरुप नैतिक आदर्शवाद की भावना उनके एकांकी-साहित्य में आ गयी है। आपकी प्रसिद्ध एकांकियाँ हैं-'सेवामंदिर', 'गृहमंदिर', 'मातृमंदिर', 'राष्ट्र मंदिर', 'मान मंदिर', 'न्याय मंदिर', 'वाणी मंदिर', 'बादलों के पार', 'यह भी एक खेल है', 'घर या होटल', 'प्रेम अंधा है', 'पश्चाताप' आदि हैं। प्रेमी जी ने अपने एकांकी-नाटकों में जीवन के सत्य का उपयुक्त प्रतिपादन करने की चेष्टा की है।

प्रेमी जी के एकांकी नाटकों का पहला संग्रह 'मंदिर' है। यह सात एकांकी नाटकों का संग्रह है। इस संग्रह का प्रथम एकांकी-नाटक 'सेवामंदिर' है। **'सेवा मंदिर'** की कथावस्तु राधा नाम की सुंदर स्त्री को लेकर चलती है। राधा माधव से प्रेम करती है, पर समाज का कठिन शासन राधा को एक तपेदिक के रोगी, कुलीन ब्राह्मण से विवाह के बंधन में बाँध देता है। पति के देहांत के पश्चात् राधा का वैधव्य दुःख में भी फलता-फुलता, अछूता यौवन, अतृप्त आशाएँ और उमडते उद्गार समाज से विद्रोह करने को व्यग्र हो जाते हैं। वासना के भयानक थपेडे, प्राणों में जलता ज्वालामुखी, माधव से प्रणय की भीख माँगता है। माधव इसको पाप कहता है। प्रणय और प्रलय के झोंकों मं झूलता हुआ उसका अतृप्त यौवन, वासना की लपेटों में झुलसा हुआ उसका भावुक हृदय हा-हाकार कर उठता है। वासना के इस उमडते हुए प्रलयकारी रुप को माधव कर्तव्य के शांतिपथ पर अग्रसर करना चाहता है। राधा का प्रेम उसको दुर्बल बना देगा यह सोचकर

वह विदा लेता है। राधा को स्वयं उसका रुप और मादक यौवन विचलित कर देता है और ऐसे दुर्बल समाज में जब वह पाप की ज्वाला में स्वयं चलने और जलाने को प्रस्तुत है, राधा का देवर कमल उसकी वासना की ज्वाला में पतंगे की भाँति जलने को प्रस्तुत हो जाता है। कमल का पशुत्व की राधा को कर्तव्य-पथ दिखाता है। राधा कह उठती है- ".......... मेरे लिए मेरा रुप और यौवन अभिशाप है। मेरा भावना-विह्वल हृदय मुझे न जाने कहाँ उड़ा ले जाता। फिर भी आँधी तूफान के भीतर मैं नारीत्व की दीपशिखा को बुझने न दुँगी।' राधा की सास रात्रि के इस प्रहर मे राधा को अपने देवर के सामने देख संदेह करती है और उसे घर से निकाल देती है। अपयश और वैधव्य दुःख से लदा उसका जीवन गंगा मैया के शीतल प्रवाह में शांति पाना चाहता है। पर संयासी माधव एकबार फिर राह से भटकी राधा को कर्तव्य पथ दिखाता है और राधा तथा माधव के पवित्र-प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करते हुए एकांकी समाप्त हो जाती है।

प्रस्तुत एकांकी के माध्यम से प्रेमीजी ने कर्तव्य को वासना से उच्च बताया है तथा नारी की पवित्रता ही नारी का आभूषण है इस सत्यता से भी अवगत कराया है। अपने महान् संदेश को प्रसारित करते हुए आपने बताया है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्य पथ से कदापि विमुख नहीं होना चाहिए तथा आदर्श-प्रेम की व्यंजना की है। यहाँ प्रेमीजी ने विषाद और मादकता का समन्वय कर एकांकी को नया मोड दिया है। इसके अन्तर्गत नारी की कर्तव्य-भावना तथा राधा के मनःसंघर्ष का प्रतिपादन तथा वर्तमान समाज में व्याप्त सेक्स की समस्या का चित्रण भी किया है।

एकांकी के प्रमुख पात्र माधव और मुख्य स्त्री पात्र राधा परस्पर प्रेम करते हैं। परन्तु समाज तथा उनके माता-पिता का निर्णय उन्हें मिलने नहीं देता। दुर्भाग्यवश आज के भारतीय समाज में यह समस्या प्रमुख रुप से विद्यमान है। परिणामस्वरुप समाज में आत्महत्या, हत्याएँ और वेश्यावृत्ति बढ रही है।

'गृह-मंदिर' दूसरा एकांकी नाटक है। सुरेन्द्र नाटक का मुख्य पात्र है। जीवन को वासना के सागर में ही बहने देने वाला सुरेन्द्र जीवन में गंभीर चर्चा को स्थान नहीं देता। मंदिरा और साकी ही उसके जीवन के प्रधान अंग हैं और ऐसे निर्बल चरित्रवाले सुरेन्द्र के पशुत्व का शिकार बनती है कुमुद, जो इस एकांकी की मुख्य पात्री है। वासना के अभिशाप से प्रेरित होकर गर्भवती कुमुद सुरेन्द्र से प्रणय की भीख माँगती है परन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करता। अभागी कुमुद समाज के क्रूर निर्णय से पहले ही घर-बार छोडकर चली जाती है। सुरेन्द्र को अपने कार्य पर पश्चाताप भी होता है, परन्तु उस समय तक कुमुद जा चुकी होती है। सुरेन्द्र का विवाह नए युग में स्वच्छंद रुप से विचरण करनेवाली युवती कला से होता है। कला की स्वच्छंद प्रवृत्ति तथा

अविनाश से मिलना सुरेन्द्र को पसंद नहीं था और इन सबने उसके जीवन की ओर से विमुख कर नैराश्य से भर दिया। सुरेन्द्र ने मदिरा के नशे में अपने को भुलाना चाहा। मोटर-दुर्घटना में वह अस्पताल पहुँचता है। नर्स के रुप में कुमुद को पाकर अपनी भूल की क्षमा चाहता है। इसी बीच में कला आ जाती है। सुरेन्द्र अपनी गुजरी हुई कहानी कला को बताता है और कुमुद के पुत्र को अपना पुत्र कहकर उससे मिलाता है। कला भी कहती है "मेरे पाँव आसमान की आधारहीनता में उड़कर थक गए हैं - मुझे सहारा चाहिए स्वामी।" और क्षमा माँगती है और कुमुद के पुत्र को अपना पुत्र कहकर अपने स्वामी को कुमुद को सौंपती है।

प्रस्तुत एकांकी समस्यामूलक एकांकी है जिसमें दो पत्नियों की सामाजिक समस्या है। एकांकी में पौर्वात्य और पाश्चात्य संस्कारों का संघर्ष सजीव है। पाश्चात्य सभ्यता जहाँ स्त्री और पुरुष के विवाह के पहले के सम्बंध को बुरा नहीं समझता वही पौर्वात्य सभ्यता में ऐसे संबंध को कतई पसंद नहीं किया जाता है। उसे नाजायज समझा जाता है। प्रेमीजी ने यहाँ नारी-स्वातंत्र्य की समस्या की ओर भी संकेत किया है। अर्थात् नारी-स्वतंत्रता की एक सीमा होनी चाहिए अन्यथा इसके परिणाम घातक सिद्ध हो सकते हैं। अतः प्रस्तुत एकांकी में आज के स्त्री-पुरुष के स्वतंत्र मिलन का दुष्परिणाम दिखाया है। पाश्चात्य देशों के आचरण से स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक सहयोग आज के रुढिबद्ध समाज मे कितनी विषम समस्याएँ उपस्थित कर सकता है, इसी का चित्रण यहाँ प्रेमीजी ने किया है।

'मातृ-मंदिर' नामक एकांकी में प्रेमी जी ने आज के भारत की जटिल गुत्थी सुलझाने का भरसक एक लाघव प्रयास किया है। मिर्जा अजीम बेग एक सहृदय मुसलमान हैं। हिंदू-मुस्लिम के दंगे से बचायी हुई नव-विवाहिता स्त्री मालती जिसका सुहाग शादी की शहनाई के मध्य में ही लूट लिया गया था, मिर्जा साहब के पुत्र मोहम्मद द्वारा उनके यहाँ लायी जाती है और आदर-सहित स्थान पाती है। इधर मिर्जा साहब पर हिन्दुओं का आक्रमण होता है। मिर्जा साहब की पोती रोशन और उनकी बेटी बेघर-बार हो जाती है। क्षुधा से व्याकुल रोशन की माँ प्राण-त्याग करने के पहले रोशन को उसी वन में घूमती हुई एक स्त्री को, जो मालती की माॅ है, सौंपती है। मालती और मोहम्मद साथ रहकर हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार करते हैं। नाटक का कथानक आरंभ से ही कुतूहल और जिज्ञासा जगाता है। चरमसीमा वहाँ होती है जहाँ मोहम्मद अपनी बेटी रोशन को पाता है और मालती अपनी बिछुडी माँ को पाती है। तत्पश्चात् मालती, मोहम्मद तथा मालती की माॅ के वार्तालापों द्वारा कथानक में गति आती है। उनके वार्तालापों के माध्यम से प्रेमीजी ने हिन्दू-मुस्लिम के आपसी वैमनस्य, मतभेद, परतंत्रता आदि को दूर करने हेतु दोनों में सद्‌भाव तथा एकता की प्रतिस्थापन पर जोर दिया है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के आदर्श जैसे महत् उद्देश्य को लेकर प्रस्तुत एकांकी

रचित है।

आज भी ऐसी ही समस्या उठ खडी हुई है जिसमें कुछ स्वार्थी समुदाय ऐसे समय में दोनों के बीच मतभेद पैदा करके केवल अपनी स्वार्थपूर्ति करते हैं। दोनों जातियों, धर्मो में एकता की स्थापना के द्वारा ही हम ऐसी समस्या पर विजय पा सकते हैं। अभी हाल ही में भड़की गोधरा हत्याकाण्ड से पूरे राष्ट्र की एकता और विकास के लिए सामाजिक संगठन और भाईचारे की भावना जरुरी है।

प्रस्तुत एकांकी नाटक आज के हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न करता है। अपने आदर्शो को सामने रखने में नाटककार के इस एकांकी में कहीं-कही शैथिल्य भी आ गया है परन्तु मोहम्मद तथा मालती के संवाद हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा संगठन को प्रोत्साहित करते हैं।

'राष्ट्र-मंदिर' एकांकी के कथानक में प्रेमीजी ने बडी सरलता से हिन्दू तथा मुसलमानों के साथ एक अंग्रेज लड़की मिस होम्स को भारत की स्वतंत्रता के लिए युद्ध में भाग लेते दिखाकर स्वार्थ-लोलुप भारतवासियों को नीचा दिखाने का प्रयत्न किया है। स्वतंत्रता-प्रेमी किसी भी दूसरे देश को परतंत्रता की बेड़ी में नहीं बाँधते हैं और कर्नल होम्स की सुपुत्री मिस होम्स इस सिद्धांत की पक्षधर हैं और भारतीयों के स्वतंत्रता के लिए किए जाने वाले युद्ध में उनकी सहायक हैं। हम एक दृष्टि से देखें तो भारत की परतंत्रता का कारण केवल अंग्रेज ही नहीं, स्वार्थ-लोलुप वे तमाम भारत-निवासी हैं, वह चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या अन्य किसी भी धर्म या जाति से वह सम्बंध रख सकता है। गुलाम मुहम्मद और रायसाहब इन्हीं लोगों में से हैं जो अपने स्वार्थ के लिए देश को परतंत्रता की बेड़ियों में कसने में ही अपना गौरव समझते हैं। प्रस्तुत एकांकी में परतंत्र प्राणी अपने बंधन काटने को उद्यत दिखाई देते हैं। कॉलेज के विद्यार्थी गाँधीजी की गिरफ्तारी के विरोध में जुलूस निकालते हैं। अंग्रेजों के तलवे चाटनेवाले रायसाहब और गुलाम मुहम्मद षडयंत्र से इस आन्दोलन को असफल बनाना चाहते हैं। वे हिन्दू-मुस्लिम के मिले-जुले जुलूस में आपस में लडाई करवाना चाहते हैं। मिस होम्स इस षडयंत्र को असफल बनाने के लिए रायसाहब के पुत्र मनोहर और गुलाम मुहम्मद के पुत्र वली मुहम्मद से सहायता लेती है। षडयंत्र असफल हो जाता है। जुलूस आगे बढता है। देश-द्रोही अपने पुत्रों को ही जुलूस के अग्रभाग में देखकर झिझकते हैं। कर्नल होम्स अपनी पुत्री को सत्याग्रह में भाग लेते देखकर भी मशीनगन चलाने का आदेश देता है, परन्तु कलेक्टर ऐसा सख्त कदम उठाने को मना करता है और 'बागियों से कानून भुगत लेगा' की धमकी देकर जुलूस को आगे बढने देता है। जुलूस राष्ट्रीय गीत गाता तथा 'महात्मा गाँधी की जय' के नारे लगाता हुआ आगे बढ जाता है।

यह राष्ट्रीय चेतना पर आधारित एकांकी है। मिस होम्स के द्वारा लेखक ने यह सिद्ध किया है कि अंग्रेजों में भी मानवता है। एकांकी के माध्यम से देश-प्रेम की भावना को उभारने का प्रयास है। इसके साथ ही अंग्रेजों की शासन-प्रणाली, उनकी देश-भक्ति, स्वातंत्र्य सेनानी के कष्ट, देश-द्रोहियों की स्वार्थान्धता तथा भारत की पराधीनता का अंकन एकांकी में हुआ है। हिन्दू-मुस्लिम एकता में विघ्न डालनेवाले अंग्रेजों की नीति ने अनेक स्वार्थी, धन-लोलुप प्राणियों को अपने ही देश का विरोधी बना दिया था। भारत में फैली हुई फूट का समाधान हिन्दू-मुस्लिम तथा अंग्रेज लडकी मिस होम्स के संगठन के द्वारा किया गया है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी के सभी ऐतिहासिक एकांकियों के कथावस्तु का आधार मध्यकालीन भारतीय इतिहास (मुस्लिम और राजपूत युग) है। उन्होंने मध्यकालीन संस्कृति का स्वस्थ स्वरुप प्रस्तुत करने के लिए भारतीय इतिहास के मुस्लिम काल को अपने एकाकियों का आधार बनाया है। उन्होंने कहीं पर तो लोककथाओं का आधार लिया है और कहीं पर अपनी भावना के सहारे काल्पनिक चरित्रों का निर्माण भी किया है। प्रेमी जी के नाटक कोरे इतिहास बनकर नहीं रह जाते, अपितु आदर्श एवं भावनामूलक नाटकों में उनकी गणना की जाती है।

'मातृभूमि का मान' अर्थात् **'मान मंदिर'** ऐतिहासिक एकांकी है। चित्तौड़ के प्रतिभा सम्पन्न महाराजा महाराणा लाखा सेनापति अभयसिंह को बूँदी के राव हेमू के निकट मेवाड की अधीनता स्वीकार करने की आज्ञा देकर भेजते हैं। हेमू को यह बात पसंद नहीं। किसी की अधीनता की अपेक्षा वह मृत्यु को श्रेयस्कर समझता है। फलतः मेवाड और बूँदी में युद्ध होता है। मुट्ठी भर हाडा सिसौदिया वंश को हरा देते हैं। महाराणा प्रतिज्ञा करते हैं कि बूँदी के दुर्ग पर अपना अधिकार करके ही अन्न-जल ग्रहण करेंगे। चारणी इस कलह को रोकना चाहती है, किन्तु राजपूती हठ को कौन टाले? चारणी उपाय निकालती है कि बूँदी का नकली दुर्ग बनाकर जीत लिया जाये, प्रतिज्ञा पूरी होगी। नकली दुर्ग बनता है तो मेवाड़वासी एक हाडा वीरसिंह बूँदी के सैनिकों को उत्तेजित करता है। मेवाड की सेना में ही बूँदी के सैनिक भी हैं। अपनी जन्मभूमि बूँदी के गौरव की रक्षा के लिए मेवाड की सेना आपस मे टकराती है। खेल के रुप में मातृभूमि का अपमान क्यों हो? वीरसिंह देश की मर्यादा के लिए लडता हुआ मारा जाता है। किन्तु महाराणा को अपनी यह जीत पराजय से भी अधिक भयानक लगती है। उन्हें अपने व्यर्थ अहंकार और अविवेक के लिए पश्चाताप होता है। वे अपने अपराध की क्षमा माँगते है। दोनों राज्यों में फिर एकता प्रस्थापित हो जाती है। राजपूतों की वीरता, शक्ति तथा उनकी आपसी द्वेषवृत्ति, अविवेक तथा अहंकार का एकांकी में अंकन हुआ है।

'निष्ठुर न्याय' अर्थात् **'न्याय मंदिर'** की कथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। मेवाड के राजकुमार अजयसिंह भील-कन्या श्यामा के प्रेम में फँसे जाते हैं। फलतः वे समय पर सेना के अग्रभाग का संचालन नहीं कर पाते। मेवाड के महाराणा रत्नसिंह को मेवाड के भावी शासक की यह विलास-वासना पसंद नहीं। उनका न्याय-दण्ड अजयसिंह पर भी चला। महाराणा के सामने जब अजय और श्यामा को प्रस्तुत किया गया तो दोनों को प्राणदण्ड की आज्ञा सुना दी गयी। परन्तु चारणी बीच मे पडती है। उसके कथानुसार पहले दोनों का विवाह हो जाता है। अब राणा का न्याय श्यामा को निर्दोष और अजय को देशद्रोही मानता है। प्राणदण्ड की आज्ञा दी जाती है। काली की मूर्ति के समक्ष राजकुमार अजयसिंह को खडा किया जाता है। सेनापति तलवार उठाते हैं। श्यामा चीत्कार करके चारणी के चरणों में गिर पड़ती है। नाटक में राजपूतों के शौर्य, आन और बलिदान का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है। नाटक का अंत चरमसीमा में होता है। चरमसीमा जहाँ एक आदर्श को लिए है, वहाँ एक करुण प्रभाव भी छोडती है। प्रेम को कर्तव्य से अधिक माननेवाला कुमार स्वयं अपने पिता की आज्ञा से मृत्युदण्ड पाता है। इस एकांकी से हमारा ध्यान इस बात पर केन्द्रित होता है कि प्रेम से कर्तव्य को, व्यक्ति से देश को श्रेष्ठ मानना आवश्यक है। राष्ट्र के संकटकाल में प्रेम और विलास में मग्न रहना क्षम्य नहीं है।

'रूपशिखा' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एकांकी है। रुपमती नामक एक नृत्य-संगीत प्रवीण राजपूत रमणी मालव के सुलतान को देखकर उस पर मुग्ध हो जाती है, वह भी रुपमती के प्रति श्रद्धा और आसक्ति से भर जाता है। रुपमती का पिता उसे उसके बराबर तौल सोना लेकर मालव के बाजबहादुर के राजमहलों में पहुँचा देता है। रुपमती की कलाप्रियता बढती जाती है, वह अपने नृत्य-गान के साथ मदिरा के प्यालों में बाजबहादुर का जीवन डुबा देती है। समय पाकर सम्राट अकबर का एक सेनापति आदमखान रुपमती को उडाने का षडयन्त्र रचता है। मालवा पर चढ़ाई होती है, बाजबहादुर भाग खडा होता है। अब रुपमती पर आदमखान अकबर के प्रभाव को डालकर उसे ले जाना चाहता है। रुपमती तैयार नहीं होती। फिर आदमखान अपनी बेगम बनाने का प्रस्ताव रखता है, उधर बाजबहादुर की सेना का सेनापति वीरसिंह भी रुपमती पर अपनी आसक्ति प्रकट कर देता है। रुपमती वीरसिंह को फटकारती है और आदमखान सम्बन्धी बात को प्रकट कर देती है। वीरसिंह को आश्चर्य होता है। किन्तु रुपमती जहर पी लेती है। तभी आदमखान आता है। उसी समय बाजबहादुर भी आ जाता है और रुपमती के देहान्त का समाचार सुनकर स्वयं को गोली मार लेता है। प्रस्तुत एकांकी में लेखक ने मुगलों की विलासिता, उनके अनाचार का चित्रण तो किया ही है, साथ ही राजपूती आन, बान और शान की तस्वीर भी अंकित की है, रुपमती का जीवन

आदर्श क्षत्राणी का जीवन दिखाया गया है। अपने ऐतिहासिक कथानकों के उद्देश्य की भाँति इसके कथानक द्वारा सांप्रदायिक एकता का प्रयत्न भी किया है। यथा-

"रुपमती - प्रेत के संसार में जाति और धर्म के दायरे नहीं हैं। वहाँ मनुष्य जाति एक है। हम दोनों इंसान थे हमने अपने प्राण एक कर लिए। न वह मुसलमान रहा, न मैं हिन्दू।"

'यह भी एक खेल है' प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष में दोनों के समन्वय की ओर संकेत करने वाला एकांकी है। जयदेव मालवाधीश है। उसकी बहन विजया श्रीपाल नामक एक मामूली किसान-पुत्र से प्रेम करती है। परन्तु वह नीच कुलोत्पन्न होने के कारण जयदेव उनके विवाह की अनुमति नहीं देता। तब श्रीपाल के मन में विद्रोह का भाव निर्माण होता है। सृष्टि के चिरंतन भाव प्रेम का अपमान करनेवालो के विरुद्ध शस्त्र उठाने को वह सिद्ध होता है। विद्रोह का भाव इतना तीव्र होता है कि वह अपने वैयक्तिक प्रेम-भंग का बदला लेने के लिए शकों को मालवा पर आक्रमण करने को निमंत्रित करने के लिए भी प्रस्तुत होता है। विजया अपने वैयक्तिक प्रेम के लिए मालवा का मान खंडित नहीं करना चाहती। परन्तु वह जयदेव को चेतावनी देती हुई कहती है कि- "तुम लोगों का वंशाभिमान अपने ही देश में, देश का शत्रु उत्पन्न कर रहा है। तुमने श्रीपाल का अपमान किया है और निराशा उसे शत्रु के पास खीच ले गई है। जो जाति से सैनिक नहीं, वह क्या मनुष्य नहीं है? कार्य-विभाजन ऊंच-नीच की दीवारें क्यों खडी करें ?....... देश के पास इन बातों का विचार करने का समय नहीं है, जो एक के बाद दूसरा श्रीपाल जन्म लेगा और तब तुम लोग देश की रक्षा नहीं कर सकोगे।" इसके विपरीत जयदेव कहता है- "जो प्रेम देश की हत्या करे उसका गला घोंटना ही होगा।" इससे विजया के मन में कर्तव्य और प्रेम का द्वंद्व निर्माण होता है। वह खेल ही खेल में श्रीपाल के हाथ बाँधकर उसको जयदेव के हाथों में सौंप देती है कि देशद्रोह से बच सके। साथ ही अपने गले की पुष्पमाला श्रीपाल को पहनाकर वंशाभिमान के विद्रोह में वह उसे पति के रुप में वरण कर लेती है। 'मालव प्रेम' एकांकी में मालवकुमारी विजया कृषक कुमार श्रीपाल से प्रेम करती है। जाति गौरव उसके प्रणय के बीच में दीवार है। उसका भाई जयदेव एक कृषक कुमार से किस प्रकार अपनी बहन का विवाह कर सकता है। विजया का गाना कुतूहल की सृष्टि करके जिज्ञाशा को बढा देता है। इसके पश्चात् बडी छिप्र गति से कथानक चरम सीमा की ओर बढ़ता है। विजया गाने में तल्लीन है, श्रीपाल आकर आवाज देता है, 'विजया'। विजया गाना बंद करके खडी हो जाती है। श्रीपाल अपने प्रेम को प्रकट करता हुआ कहता है कि वह एक साधारण कृषक पुत्र होकर उसे किस प्रकार पा सकता है? वह तो उसके लिए आकाश की तारिका है। श्रीपाल जयदेव से बदला लेने की बात करता है क्योंकि जयदेव उसकी दृष्टि में मानवता और चिरंतन भाव प्रेम का तिरस्कार करने वाला है। यहीं से विजया के हृदय में देश-प्रेम और व्यक्तिगत प्रेम का द्वंद्व आरंभ हो

जाता है। जयदेव मालव के लिए विजया से श्रीपाल का सिर माँगता है। विजया देश-प्रेम के लिए व्यक्तिगत प्रेम को दबाकर खेल में श्रीपाल के हाथ अपने उत्तरीय से बाँध देती है। इसी समय जयदेव आ जाता है। श्रीपाल कहता है - "विजया तुम ऐसा छल कर सकती हो, इसकी मुझे कल्पना तक नहीं थी।" इधर विजया अपने देश-प्रेम के कर्तव्य का पालन कर चुकी। अब वह अपने व्यक्तिगत प्रेम का खरापन प्रमाणित करती है। वह श्रीपाल के गले में अपने हृदय का हार पहनाती हुई कहती है- "यह मेरे प्रेम का अंतिम प्रमाण है। आज हमारा स्वयंवर है। मालव जाति की परंपरा के विरुद्ध कृषक कुमार श्रीपाल को मैं वरमाला पहनाती हूँ। मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही रहूँगी।" यहीं पर कथानक चरमसीमा पर पहुँचकर समाप्त हो जाता है। श्रीपाल कहता है- "मेरे हाथ बँधे हुए हैं विजया। मैं तुम्हें कुछ प्रतिदान नहीं दे सकता। अपने प्रेम का कोई प्रमाण नही दे सकता।" विजया कहती है कि "प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता, तुम्हारे चरणों की रज ही मुझे मिल सकती है। मेरे लिए यही अमूल्य है।" विजया श्रीपाल के चरण छूती है। यहीं पर पर्दा गिर जाता है। दर्शकों की जिज्ञासा ज्यों की त्यों बनी रहती है। वे सोचते हैं कि क्या जयदेव ने विजया का देश-प्रेम और बलिदान को देखकर दोनों को छोड़ दिया या दोनों ही बलिदान हो गए। पात्र-योजना और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत एकांकी सफल है। प्रस्तुत एकांकी में जयदेव, श्रीपाल और विजया तीन ही प्रमुख पात्र हैं। जयदेव को यदि कुल का अभिमान है तो श्रीपाल कृपा या दान नहीं चाहता है। विजया एक विचारशील नारी है। वह देश-प्रेम के लिए अपने प्रेमी को बलिदान करती है, किन्तु प्रेम के लिए अपना ही बलिदान कर देती है। प्रस्तुत एकांकी उद्देश्य प्रधान है। इस एकांकी में एकांकीकार स्पष्ट करता है कि प्रेम स्वतंत्र है। व्यक्तिगत प्रेम से देश-प्रेम बढ़कर है। प्रेम में समर्पण ही सबकुछ है। वह प्रतिदान नहीं चाहता। एकांकीकार विजया के त्याग द्वारा प्रेम का अनुपम आदर्श प्रस्तुत करता है।

प्रेमीजी के एकांकियों की यह प्रमुख विशेषता है कि वे प्राचीन कथानक की पृष्ठभूमि में वर्तमान के निर्माण का महान संदेश देते हैं। उनमें हिन्दू-मूस्लिम एकता, देश-प्रेम की व्यापकता, साम्प्रदायिक सहिष्णुता, विदेशियों के प्रति जन-क्रांति, अधिकारों के लिए आन्दोलन और प्रजातन्त्रीय भावनाओं का व्यापक रुप मिलता है। उनके अनुसार भारत की प्राचीन संस्कृति को नियमित करनेवाले आदर्श गुणों को समाविष्ट कर उनके माध्यम से पाठकों को वर्तमान युग के विग्रहात्मक जीवन से विकर्षित कर पुनः सांस्कृतिक विभूति की ओर ले जाना ही साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।"[174]

हिन्दू-मूस्लिम एकता की समस्या का समाधान प्रेमीजी ने बडी कुशाग्रता से किया है। आपसी वैमनस्य को दूर कर साम्प्रदायिक एकता को स्थापित किया है। उनकी एकांकियों में प्रधान स्वर राष्ट्रीयता

का होते हुए भी सामाजिक समस्याएँ सुलझायी गई हैं। आपने विविध समस्याओं का समाधान तथा हल केवल एक ही बताया है कि सभी भेदों को मिटाकर मानवता की स्थापना की जाये। वस्तुतः प्रेमी जी सफल समस्या एकांकीकार हैं। वे एक ओर अपने युग की ऐतिहासिक घटनाओं की रक्षा करते हैं तो दूसरी ओर आधुनिक युग की मांगों की पूर्ति। उनके चरित्र में ऐतिहासिक और सामाजिक अनुरुपता है। वे जिस काल से आये हैं उस काल का प्रतिनिधित्व करने में सफल हैं। आपके सभी पात्र यथार्थवादी हैं। उनका चयन जीवन के वास्तविक क्षेत्र से ही किया गया है। पात्र यथार्थ की भूमि में चलते हुए कठिनाइयों और विरोधों पर विजय प्राप्त करके मानवता का प्रसार करते हैं। उनके नाटकों के ऐतिहासिक पात्र अपने स्वर में आधुनिक समस्याओं को उभार कर बडे सुंदर ढंग से उनका समाधान प्रस्तुत करते हैं। प्रेमी जी प्रत्येक एकांकी का संगठन किसी विशेष उद्देश्य को दृष्टि में रखकर करते हैं।

संदर्भ सूचि

1.	डॉ. रामकुमार वर्मा, आलोचना : नाटक-वेशेषांक	पृ. 159
2.	प्रो. अमरनाथ गुप्त, वीणा (दिसम्बर 1940) एकांकी नाटक साहित्य	पृ. 135
3.	श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, हंस (मइ 1939) एकांकी नाटक	पृ. 725
4.	डॉ रामचरण महेन्द्र, प्रतिनिधि एकाकीकार	पृ 56
5.	डॉ सत्येन्द्र, एकांकी नाटक	पृ. 48
6.	डॉ. श्रीमती अंजुलता गौड़, हिन्दी एकांकी में जीवन मूल्य	पृ. 205
7.	डॉ शांति मलिक, हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास	पृ. 475
8.	डॉ श्रीमती अंजु लता गौड, हिन्दी एकाकी मे जीवन मूल्य	पृ. 207
9.	डॉ रामचरण महेन्द्र, प्रतिनिधि एकांकीकार	पृ. 30
10.	डॉ रामकुमार वर्मा, रेशमी टाई	पृ 188
11.	वही वही	पृ 119
12.	वही वही	पृ. 119
13.	वही वही	पृ 125
14.	वही वही	पृ. 129
15.	वही वही	पृ. 142
16.	वही वही	पृ. 155
17.	वही वही	पृ. 160
18.	वही वही	पृ 163
19.	डॉ. रामकुमार वर्मा, रुप की बीमारी	पृ. 98
21.	वही वही	पृ 98
22.	वही वही	पृ. 98
23.	वही वही	पृ. 97
24	डॉ. रामकुमार वर्मा, रेशमी टाई, रुप की बीमारी	पृ. 67
25.	डॉ रामकुमार वर्मा, इतिहास के स्वर	पृ 114
26.	डॉ. रामकुमार वर्मा, चारुमित्रा, रजनी की रात	पृ. 114
27.	डॉ. श्रीमती अजुलता गौड, हिन्दी एकांकी में जीवन मूल्य	पृ. 299
28.	डॉ उपेन्द्रनारायण सिंह, आधुनिक हिन्दी नाटकों पर ऑग्ल प्रभाव	पृ. 210
29	डॉ. रामचरण महेन्द्र, प्रतिनिधि एकांकीकार	पृ. 33-34
30	रामनाथ 'सुमन', चारुमित्रा, डॉ. वर्मा	पृ. 9
31.	डॉ. रामचरण महेन्द्र, प्रतिनिधि एकांकीकार	पृ 60
32.	डॉ. श्रीमती अजुलता गौड, हिन्दी एकांकी में जीवन मूल्य	पृ. 300
33.	डॉ रामकुमार वर्मा, इतिहास के स्वर	पृ. 377
34.	वही वही	पृ 377-378
35.	डॉ. रामकुमार वर्मा, चार ऐतिहासिक एकांकी, सग्रहकर्ता-नर्मदाप्रसाद खेर, प्रथम संस्करण-1949	पृ. 76
36.	वही वही वही	पृ. 11
37.	वही वही वही	पृ. 87

38. डॉ. सौ. अमरजा अजित रेखी - हिन्दी के ऐतिहासिक एकांकी-एक अनुशीलन पृ. 50
39. वही वही वही पृ. 55
40. डॉ. रामकुमार वर्मा, इतिहास के स्वर पृ. 32
41. वही वही पृ. 45
42. वही वही पृ 45
43. वही वही पृ 16
44. वही वही पृ. 27-28
45. डॉ. रामकुमार वर्मा, पॉचजन्य, वासवदत्ता पृ. 60
46. वही वही वही पृ. 63-64
47. डॉ. रामकुमार वर्मा, इतिहास के स्वर पृ. 11
48. डॉ रामकुमार वर्मा, रजत रश्मि, प्रथम संस्करण-1952 पृ. 51
49. वही वही वही पृ. 65
50 डॉ. रामकुमार वर्मा, ऋतुराज (पूर्वार्ध) पृ. 111
51. वही वही (संकेत) पृ. 107
52. डॉ. सौ. अमरजा अजित रेखी, हिन्दी के ऐतिहासिक एकांकी-एक अनुशीलन पृ. 60
53. साहित्य संदेश - आंतर प्रांतीय नाटकांक पृ. 120
54. डॉ. रामचरण महेन्द्र, एकांकी और एकांकीकार पृ. 66
55. सेठ गोविन्ददास, सप्त रश्मि, धोखेबाज पृ. 42
56. वही वही वही पृ. 69
57. सेठ गोविन्ददास, गोविन्ददास ग्रंथावली, खण्ड-10 पृ. 110
58. वही वही वही पृ. 111
59. वही वही वही पृ. 112
60. सेठ गोविन्ददास, अष्टदल, फाँसी
61. लेखक फूलचन्द, प्रतिनिधि एकांकीकार पृ. 123
62. सेठ गोविन्ददास, प्राचीन काश्मीर की झलक पृ. 35
63. वही वही पृ. 48
64. सेठ गोविन्ददास, मुगलकालीन भारत की झलक पृ. 19-21
65. सेठ गोविन्ददास, प्राचीन काश्मीर की झलक पृ. 135-136
66. सेठ गोविन्ददास, मुगलकालीन भारत की झलक पृ. 61-62
67. वही वही पृ. 100
68. डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया, समसामयिक हिन्दी नाटक : बहुआयामी व्यक्तित्व पृ. 33
69. डॉ. नगेन्द्र (सं.), सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रं थ,
श्री जगदीशचन्द्र माथुर का लेख 'नाटककार 'अश्क', पृ. 374
70. डॉ. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', बडे खिलाडी पृ. 16
71. डॉ. नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक पृ. 102
72 डॉ. रामचरण महेन्द्र, प्रतिनिधि एकांकीकार पृ. 180
73. वही वही पृ 175-176
74. डॉ उपेन्द्रनाथ 'अश्क', देवताओं की छाया मे पृ. 134
75. वही वही पृ. 136
76. वही वही पृ 120
77. वही वही पृ. 126

78. डॉ. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी, लक्ष्मी का स्वागत पृ. 298

79. वही वही वही पृ 297

80 वही वही वही पृ 305

81 वही वही वही पृ 299

82. डॉ. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी, लक्ष्मी का स्वागत पृ 301

83. डॉ उपेन्द्रनाथ 'अश्क', चरवाहे पृ 80

84. वही वही पृ 104

85. वही पक्का गाना पृ 38

86 वही वही पृ 59

87 वही वही पृ 65

88. वही वही पृ. 84

89 डॉ. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', हिन्दी एकांकी, सं. अक्षयवर दुबे, सूखी डाली पृ. 76

90. वही वही वही वही पृ 77-78

91. वही वही वही वही पृ 80

92. वही वही वही वही पृ. 88

93 वही वही वही वही पृ 91

94. डॉ. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', पक्का गाना पृ. 122

95. वही वही पृ 130

96. वही वही पृ. 130

97 डॉ उपेन्द्रनाथ 'अश्क', कामदा पृ. 137

98 स डॉ. दशरथ ओझा, कलापूर्ण एकांकी, तृतीय सस्करण पृ. 111

99. वही वही वही पृ 130

100. वही वही वही पृ. 127

101. डॉ. उपेन्द्रनाथ 'अश्क', नए रंग एकांकी पृ 180

102. डॉ रामचरण महेन्द्र, हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास पृ 169

103. जगदीशचन्द्र माथुर, नाटककार 'अश्क' पृ 15

104. डॉ. सत्येन्द्र, हिन्दी एकांकी पृ 148

105 वही वही पृ. 145

106. एकाकी नाटक संग्रह (आगरा विश्वविद्यालय प्रकाशन स. 18) पृ. 115

107 वही वही पृ 112

108 चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, (सम्पादित) हिन्दी एकांकी पृ. 9

109. उदयशकर भट्ट, समस्या का अंत संग्रहित एकांकी- गिरती दीवारें पृ. 22

110 वही वही वही पृ 47

111 वही वही वही पृ. 47

112 उदयशंकर भट्ट, अधकार और प्रकाश, एकांकी - आत्मदान पृ. 38

113. वही वही वही वही पृ 38

114. वही वही वही वही पृ 43

115 उदयशंकर भट्ट, अंधकार और प्रकाश, नया नाटक पृ 84

116 शिवदानसिह चौहान, साहित्यानुशीलन पृ 270

117. उदयशंकर भट्ट, पर्दे के पीछे पृ. 14
118. वही वही पृ. 50
119. वही, वही पृ. 70
120. वही वही पृ. 69
121. शिवदानसिंह चौहान, साहित्यानुशीलन पृ. 276
122. डॉ. सौ. अमरजा अजित रेखी, हिन्दी के ऐतिहासिक एकांकी-एक अनुशीलन पृ. 171
123. वही वही वही पृ. 171
124. डॉ. लक्ष्मीनारायण मिश्र, मुक्ति का रहस्य : भूमिका।
125. डॉ. रामचरण महेन्द्र, प्रतिनिधि एकांकीकार पृ. 180
126. डॉ. लक्ष्मीनारायण मिश्र, भगवान मनु तथा अन्य एकांकी, सं. 1957 पृ 10
127. वही वही वही पृ. 43
128. वही चक्रव्यूह, पूर्वरंग
129. डॉ. बच्चनसिंह, हिन्दी नाटक पृ. 129
130. डॉ. लक्ष्मीनारायण मिश्र, भगवान मनु तथा अन्य एकांकी, सं. 1957 पृ. 75
131. वही वही पृ 76
132. डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद, लक्ष्मी नारायण मिश्र के ऐतिहासिक नाटक पृ. 30
133. डॉ. लक्ष्मीनारायण मिश्र, आधुनिक हिन्दी नाटक, चरित्र-सृष्टि के आयाम पृ. 264
134. प्रो प्रकाशचन्द्र गुप्त, हंस-एकांकी नाटक विशेषांक
135 डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश (सं. ज्ञान मण्डल काशी-1958)
136. भुवनेश्वर प्रसाद, कारवाँ संग्रह, प्रवेश पृ. 5
137. वही वही वही पृ. 7
138. वही वही उपसंहार पृ. 7
139. भुवनेश्वर प्रसाद, कारवाँ पृ 10
140. वही वही पृ. 11
141. वही वही पृ 14
142. वही वही पृ 63
143. वही वही पृ 68
144. वही वही पृ. 72
145. वही वही पृ. 79
146. वही वही पृ. 83
147. वही वही पृ. 84
148. वही वही पृ. 72
149. वही वही पृ. 95
150. वही वही पृ. 55
151. सं हरदेव बाहरी, श्रेष्ठ एकांकी संग्रह पृ. 126
152. वही वही पृ 126
153. वही वही पृ. 139
154. भुवनेश्वर प्रसाद, कारवाँ पृ. 38
155. सं शिवदानसिह चौहान, राजकमल प्रकाशन पृ. 139
156. वही वही पृ. 140
157 वही वही पृ 146

158.	डॉ. नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी नाटक				पृ. 142
159.	वही	वही			पृ. 101
160.	गणेश प्रसाद द्विवेदी, सोहागहिन्दी तथा अन्य नाटक (दो शब्द)				पृ. 2
161.	गणेश प्रसाद द्विवेदी, सोहागबिन्दी तथा अन्य नाटक - दूसरा उपाय ही क्या है?				पृ. 130
162.	वही	वही	वही		पृ. 144
163	वही	वही	सर्वस्व समर्पण		पृ. 170
164.	डॉ. सिद्धनाथ कुमार, हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास				पृ. 246
165.	सं. डॉ. दशरथ ओझा, कलापूर्ण एकांकी, तृतीय संस्करण, जून-1961				पृ. 147
166.	वही	वही	वही	वही	पृ. 147
167.	वही	वही	वही	वही	पृ. 137
168.	वही	वही	वही	वही	पृ. 150
169.	वही	वही	वही	वही	पृ. 151
170.	सं. विष्णु प्रभाकर, नीली झील				पृ. 94
171.	वही	वही			पृ 103
172.	जगदीशचन्द्र माथुर, ओ मेरे सपने				पृ. 59
173.	हरी कृष्ण प्रेमी, स्वप्न रंग की भूमिका				पृ. 1
174.	विश्वनाथ हिन्दी साहित्य, पिछला दशक				पृ. 43